शिक्षा-शास्त्र

लेखक

एम० डी० ज़फ़र

एम० एस-सी०, एल० टी

किताब महल इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १६४८

प्रकाशक :--किताब महल, ५६-ए, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद

मुद्रक :— रामशरण अग्रवाल, प्रगति प्रेस, इलाहाबाद

भूमिका

यह पुस्तक हमारे प्रान्त की नई शिक्षा के परिवर्तनों को दृष्टि में रखते हुए नार्मल स्कूलों और इन्टरमीडियेट कालेजों के विद्यार्थियों के लिये लिखी गई है। इसके अतिरिक्त इससे वह सज्जन भी लाभ उठा सकते हैं जिन्होंने शिक्षा के ट्रेनिङ्ग कालेज में शिक्षा तो नहीं पाई मगर जिन्हें शिक्षा विषयक समस्याओं से रुचि है।

हमारी राष्ट्रभाषा में ऐसी पुस्तकों का अत्यन्त अभाव है जो शिक्षा-सिद्धान्तों को मनोविज्ञान के रूप में एक सर्वसाधारण भाषा में व्यक्त कर सकें। आशा की जाती है कि यह छोटी सी पुस्तक इस कमी की पूर्ति के लिये प्रयत्नशील प्रमाणित होगी। इसमें शिक्षा सिद्धान्तों के अतिरिक्त स्वास्थ्य रक्षा, कक्षा तथा पाठशालाओं का प्रबन्ध और अनुशासन के अतिरिक्त देश में शिक्षा की अवस्था का संक्षिप्त सा इतिहास भी अंकित है ताकि यह पुस्तक प्रत्येक दृष्टि से अध्यापकों के लिए लाभप्रद हो सके। इसके अतिरिक्त वर्धा स्कीम, बुनियादी शिक्षा और यू० पी० में शिक्षा कार्य-क्रम पर भी प्रकाश डाला गया है, जो आशा है लाभप्रद प्रमाणित होगा।

इस पुस्तक में वही पारिभाषिक शब्द प्रयोग किये गये हैं जो लेखक ने अपनी पहिली पुस्तक "शिक्षक मनोविज्ञान" में प्रयोग किये हैं। आशा की जाती है कि यह पुस्तक भी विद्यार्थियों और अध्यापकों में आदर की दृष्टि से देखी जायगी।

२ बैंक रोड,
इलाहाबाद।

एम० डा० ज़फ़र

विषय-सूची

अध्याय १

शिक्षा और उसके उद्देश्य

प्रति दिन हम शिक्षा के सम्बन्ध में इतनी बातें कहते और सुनते हैं कि हम इस बात की ओर ध्यान भी नहीं देते कि आखिर शिक्षा है क्या चीज़ ? "शिक्षा पर देश और धार्मिक उन्नति निर्भर है"। "अच्छी शिक्षा से बच्चे देश के गौरव बन सकते हैं"। "अच्छी शिक्षा किसी देश की दशा जानने की कसौटी है।" यह और इसी प्रकार के अनेकों तरह के वाक्य हम आये दिन सुनते रहते हैं। मगर कभी आपने यह भी सोचा कि शिक्षा है क्या ? उसके उद्देश्य क्या हैं ? उसके प्राप्त करने के उपाय क्या हैं ? शिक्षा देनेवाले (शिक्षक) के कर्तव्य क्या हैं ? और शिक्षा प्राप्त करनेवाले (शिष्य) से शिक्षक अपने परिश्रम का सुन्दर परिणाम किस प्रकार प्राप्त कर सकता है ?

शिक्षा—इंगलैंड के प्रसिद्ध लेखक और अन्वेषक एडीसन नामक सज्जन ने शिक्षा के विषय में लिखा है : "मैं समझता हूँ कि बिना शिक्षा के मनुष्य की आत्मा खान से निकले हुए एक संगमरमर के टुकड़े की तरह है। जिस तरह संगमरमर का भद्दा टुकड़ा अपने अन्दर की चमत्कारी विशेषताओं का प्रकाशन नहीं कर सकता जब तक कि पत्थरकट (संगतराश) उसमें रोगन चढ़ाकर चमक-दमक पैदा कर के उसके रंग-रूप को न निखार दे, उसको सुडौल न बना दे, उसको कोई आकार न दे दे, उसमें भावों की सुकुमारता न उत्पन्न कर दे और उसके रंग रेशों को सामने न ले आये। इसी तरह जब शिक्षा एक सज्जन हृदय और मस्तिष्क पर प्रभाव डालती है तो उन सब परोक्ष विशेषताओं और अच्छी बातों को सामने ले आती है जो शिक्षा

जैसी सहायता के बिना प्रकट न हो सकती थीं।* उपमा किसी सीमा तक ठीक है लेकिन बिलकुल ठीक समझ लेना नादानी है। कारण यह है कि अगर पत्थर के टुकड़े को उसी अवस्था में छोड़ दिया जाय तो उसकी दशा में कोई परिवर्तन न होगा। इसके प्रतिकूल यदि मनुष्य के बच्चे को यों ही रहने दिया जाय और उसको शिक्षा न दी जाय तो भी वह अपनी पूर्व अवस्था पर स्थिर न रह सकेगा, बल्कि वह समय के साथ-साथ बढ़ता जायगा। वह अपने आस-पास के लोगों से बोली सीख लेगा, सभ्यता के नियम सीख लेगा और बहुत सी दूसरी बातें सीख लेगा। अर्थात् उसका वातावरण उसकी सहायता करेगा और वह कुछ न कुछ ज्ञान ज़रूर प्राप्त कर लेगा। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यदि मनुष्य के बच्चे को हम नियमानुसार शिक्षा न भी दें तो प्रकृति स्वयं उसको शिक्षा दे देगी। लेकिन यह शिक्षा अधूरी होगी। इससे वह चमत्कार, वह विशेषता न उत्पन्न होगी जो नियम के साथ शिक्षा देने पर हो सकती है।

रूसो और शिक्षा--रूसो (Rousseau) फ्रांस में एक बहुत बड़ा शिक्षा-शास्त्री हुआ है। शिक्षा के विषय में उसकी सम्मति यह थी कि शुरू में बच्चा शिक्षा के बंधनों से स्वतंत्र रक्खा जाय अर्थात् उसको उसीकी दशा पर छोड़ दिया जाय तो अच्छा है। इस अवस्था में प्रकृति उसको स्वयं शिक्षा दे देगी। वह कहता था कि माता, पिता और शिक्षक बच्चों की शिक्षा के सिलसिले में इतनी त्रुटियाँ करते हैं कि उससे अच्छा तो यह है कि बच्चे को शिक्षा ही न दी जाय और बारह बरस की आयु तक उसके जी में जो आये उसे करने दिया जाय। हाँ, उस के कपड़े-लत्तों की, उसके रहन-सहन की और उसकी रक्षा का उत्तर-दायित्व माता-पिता के ऊपर रहे। सम्भव है रूसो की सम्मति कुछ लोगों

**Dumville:* Teaching--Its Nature & Varieties, P. 1

को अच्छी मालूम हो लेकिन यदि उसको सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो हमें मालूम होगा कि बच्चे को बिलकुल उसी के ऊपर छोड़ देना सरासर नादानी है। बच्चा अपने वातावरण से बहुत कुछ अवश्य सीख लेगा। लेकिन आजकल मनोविज्ञान का समय है और मनोविज्ञान की दृष्टि से यह प्रयोग सरासर गलत है। मनोविज्ञान हमको बताता है कि जब तक बच्चे की प्राकृतिक प्रवृत्तियों को और उसकी दूसरी मानसिक प्रवृत्तियों को विकसित न किया जाय और उनको उचित रीति से अच्छे मार्गों पर न लगा दिया जाय, उस समय तक बच्चा ठीक तरह से शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकेगा।

आपने शायद वह कहानी सुनी हो कि किस तरह एक मनुष्य के बच्चे को एक रीछ ने पाला था और किस तरह मनुष्य के इस बच्चे ने बड़ा होकर अपने साथी रीछों की सब बातें सीख ली थीं ; यहाँ तक कि वह जानवरों की तरह हाथों और पैरों के बल चलता था ; इनकी तरह ही बोलता था; वैसे ही जंगली फल वगैरह भी खाता था और उसी प्रकार की आवाज़ें भी निकालता था। आकार-प्रकार में वह मनुष्य की तरह था मगर और सब बातें जानवरों जैसी, विशेषत: रीछों जैसी थीं। इस कहानी से आप अनुमान लगा सकते हैं कि वातावरण का कितना अधिक प्रभाव हमारे ऊपर और विशेष रूप से बच्चों पर पड़ता है। शिक्षा का मुख्य कार्य यह है कि वातावरण के प्रभावों में उचित परिवर्तन करे ताकि बच्चा आगामी जीवन को सफलतापूर्वक व्यतीत कर सके।

शिक्षा की परिभाषा—इंगलैंड के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री प्रोफेसर जे. जे. फिन्डले (J. J. Findlay) ने शिक्षा की परिभाषा इन शब्दों में की है:—

"जाति के बड़ी आयु वाले सज्जन जो परिवार, राजनीति, धार्मिक और दूसरी संस्थाओं में संगठित होते हैं, उठती हुई जाति की शुभ कामना के इच्छुक होते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह कुछ

बुद्धिविषयक प्रभावों को प्रयोग में लाते हैं और यह प्रभाव सभ्यता और वातावरण के उन अटल प्रभावों के अलावा प्रयोग में लाये जाते हैं जो कि सभी मनुष्यों के जीवन पर लागू होते हैं। इन विशेष प्रभावों को शिक्षा कहते हैं; और जो लोग इन प्रभावों को काम में लाते हैं (चाहे पेशे के लिहाज़ से, चाहे और किसी रूप में) वह शिक्षक कहलाते हैं। जो शिक्षा के प्रभावों को ग्रहण करते हैं उनको विद्यार्थी कहते हैं।"

इसके पूर्व कि हम शिक्षा की कोई विशेष रूप से परिभाषा करें अच्छा होगा कि हम कुछ और विद्वानों के विचार यहाँ उद्धृत कर दें। प्रसिद्ध शिक्षा-वेत्ता स्पेन्सर (Spancer) शिक्षा की परिभाषा इस प्रकार करते हैं: "शिक्षा का अर्थ है आन्तरिक दशा को वाह्य अवस्था से सम्बन्धित कराना"। भारतवर्ष के प्रसिद्ध हिन्दू शास्त्रवेत्ता स्वामी शंकराचार्य ने शिक्षा की परिभाषा यों की है: "सा विद्या या ब्रह्मगतिप्रदा" अर्थात् शिक्षा वह चीज़ है जिससे पूर्ण आत्मिकता का अनुभव हो जाय। इसी प्रकार उर्दू के महाकवि श्री इकबाल के अनुसार शिक्षा वह साधन है जिससे मनुष्य अपनी 'ख़ुदी' या अपनी आत्मिकता को उच्च बना सके; अतएव आप लिखते हैं:—

"खुदी की परवरिश व तरबियत पे है मौकूफ,
कि मुश्ते खाक में पैदा हो आतिशे हमा सोज़।"

इसका अर्थ यह है कि यदि आप चाहते हैं कि मुट्ठी भर खाक में दुनिया को जला कर राख कर देनेवाली आग पैदा हो जाय तो यह बात व्यक्तित्व की शिक्षा पर निर्भर है।

उल्लिखित परिभाषाओं से मालूम होगा कि शिक्षा की परिभाषा करना असम्भव नहीं तो दुस्साध्य अवश्य है। एक विद्वान का यह कथन कितना सत्य है कि वास्तव में शिक्षा वह चीज़ है जिससे मनुष्य शिक्षित हो जाय। प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक दार्शनिक, प्रत्येक शिक्षा-शास्त्री का सूत्र अपने-अपने विचारों के अनुसार निभाने का प्रयत्न करता है और

दूसरे उस पर हृदयहीन हो कर कटु आलोचना करते हैं। यथार्थ में शिक्षा की कोई सामयिक और सरल परिभाषा करना अत्यन्त कठिन है। प्रान्तीय शिक्षा विभाग के भूतपूर्व डाइरेक्टर ए० एच० मैकेंजी साहब ने एक समय शिक्षा की परिभाषा करते हुए कहा था कि "शिक्षा कोई भौतिक पदार्थ नहीं है। उसे हम गज़ से नहीं नाप सकते, न तराजू में बाटों से तौल सकते हैं, न किसी बोतल में बन्द कर सकते हैं और न किसी दीवार पर लटका सकते हैं। यह नाम है मानसिक शक्तियों से मानसिक शक्तियों के और आत्मा से आत्मा के मेल का। यह नाम है सचाई का, सुन्दरता और वास्तविकता का जो कि हमारे विद्यार्थियों के हृदय में जाग्रत होती है, उनके विचारों में प्रकट होती है और उनके जीवन का अंग बन जाती है।"

तात्पर्य यह कि शिक्षा की परिभाषा करना प्रत्येक दशा में गूढ़ विषय है। फिर भी कुछ बातें हम ऐसी बता सकते हैं कि जो सभी परिभाषाओं में सम्मिलित हैं। बच्चे की बुद्धि और उसका मस्तिष्क छिपी हुई शक्तियों का कोष होता है जो उसे पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में मिलता है या जिसे वह अपने वातावरण से और दूसरे लोगों के सम्बन्ध से प्राप्त करता है। आवश्यकता इस बात की है कि इन प्राकृतिक प्रवृत्तियों को ऐसे अवसर दिये जायँ जिनसे वह विकसित हो सकें और विकास को प्राप्त होकर बच्चे के लिए लाभप्रद बन सकें। यह काम शिक्षा कर सकती है। इस तरह शिक्षा नाम है "एक प्रयोग का जिसमें मनुष्य का जीवन उसके बचपन से लेकर बड़े होने तक बीतता है। और यह ऐसा प्रयोग है कि इससे वह धीरे-धीरे विभिन्न रीतियों से अपने प्राकृतिक, सामाजिक और आत्मिक वातावरण से सम्बन्ध स्थापित कर लेता है।"* साधारणतः हम यह कह सकते हैं कि शिक्षा उन विशेष प्रभावों का नाम है जो किसी जाति के बड़ी आयु वाले मनुष्य अपने

**Raymont:* Principles of Education, P. 4.

बच्चों पर डालते हैं, जिनके द्वारा वह समाज में अपना उचित स्थान प्राप्त कर सकते हैं।

शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षा का उद्देश्य विभिन्न कालों में और विभिन्न देशों में विभिन्न रहा है। बल्कि यों कहना अच्छा होगा कि प्रत्येक जाति और प्रत्येक धर्म ने विभिन्न कालों में शिक्षा के साधन और उद्देश्य अलग-अलग रक्खे हैं। पुराने समय में भारत में शिक्षा का उद्देश्य धार्मिक शिक्षा देना था और नवयुवकों को ब्रह्मचारी बनाना था ताकि वह अपने मन पर और अपने व्यक्तित्व पर अधिकार रख सकें। पुराने यूनान में नवयुवकों को शिक्षा इसलिए दी जाती थी कि वे अपने चरित्र का सुन्दर आदर्श समाज के सामने उद्धृत कर सकें। इसी प्रकार प्राचीन रूम साम्राज्य में बच्चे इसीलिये शिक्षा प्राप्त करते थे कि वह बहादुरी की कला में समयोचित निपुणता प्राप्त कर सकें। हिटलर के समय में जर्मनी की शिक्षा का उद्देश्य नाज़ी सिपाही पैदा करना और युद्ध-विद्या में निपुण बनाना था ताकि वह शांति को संसार से नष्ट कर दें, लोकतंत्र की धज्जियाँ उड़ा दें और जर्मनी का आधिपत्य सारे संसार में स्थापित कर दें। इसके प्रतिकूल अंग्रेज़ों की शिक्षा यह रही है कि उनके नौजवान लोकतंत्र और सच्चाई के पोषक और देश के गौरवपूर्ण भक्त बन सकें। दुर्भाग्य से हमारे देश में ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय से अब तक शिक्षा का उद्देश्य यह रहा है कि ब्रिटिश सरकार के दफ्तरों के लिए और राज्य की व्यवस्था को चालू रखने के लिए पढ़े-लिखे नौकरों और अफसरों की बहुतायत हो जाय। मगर अब जब कि देश स्वतन्त्र हो गया है हमारे शिक्षा के उद्देश्य में भी परिवर्तन होना आवश्यक है। हमें बच्चों को शिक्षा इसलिए देनी है कि वह भारतमाता के गर्व की वस्तु बन सकें। वह साम्प्रदायिकता और संकुचित भावों से दूर रह सकें, सच्चाई और ईमानदारी की सम्पत्ति से मालामाल हो सकें और उनके व्यक्तित्व की सारी विशेषतायें शिक्षा द्वारा निखरकर देश और जाति की सेवा का असीम कोष एकत्र कर

सकें। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक देश में और प्रत्येक समय में शिक्षा के उद्देश्य अलग रहे हैं।

शिक्षा के उद्देश्य की महत्ता तथा विश्वव्यापकता—लेकिन क्या शिक्षा कोई व्यापक और मुख्य उद्देश्य रखनेवाला साधन नहीं है ? हर काल में संसार के बड़े बड़े विद्वानों ने शिक्षा के सिद्धान्त बताये हैं और उनका सदा प्रयत्न रहा है कि राजनीतिक या शिक्षा की संस्थायें बच्चों को ऐसे उद्देश्यों के सम्बन्ध में शिक्षा दें कि शिक्षा के उद्देश्य की उपयोगिता और विश्वव्यापकता में अन्तर न आने पाये। हरबर्ट स्पेन्सर (Herbart Spencer) ने शिक्षा का उद्देश्य यह बताया है कि "शिक्षा बच्चों को आगामी पूर्ण-जीवन के लिए तैयार करती है।" स्पष्ट है कि यह परिभाषा बहुत कुछ यथार्थवादी है। कारण यह है कि आगामी जीवन को स्पष्ट रूप में समझाने की आवश्यकता है। कुछ लोग यह कहते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य यह है कि बच्चा बड़ा होकर अपनी रोज़ी कमा सके। यह परिभाषा भी ठीक नहीं है। अशिक्षित और असभ्य जातियाँ भी किसी न किसी तरह अपनी जीविका कमाती ही हैं, फिर शिक्षा की प्रणाली से क्या लाभ ? कुछ लोगों का विचार है कि शिक्षा से मनुष्य ज्ञान के भण्डार से मालामाल होता है जिसकी वजह से वह परीक्षाओं में सफलता प्राप्त कर लेता है और योग्यता के साथ सफल होकर संसार में अच्छा जीवन व्यतीत करता है। इस परिभाषा को भी सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो अपूर्णता दृष्टिगोचर होगी। अगर यह मान भी लिया जाय कि परीक्षा में योग्यता के साथ सफलता प्राप्त कर ली जाय तो क्या इसका अर्थ यह है कि इस "शिक्षित" नवयुवक में वह सब सुन्दर विशेषतायें होंगी जो एक मनुष्य को समाज, जाति या संस्था में और देश में प्रमुख बना देती हैं।

सर टी० पी० नन की राय—लन्दन यूनीवर्सिटी में शिक्षा के प्रसिद्ध प्रोफेसर सर टी० पी० नन (Sir T. P. Nunn) शिक्षा का उद्देश्य यह बताते हैं कि शिक्षा का मुख्य काम बच्चे के

व्यक्तित्व को विकसित करना है। यही मनुष्य के जीवन का उद्देश्य होना चाहिए। बच्चे को इस प्रकार शिक्षा देनी चाहिये कि उसकी सब शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ एक सूत्र में शिक्षित और पुष्ट हो जायँ और इस तरह उसके पूर्ण व्यक्तित्व को सुन्दर रीति से आदर्श बनने का पूरा-पूरा अवसर मिल सके। इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षा से बच्चा अपने व्यक्तित्व को समझ सके। उसमें यह समझने की शक्ति पैदा हो जाय कि उसका व्यक्तित्व समाज के लिए ज़रूरी है और वह अपनी कार्य-प्रणाली से, अपने कार्यों से, अपने विचारों से समाज के लिए एक आदर्श बन सके।

अंग्रेज़ी और अमरीकी रायें—सम्भव है कुछ सज्जन सर टी० पी० नन के विचारों से सहमत न हों लेकिन वास्तव में बात यह है कि आधुनिक काल में इस परिभाषा को बहुत कुछ गौरव प्राप्त है। अमरीका में व्यक्तित्व की अपेक्षा समाज को अधिक महत्ता प्रदान की गई है। वहाँ के शिक्षा-शास्त्रियों का विचार है कि शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि बच्चा स्वयं अपने को समाज का एक अंश समझते हुए ऐसी शिक्षा प्राप्त करे जिससे समाज की आवश्यकता और उद्देश्य की पूर्ति होती हो। यहाँ हमें अंग्रेज़ी और अमरीकी शिक्षा-शास्त्रियों के विचारों की तुलनात्मक विवेचना करना अभीष्ट नहीं है। इन देशों में शिक्षा का पद बहुत उच्च है। दोनों ने संसार की सभ्यता में आदर्श-वृद्धि की है। यदि सच पूछिये तो यह दोनों देश, सभ्यता, कला, अच्छा व्यवसाय और आदर-योग्य शासन प्रबन्ध के पोषक हैं। एक के लिए शिक्षा का उद्देश्य समाज के लिए व्यक्तित्व का पालन करना है तो दूसरे का उद्देश्य यह है कि बच्चे को समाज का सज्जन पुरुष बनाया जाय। मतलब यह है कि दोनों समाज की उन्नति और उसकी भलाई के लिए शिक्षा की आवश्यकता अनुभव करते हैं।

शिक्षा के उद्देश्य और भारतवर्ष—भारतीय सभ्यता में शिक्षा को

सदैव एक विशेष स्थान प्राप्त रहा है। शिक्षा मनुष्य को न केवल समाज के लिए तैयार करती थी बल्कि उसको धार्मिक और आध्यात्मिक पाठों से प्रेम, उत्कंठा, दया, साहस, सन्तोष, अहिंसा और ईश्वरीय भय इत्यादि व्यावहारिक बातें भी सिखाती थी। अंग्रेज़ी राज्य में शिक्षा का यह उद्देश्य हमारे देश में समाप्त हो गया। अंग्रेज़ी शिक्षा ने भारतवासियों को धर्म-च्युत कर दिया और वह नीतिशास्त्र के पाठ जो प्राचीन शिक्षा हमारे नवयुवकों को देती थी समाप्त कर दिये। अतएव भारतीय सभ्यता अवनति की ओर झुक गई।

इस दशा को दृष्टि में रखते हुए देश में आधुनिक समय में अंग्रेज़ी शिक्षा के विरुद्ध सर्वसाधारण में बेचैनी होने लगी थी। प्राय. देश के पथ-प्रदर्शकों ने व्यक्तिगत रूप से देश में कहीं-कहीं ऐसी शिक्षा-संस्थायें नियुक्त की थीं जिनमें पूर्वी और पश्चिमी सभ्यताओं के मेल-जोल को दृष्टि में रखा गया और जहाँ पश्चिमी शिक्षा के साथ पूर्वी शिक्षा भी दी गई। मगर यह संस्थायें जैसा कि वर्णन किया जा चुका है व्यक्तिगत रूप रखती थीं। सरकारी सहायता इन संस्थाओं को या तो मिलती ही नहीं थी या अगर मिलती भी थी तो बहुत कम। और सरकारी सहायता और सहानुभूति के अभाव में इन संस्थाओं को उचित पद प्राप्त न होना प्राकृतिक बात थी। राजनीतिक विचारधारा के साथ-साथ देश में इस बात की भी विशेष आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि शिक्षा का दृष्टि-कोण बिलकुल बदल दिया जाय और ऐसी शिक्षा देश में प्रचलित की जाय जो राष्ट्रीय शिक्षा कहलाई जा सके। अतएव महात्मा गांधी के नेतृत्त्व में देश के कुछ शिक्षा-शास्त्रियों ने एक नया शिक्षा-सिद्धान्त बनाया जो वर्धा-स्कीम के नाम से प्रसिद्ध है। वर्धा-स्कीम में शिक्षा के सिद्धान्तों के निरूपण के विरुद्ध अनेकों आलोचनायें की गईं और बताया गया कि आजकल शिक्षा का ढाँचा गलत सिद्धान्तों पर बनाया गया है, इसका उद्देश्य गलत है। इसी कारण से पूरे शिक्षण-सिद्धान्त कमज़ोर नींव पर आधारित हैं। अर्थात्

भारतवर्ष में शिक्षा का ध्येय यह नहीं होना चाहिये कि बच्चा पढ़ लिख कर केवल नौकरी करने और दफ़्तरों में अपनी जगह ढूँढ़ने के योग्य बन जाय बल्कि उसका ध्येय यह होना चाहिये कि बच्चा शिक्षित होकर न केवल देश व राष्ट्र के लिये लाभप्रद बन सके बल्कि मनुष्य जाति के लिए मनुष्यता का एक आदर्श नमूना बन सके। यह उद्देश्य केवल उसी समय प्राप्त हो सकता है जब कि बच्चा सांसारिक और शारीरिक शिक्षा के साथ-साथ आत्मिक शिक्षा भी प्राप्त करे।

युक्त प्रान्त की बुनियादी शिक्षा—वर्धा-स्कीम-शिक्षा सन् १९३७ ई० में प्रचलित की गई थी। इसके बाद ही भारतवर्ष के बहुत से प्रान्तों ने इस शिक्षा-प्रबन्ध के आधीन अपने-अपने शिक्षा के दृष्टि-कोणों को बदल दिया। अतएव सन् १९३९ ई० में हमारे सूबे में भी खान बहादुर डाक्टर इबादुर्रहमान व आचार्य नरेन्द्रदेव के संरक्षण में वर्तमान शिक्षा-पद्धति में उचित परिवर्तन करने के लिये और शिक्षा को राष्ट्रीय स्वरूप देने के लिए एक कमेटी नियुक्त की गई जिसने सूबे के प्राइमरी और सेकेन्ड्री शिक्षा के विषय में अन्वेषण किये और अपनी रायें सरकार को बताईं। इन रायों के आधार पर आजकल प्रान्त में अंग्रेज़ी और दूसरे स्कूलों में शिक्षा दी जा रही है। इस शिक्षा को "बुनियादी शिक्षा" कहते हैं। यह वर्धा स्कीम से किन बातों में मिलती है और किन में नहीं इसका वर्णन आगे आयेगा। इस समय इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि बुनियादी शिक्षा का निर्माण शिक्षा के किन उद्देश्यों को सामने रख कर किया गया और क्यों? आइये! आप इसको स्वयं डाक्टर साहब के शब्दों में सुनिये। कमेटी की रिपोर्ट के पृष्ठ ११ पर लिखा है—

"...छोटे बच्चों के मस्तिष्क पर इस बात का चिह्न बना देना चाहिये कि सच्चे प्रजातंत्र का सम्बन्ध स्वतंत्रता, न्यायपरायणता, शिक्षा और शान्ति से है। आप कोई भी शिक्षा-सिद्धान्त निर्धारित करें हमें इन उद्देश्यों को सदैव सामने रख कर काम करना होगा। हमें अपने बच्चों को प्रजाराज्य स्वतंत्रता, उत्तरदायित्व और एकता-स्थापन के लिए

सुव्यवस्थित कर देना है। जो शिक्षा हम अपने यहाँ के स्कूलों में प्रचलित करें वह बच्चों की प्राकृतिक प्रवृत्तियों को, उनकी सुन्दर अवस्थाओं को और उनकी विधायकता को विकसित करे।"

तात्पर्य यह कि बच्चे की प्रवृत्ति को सामने रखते हुए परिवार या समाज या शासन उसके वातावरण में और उसके विचारों में उचित रूप से परिवर्तन करा सकते हैं; ऐसे परिवर्तन जो उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियों को पूर्ण रूप से विकसित कर सकें, जो उसको अशिक्षा, अधार्मिकता और असमाजिकता से रोक सकें और उसको मनुष्यता का एक आदर्श नमूना बना सकें। यही वास्तविक शिक्षा है। शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि हमारे नवयुवक अपने व्यक्तित्व का विकास समुचित ढंग से कर सकें। वह राष्ट्र और समाज की गौरवप्रद विभूतियाँ बन सकें। वह इस योग्य बन सकें कि अपने देशवासियों के साथ अपना जीवन प्रेम और एकता, गम्भीरता और सहनशीलता से व्यतीत कर सकें।

शिक्षा और निर्देष—प्रायः कुछ सज्जन शिक्षा और निर्देष को एक ही प्रयोग समझते हैं। यह सरासर गल्ती है। शिक्षा एक विस्तृत प्रयोग का नाम है जो बच्चे की प्राकृतिक शक्तियों को शिक्षित करती है। और उसके व्यक्तित्व को विकसित करके उसको देश और जाति के लिए गौरव और अभिमान के योग्य बना देती है। "निर्देष" (Instruction) में हम बच्चे के ज्ञान में वृद्धि करते हैं; उसको बुरे कामों से रोक कर अच्छे कामों का उत्साह उत्पन्न करते हैं। उसे प्रायः कामों में अभ्यास करना सिखाते हैं। इस तरह निर्देष वास्तव में शिक्षा का एक भाग है। स्कूल में हम आम तौर पर बच्चों को निर्देषों द्वारा कोई न कोई विषय सिखा सकते हैं। इस तरह देखने में स्कूल सिखाने या निर्देश करने का काम करता है कि नहीं, यह बात नहीं है। स्कूल में बातें सिखाने के साथ-साथ बच्चे की मानसिक शक्तियों का पोषण किया

जाता है और उसके चरित्र को बनाने की क्रिया प्रयोग में आती है। स्कूल के यह दोनों काम मिलकर शिक्षा को पूर्ण करते हैं।

प्रश्न

१—शिक्षा से क्या तात्पर्य समझते हो? "शिक्षा की परिभाषा एक अप्राप्य वस्तु है" क्या तुम इस विचार से सहमत हो? यदि नहीं, तो क्यों? संक्षेप में लिखो।

२—"शिक्षा का उद्देश्य यह है कि वह बच्चों की प्राकृतिक प्रवृत्तियों को, उनकी अन्वेषणात्मक शक्ति को, विधायकता को विकसित कर दे।" इसकी संक्षेप में विवेचना कीजिये।

३—आपके विचार में कौन-कौन सी बातों पर शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति निर्भर है? (सी० टी०)

४—"बच्चा एक खनिज पदार्थ के रूप में है।" इस मत पर संक्षिप्त विवेचना कीजिये और दिखाइये कि किस तरह यह विचार शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालता है। [सी० टी०, एल० टी०]

५—तुम्हारे विचार में शिक्षा के उद्देश्य क्या होने चाहिये? हमारी वर्तमान शिक्षा इन उद्देश्यों को कहाँ तक पूरा करती है? (नार्मल)

६—"हमारी शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि हम व्यक्तिगत योग्यता को ऐसे कार्यों में काम में लायें जो समाजी महत्व रखते हों" इस बात के विभिन्न पहलुओं पर संक्षिप्त विवेचना कीजिये। [एल० टी०]

७—आजकल "शिक्षा का उद्देश्य" का विषय क्यों इतना गहन विषय समझा जाता है? कुछ ऐसे उद्देश्यों पर विवेचना और आलोचना कीजिये जिनको आजकल माना जाता है और जिनका पक्ष लिया जाता है। [टी० एल०]

८—शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चे के व्यक्तित्व को विकसित करना है। इस मत पर अपने विचार प्रगट कजिये।

९—शिक्षा और निर्देष में क्या अन्तर है? "निर्देष तो केवल शिक्षा देने का एक साधन है।" इस बात पर संक्षिप्त सी विवेचना कीजिये।

१०—"मैं शिक्षा को एक ऐसा प्रबंध समझता हूँ जिस पर राष्ट्र की नींव आधारित होती है।" डाक्टर ताराचन्द की इस राय की व्याख्या कीजिये।

अध्याय २

शिक्षा-प्रबन्ध

वर्तमान शिक्षा-प्रबन्ध पर दृष्टि डालने से पहिले अच्छा तो यह होगा कि हम प्राचीन काल के भारतीय शिक्षा-प्रबन्ध पर एक सरसरी नज़र डालें। प्राचीन काल में शिक्षा का सम्बन्ध प्रायः कुछ विद्वानों से होता था जिनको गुरु, पंडितजी या मौलवी साहब कहा करते थे। यह सज्जन अपने शिष्यों को अधिकतर धार्मिक शिक्षा देते थे और इसी शिक्षा के साथ-साथ उनको मातृ-भाषा, हिसाब-किताब और दूसरे विषय भी सिखाते थे। शिक्षक का पद माता-पिता के पद से भी बढ़कर समझा जाता था। शिक्षा-विधि साधारणतः व्यक्तिगत रूप में थी। अमीरों के बच्चों के लिये अलग-अलग शिक्षक होते ही थे। इसके अतिरिक्त गरीबों के बच्चे भी इस प्रकार शिक्षा प्राप्त करते थे कि एक बार में एक ही बच्चा शिक्षक के पास आकर पाठ सुनाता था और नया पाठ पढ़ता था। इस समय में शिक्षा एक निजी और परिवार के किस्म की चीज़ समझी जाती थी। शिक्षक को अपने शिष्यों के साथ रहना पड़ता था; उनसे बातें करते हुए और उनकी बातें सुनते हुए, उनका निरीक्षण करते हुये और स्वयं निरीक्षण में आते हुये उनका साहस बढ़ाते हुए और प्रशंसा करते हुए, घुकड़ते-झिड़कते हुए और दण्ड देते हुए; चूंकि इस समय तक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य जीवकोपार्जन न था। यह सम्भवतः था अव्यवहारिक मगर अधिक वैज्ञानिक ढंग बिना, यह कार्यविधि बिना किसी प्रकार की रुकावटों के प्रचलित रही।"* इस प्रकार से प्राचीन समय की शिक्षा-प्रणाली व्यक्ति-

---

**Sequeira* : The Education of India, P. 15

गत रूप रखती थी। शिक्षा पर या तो सरकारी अधिकार होता ही न था या अगर होता भी था तो बहुत कम। सरकारी संरक्षता उसको अवश्य प्राप्त होती थी मगर यह न होता था कि यह शिक्षा किसी मुख्य सरकारी उद्देश्य की पूर्ति के साधन के लिए दी जाती हो। यदि इसका कोई उद्देश्य होता था तो केवल यही कि विद्यार्थियों में धार्मिक भावना उत्पन्न हो। वह परिश्रम, सच्चाई, सन्तोष, संलग्नता और साहस के आदर्श बनें और इस तरह समाज के लिए गौरव बन सकें।

अभाग्यवश अंग्रेज़ी शासन के समय में शिक्षा का उद्देश्य कुछ से कुछ हो गया। अतएव इसी उद्देश्य को सामने रखकर शिक्षा की मशीन चालू कर दी गई जिसका परिणाम यह हुआ कि प्राचीन शिक्षा को पीछे ढकेल दिया गया और अंग्रेजी शिक्षा ने दफ़्तर के लिये क्लर्कों की तो भरमार कर दी लेकिन उसी के साथ-साथ आत्मीयता और उच्चादर्श हमारे नवयुवकों से छीन लिये जो कि उनके विशेष गुण थे।

इसी कारण से देश में अंग्रेज़ी शिक्षा के विरुद्ध तेज़ आवाज़ उठाई गई और स्थान स्थान पर प्राय: भारतीय शिक्षा-वेत्ताओं ने कुछ संस्थायें ऐसी स्थापित की जिनमें अंग्रेजी शिक्षा के साथ साथ प्राचीन शिक्षा को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। अध्यापक विद्यार्थियों के पवित्र सम्बन्ध को फिर क़ायम किया गया और जीविकोपार्जन ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं माना गया। बल्कि इस बात का प्रयत्न किया गया कि शिक्षा द्वारा बच्चे की उन सभी विशेषताओं को और शक्तियों को इस प्रकार से निखारा जाय कि वह देश और राष्ट्र के लिए गौरवशाली बन सके। इन्हीं संस्थाओं में शान्ति निकेतन, गुरुकुल, जामयेमिलिया इस्लामिया इत्यादि के नाम लिये जा सकते हैं।

सन् १९३७ ई० में देश के सामने वर्धा-स्कीम आई जो महात्मा गांधी के नेतृत्व में जाकिर हुसेन कमेटी ने निरूपत की थी। यह इस बात

का सर्व-प्रथम प्रयत्न है कि भारत ऐसे विशाल देश में एक राष्ट्रीय शिक्षा का प्रबन्ध देश के समक्ष रक्खा जाय। इस स्कीम को देश ने हाथों हाथ लिया और विभिन्न सूबों ने इसको अपनाने के प्रोग्राम बनाये लेकिन इन कोशिशों में सब से ज्यादा सफलता युक्त प्रान्त को मिली। यहाँ डाक्टर इबादुर्रहमान खाँ के नेतृत्व में वर्धा-स्कीम में उचित संशोधन किये गये और प्रत्येक रूप में स्कीम की भावना वही रही। फिर भी प्रयोगिक दृष्टिकोण से उसमें कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करके उस पर प्रयोग किये गये और पूरे ६ साल के कठिन परिश्रम के बाद पूरे सूबे में एक विस्तृत रूप में प्रचलित कर दी गई। प्रयोग निरीक्षण और परिणाम से प्रान्तीय शिक्षा विभाग ने इस योजना को बेसिक एजूकेशन या बुनियादी शिक्षा का नाम दिया।

यहाँ पर बेसिक एजूकेशन की अच्छाइयों पर विवेचन करना उद्देश्य नहीं है। किसी दूसरे अध्याय में इस पर विवेचना की जायगी। अभी तो यह बताना ही अभीष्ट है कि हमारे शिक्षा प्रबन्ध की बागडोर किन बुनियादों पर आधारित की गई है। अब तक जो अंग्रेजी शिक्षा प्रचलित रही है, उसमें बच्चे को बेबस बनाकर शिक्षा और कला के चारों तरफ़ उसे मानो नचा दिया गया था। परन्तु अब कुछ दूसरा स्वरूप हो गया है। इसमें बच्चों को केन्द्र बनाया गया और उनके चारों ओर सब विषय चक्कर करने लगे। इसी कारण से शिक्षा की मशीन में भी उचित मगर महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गये हैं।

यहीं एक और बात का बताना अनुचित न होगा। हमारी शिक्षा की मशीन बहुत कुछ बदल चुकी है लेकिन संसार का दूसरा भयानक महायुद्ध समाप्त होने और देश को स्वतंत्रता मिल जाने के बाद देश में दूसरे महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ हमारे शिक्षा-प्रबन्ध में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। नये शिक्षा-प्रबन्ध में बच्चे को सबसे अधिक महत्ता प्राप्त है। यह शिक्षा पूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा कही जा सकती है। इससे पूरी पूरी कोशिश की गई है कि बच्चे की विशेषताओं को

निखार कर सामने ले आयें ताकि वह उनकी सहायता से उन्नति की ओर तेज़ी से बढ़ सकें।

शिक्षा और शासन—वर्तमान समय के प्रत्येक सभ्य देश में शिक्षा और शासन के बीच घनिष्ट सम्बन्ध है। यह बात मान ली गई है कि जब तक शासन शिक्षा-प्रबन्ध का संरक्षक नहीं बनेगा शिक्षा की उन्नति नहीं हो सकती। अब प्रश्न यह है कि शासन के कर्तव्य क्या हैं ? सबसे पहला काम शासन का यह है कि लड़के और लड़कियों के लिए उचित पाठशालायें स्थापित करे। यह पाठशालायें हर प्रकार की और आवश्यकता के अनुसार हों। दूसरा कर्तव्य यह है कि एक निर्धारित आयु तक के बच्चों के लिए शिक्षा को अनिवार्य बना दे ताकि शिक्षा से लाभ उठाने का अवसर अपढ़ माता-पिता तक को मिल सके। शासन का तीसरा काम यह है कि वह शिक्षा में खर्च के लिए धन दे या उचित उपाय काम में लाय। चौथा काम यह है कि शिक्षा पर परोक्ष रूप से अधिकार रक्खे और शिक्षा-संस्थाओं की देख-भाल करे। अन्त में शासन का पाँचवाँ काम यह है कि बच्चों को शिक्षा देने के लिए योग्य अध्यापक खोजे और उनको शिक्षा की कला में निपुण करे।

यहाँ इस बात को समझ लेना आवश्यक है कि शासन के कर्तव्यों की सूची मात्र से यह न समझ लेना चाहिये कि शिक्षा की उन्नति बस शासन पर ही निर्भर है। यह अवश्य है कि शासन एक नेतृत्व का पार्ट अदा करता है। मगर उस की महत्ता ऐसी ही है जैसी मकान के लिए ईंट, चूना और गारे की। इन चीज़ों के होते हुए भी सुन्दर भवन निर्माण नहीं हो सकता जब तक कि एक कुशल राजगीर मन लगा-कर भवन निर्माण न करे। बिलकुल इसी तरह शासन की सहायता व संरक्षता प्राप्त होते हुए भी शिक्षा-प्रबन्ध की नीवें कमज़ोर हो सकती हैं जब तक कि शिक्षक अपने कर्तव्यों को मन से, सच्चाई से और रुचि के साथ न पूरा करें।

बच्चा और घर—वर्तमान काल के शिक्षा-शास्त्रियों का सर्व-सम्मति से यह निर्णय है कि कोई शिक्षा प्रबन्ध उस समय तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि पाठशाला और घर में समानता न हो। अर्थात् पाठशाला के कामों में और घर के जीवन में जब तक समानता न पाई जायगी कोई शिक्षा-सम्बन्धी प्रोग्राम (कार्यक्रम) सफल नहीं हो सकता। प्राचीन काल में भी यही सिद्धान्त माना जाता था और अब भी तमाम शिक्षा-सिद्धान्त इसी बात पर ज़ोर देते हैं। अतएव वर्तमान बेसिक एजूकेशन में भी यही सिद्धान्त माना गया है।

बच्चे की शिक्षा में उसका घर और उसका वातावरण बहुत कुछ भाग लेते हैं। अगर दो विभिन्न घरों के बच्चों को एक ही पाठशाला की एक ही कक्षा में एक ही अध्यापकों से शिक्षा दिलाई जाय तो हो सकता है कि दोनों बच्चों के स्वभाव और आचरण में, उनकी भाषा और बातचीत में, उनके रहन-सहन और दूसरी बहुत सी बातों में जमीन-आसमान का अन्तर हो। हो सकता है कि एक लड़का सच्चाई और ईमानदारी, परिश्रम और संलग्नता इत्यादि विशेताओं से परिपूर्ण हो, लेकिन दूसरा उसके बिलकुल विपरीत हो। इसी तरह यह भी हो सकता है कि एक लड़के की बोली बिलकुल साफ हो और सम्भाषण अच्छा हो और दूसरे लड़के में यह गुण न हों। इन असमान-ताओं का कारण दोनों बच्चों के घर हैं। बच्चा जो घर में देखता, सुनता और अनुभव करता है वही बातें सीख लेता है और इन्हीं सीखी हुई बातों को लेकर वह स्कूल में प्रवेश करता है। अतएव इन बातों के दृढ़ प्रभाव उसमें मौजूद रहते हैं और वही बराबर उसके चरित्र पर अपना प्रभाव डालते रहते हैं।

अगर छोटा बच्चा घर पर अच्छी शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करता है तो उस पर स्कूल की शिक्षा-दीक्षा का प्रभाव सोने पर सुहागे का काम देगा। अगर बच्चे का बचपन बुरे वातावरण में व्यतीत हुआ है तो

बहुत सी बुरी बातें उसके मस्तिष्क में घर कर लेंगी और स्कूल से उसको बहुत कम लाभ होगा।

बच्चों को घर पर उचित शिक्षा-दीक्षा देना माता-पिता का अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य है। नन्हें-नन्हें बच्चों को स्कूलों में (जिनको नरसरी स्कूल कहते हैं) प्रवेश करा देना चाहिये। दुर्भाग्य से हमारे देश में ऐसे स्कूलों की इतनी कमी है कि वे न होने के बराबर हैं। अतएव एक तरफ़ हमारे बच्चों को घर पर अनुकूल दीक्षा नहीं मिलती, दूसरी तरफ़ उनको नरसरी स्कूलों की शिक्षा नहीं होती।

युक्त प्रान्त का शिक्षा-प्रबन्ध—हमारा शिक्षा-प्रबन्ध अब तक बड़ी ईंचातानी में रहा है। अंग्रेजी शिक्षालयों में जो शिक्षा थी वह भारतीय शिक्षालयों की शिक्षा से भिन्न थी। अतएव अंग्रेजी शिक्षालय से ऐंग्लो हिन्दोस्तानी और देहाती पाठशालायें हिन्दुस्तानी स्कूल कहलाते थे। इन्हीं पाठशालाओं को ऐंग्लो वर्नाक्यूलर और वर्नाक्यूलर स्कूल कहते थे। यह शिक्षा प्रबन्ध कुछ इस तरह का था:—
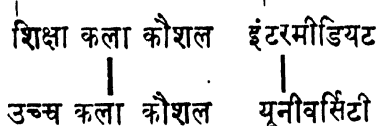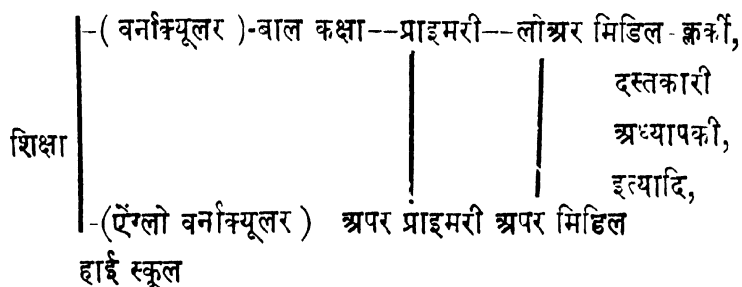
उपरोक्त नकशे से स्पष्ट है कि वर्नाक्यूलर शिक्षा की सबसे ऊँची मिडिल कक्षा थी जिसे अब तक वर्नाक्यूलर फाइनल कक्षा कहते रहे हैं। यह अन्तिम कक्षा होने के कारण विचार किया जाता

था कि वर्नाक्यूलर फाइनल परीक्षा पास करने के बाद लड़के की शिक्षा पूर्ण हो चुकी है। परन्तु शिक्षा के फैलाव के साथ साथ उर्दू हिन्दी मिडिल पास करने के बाद ऊँची शिक्षा के लिए लड़के ऐंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूलों की ओर आकृष्ट होने लगे। उर्दू हिन्दी मिडिल पास करने के बाद अंग्रेज़ी स्कूलों की सातवीं कक्षा में वह प्रवेश हुये और फिर चार साल की पढ़ाई के बाद उन्होंने हाई स्कूल पास किया। फिर या तो इण्टरमीडियट पास करके यूनीवर्सिटी की शिक्षा प्राप्त की या किसी कला-कौशल की संस्था में प्रवेश किया। इस शिक्षा-प्रबन्ध में जो खराबियाँ थी उनको नये शिक्षा-प्रबन्ध में दूर कर दिया गया है।

नया शिक्षा-प्रबन्ध—हमारे सूबे के नये शिक्षा-कार्यक्रम में विद्यार्थी-जीवन को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया गया है।

१—प्रीबेसिक या नरसरी स्कूल (बाल कक्षा) (१ साल)

२—(अ) प्राइमरी बेसिक शिक्षा, जिसमें कक्षा १ से कक्षा ५ तक सम्मिलित हैं। इन स्कूलों को प्राइमरी बेसिक स्कूल कहा जायगा। (५ साल)

(ब) सीनियर बेसिक शिक्षा, यह तीन साल के लिए होगी। इसमें कक्षा ६ वा ८ सम्मिलित होंगे। इन स्कूलों को जूनियर हाई स्कूल कहा जायगा। (३ साल)

३—हायर सेकेन्ड्री शिक्षा, जिसमें नवें से बारहवें कक्षा तक होगें। इन स्कूलों को हायर स्कूल कहेंगे। (४ साल)

इस प्रबन्ध की कुछ विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

१—बच्चे की शिक्षा का काल वर्तमान १४ साल की आयु से १३ साल कर दिया गया है।

२—हिन्दुस्तानी और ऐंग्लो हिन्दुस्तानी स्कूलों का भेदभाव समाप्त कर दिया गया है।

३—प्रारम्भिक कक्षाओं में अर्थात् कक्षा १ से ५ तक अंग्रेजी की शिक्षा

न होगी। लेकिन इसके बाद उसको वैकल्पिक विषय मान लिया जायगा।

४--हिन्दी सभी कक्षाओं में माध्यम विषय निर्धारित किया गया है।

५—जो लड़के कक्षा ८ तक अंग्रेजी न पढ़े होंगे उनके लिए ऊँची कक्षाओं में अंग्रेजी की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध किया जायगा।

६—"हायर स्कूलों" में बहुत से अनेकों किस्म के विषय पढ़ाये जायेंगे। उनको निम्नलिखित स्कूलों के नाम से पुकारा जायगा।

अ—साहित्यिक पाठशालायें (Literary Schools)

ब—वैज्ञानिक पाठशालायें (Scientific Schools)

स--कला-कौशल (Constructive Schools)

द--आर्ट स्कूल

७—एक स्कूल में एक समय में कई प्रकार की शिक्षायें दी जा सकेंगी ताकि शिक्षा-प्रबन्ध को प्रजातन्त्रवाद पर निर्धारिति किया जा सके और हर प्रकार की शिक्षा एक ही पद पर लाई जा सके।

८--वर्तमान हाई स्कूलों और इन्टरमीजियड कालेजों को नये हायर स्कूलों में परिवर्तित कर दिया जायगा जिनमें कक्षा ६ से कक्षा १२ तक की पढ़ाई होगी।

९--पूरे प्राइमरी और सेकेन्डरी शिक्षा-काल में तीन परीक्षायें शिक्षा-विभाग की ओर से होंगी। एक तो जूनियर हाई स्कूल के बाद, दूसरी हायर स्कूल के दो साल के बाद और तीसरी हायर स्कूल के पूरे कोर्स के बाद। पहिली दो परीक्षायें इच्छित होंगी।

१०—वह बच्चे जो अपनी शिक्षा को १३ साल की आयु में छोड़ेंगे उनके लिए चार साल की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध किया गया है। इन कक्षाओं में निम्नलिखित साधारण विषयों की शिक्षा होगी।

अ—मातृभाषा

ब--प्रति दिन जीवनोपयोगी बातें (जनरल नालेज), स्त्रियों के लिए पाठ्य-क्रम में "माँ के कर्तव्य" की शिक्षा भी होगी।

स--सोशल स्टेडीज (सामाजिक विषय)
द--जनरल साइन्स (General Science)
य--फिजीकल कलचर (Physical Culture)

उपरोक्त विषयों के अतिरिक्त दस्तकारी की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया है। जैसे—

ग्रूप अ—(१) चमड़े पर नक्काशी का काम (२) जिल्दसाजी (३) मोजा, बनियाइन बुनना (४) मुर्गी पालना (५) फल से मुरब्बा बनाना (६) मधुमक्खी पालना (७) मिट्टी का काम (८) शीशा धोकना (९) लकड़ी का काम (१०) कागज बनाना (११) चमड़ा रंगना (१२) जूता बनाना (१३) टोकरी बनाना (१४) फोटो खींचना (१५) कपड़े धोना (१६) रेशम के कीड़े पालना (१७) तरकारी और फल उगाना।

ग्रूप ब—(१) सेवा (२) प्रसूति-ग्रह की शिक्षा (३) कम्पाउन्डरी की शिक्षा (४) दर्जी और कढ़ाई का काम (५) कातना और बुनना (६) दूध दही और मक्खन का व्यापार—डेरीफार्मिंग (७) जमीन की नाप करना और नक़शा बनाना (८) लकड़ी का अच्छा काम (९) मोटर के कल-पुर्जों का काम (१०) रंगसाजी का काम और छपाई (११) बिजली और मशीनों का काम (१२) अनेकों प्रकार की धातुओं का काम (१३) आभूषण बनाने का काम (१४) गाना।

विद्यार्थी को अधिकार होगा कि चाहे साल में एक से अधिक कला कौशल का काम सीखे। प्रत्येक वर्ष के अन्त में शिक्षा-विभाग की ओर से सार्टीफिकट दिया जायगा कि विद्यार्थी अमुक दस्तकारी में अभ्यस्त है। ग्रूप ब की कुछ दस्तकारियाँ एक साल से अधिक समय ले सकती हैं और ग्रूप अ में एक से अधिक दस्तकारियाँ एक साल में सीखी जा सकती हैं।

स्त्री-शिक्षा—स्त्री-शिक्षा का पाठ्यक्रम वही होगा जो लड़कों की शिक्षा का होगा। प्राइमरी के बेसिक स्कूलों में (अर्थात् ५ साल से लेकर १० साल तक) लड़के और लड़कियाँ साथ शिक्षा पा सकेंगे और

प्रत्येक प्राइमरी बेसिक स्कूलों में दो अध्यापिकायें रक्खी जायँगी। इसके अतिरिक्त जूनियर हाई स्कूल में "पाक-शिक्षा" लड़कियों के लिए अनिवार्य होगी। जो लड़कियाँ १३ साल की आयु में जूनियर हाई स्कूल से निकलेंगी उनके लिए Continuation Classes में ऐसे विषय सम्मिलित करने का प्रबन्ध किया जायगा जो उनके स्वभाव के अनुसार हों। इन विषयों में पाक-विद्या अवश्य शामिल होगी। हायर स्कूलों में ऐसे ऐसे विषय सम्मिलित होंगे जो लड़कियों के लिए उचित हैं जैसे पाक विद्या, गाना, आर्ट इत्यादि। इस श्रेणी में पाक विद्या में माँ के कर्तव्य की शिक्षा भी सम्मिलित होगी।

शिल्पी संस्थायें—आज कल हमारे सूबे में तमाम शिल्पी संस्थायें कला-विभाग व व्यवसाय के प्रबन्ध में हैं। लेकिन हमारा शिक्षा-प्रबन्ध उस समय तक सफल नहीं हो सकता जब तक हर प्रकार के स्कूल शिक्षा-विभाग की निगरानी में न हों। इस लिये अपने शिक्षा-सम्बन्धी प्रोग्राम को सफल बनाने के लिए हमें सूबे की शिल्पी संस्थाओं को शिक्षा-विभाग की संरक्षता में लेना पड़ेगा। स्वतंत्र भारत में कला-कौशल और व्यवसाय में उन्नति होगी तो हमें निपुण कलाकारों की अत्यन्त आवश्यकता पड़ेगी। हमें दस्तकारी के लिए ऐसे बच्चों को छाँटना पड़ेगा जो विशेष प्रकार से उसमें रुचि रखते हों। इसीलिये हमारा नया शिक्षा-प्रबन्ध ऐसा संगठित किया गया है कि कक्षा ८ के बाद ही बच्चे की प्रवृत्ति को और उस की रुचि को देखते हुए उसे उचित शिक्षा दिलाई जाय, चाहे वह कला कौशल की हो या ज्ञान-वृद्धि की।

हमारे सूबे के हायर टेकनिकल स्कूल इंगलेन्ड के जूनियर टेकनिकल स्कूलों के किस्म के होंगे। इनमें चार साल की शिक्षा होगी और वह इस प्रकार होंगे :

१. चमड़े की कारीगरी के उच्च शिल्पी स्कूल २. खेतीबारी की कला के स्कूल
३. इन्जीनियरिंग के उच्च शिल्पी स्कूल ४. अर्थशास्त्र के उच्च शिल्पी स्कूल
५. लकड़ी के काम के उच्च शिल्पी स्कूल।

इन स्कूलों से निवृत्त होकर विद्यार्थी और ऊँची शिल्पी संस्थाओं में प्रवेश कर सकता है जिनमें दो से चार साल तक की शिक्षा होगी। जिन कक्षाओं और स्कूलों के बाद कला-कौशल की शिक्षा प्राप्त की जा सकेगी वह इस नकशे से भली प्रकार समझ में आ सकता है।

प्रश्न

१--प्राचीन समय में शिक्षा-प्रबन्ध की इमारत धर्म की नींव पर ही अवलम्बित थी। मगर वर्तमान काल में उसके प्रतिकूल है। आप इस बात पर संक्षेप में विवेचना कीजिये।

२--अंग्रेजी शिक्षा से स्पष्टवादिता, असीम साहस और दृढ़ प्रतिज्ञता इत्यादि गुण उत्पन्न होते हैं। आपको इस सम्मति के पक्ष या विपक्ष में क्या कहना है?

३--किसी देश या राष्ट्र का पाठ्य-क्रम निर्धारित करने में शासन का कितना भाग होता है?

४--हमारे सूबे में जो वर्तमान पाठ्य-क्रम है उसको संक्षेप में वर्णन कीजिये।

५--बेसिक एजूकेशन हमारे प्रान्त में कब से प्रारम्भ हुई? हमारे प्रान्त के पाठ्य-क्रम में वह कहाँ तक सफल है?

६--वर्तमान बेसिक स्कूलों और पुराने प्राइमरी स्कूलों में क्या अन्तर है? शिक्षा-विधि के किन सिद्धान्तों पर अधिक रुचि होने से बेसिक स्कूल और स्कूलों की अपेक्षा अच्छे समझे जाते हैं? [नार्मल]

७--संक्षेप में वर्णन कीजिये कि किन-किन सिद्धान्तों से स्कूल और घर में समानता पैदा की जा सकती है?

८--युक्त प्रान्त में प्राइमरी और सेकेन्डरी (Secondary) शिक्षा का जो पाठ्य-क्रम है उसको बताइये। (एल० टी०)

९--युक्त प्रान्त के नये पाठ्य-क्रम की कुछ विशेषतायें बताइये।

१०--"मातृ भाषा में शिक्षा न देने से शिक्षा मृत सी रहती है।" मातृ भाषा को माध्यम बनाने के लिए हमारे प्रान्त ने क्या कदम उठाया है?

अध्याय ३

बच्चा और कक्षा

बच्चा और मनोविज्ञान---बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में आजकल मनोविज्ञान को अधिक महत्त्व प्राप्त है। मनोविज्ञान हमको बताता है कि बच्चे की प्राकृतिक प्रवृत्ति क्या है। वह कौन-कौन सी प्राकृतिक शक्तियाँ पैत्रिक स्वरूप में लेकर पैदा होता है। कौन-कौन सी शक्तियाँ वह अपने जीवन में विभिन्न अवसरों पर प्राप्त करता है। कौन-सी मानसिक शक्तियाँ बचपन में कमजोर होती हैं और कौन-सी मज़बूत। शिक्षा में हम किन प्राकृतिक प्रवृत्तियों से सहायता ले सकते हैं और कहाँ तक। तात्पर्य यह कि मनोविज्ञान हमको बताता है कि बच्चे की शिक्षा में हमें किस मानसिक चेष्टा को हर समय अपनी दृष्टि के सामने रखना चाहिये और उसके अनुसार शिक्षा देनी चाहिये। आजकल तो इस ज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है कि हम हिसाब लगा कर यह बात मालूम कर लेते हैं कि कौन सा बच्चा अपने मस्तिष्क के अनुसार शिक्षा के योग्य है और कौन सा नहीं। कौन सा बच्चा उच्च शिक्षा प्राप्त करने की विशेषतायें अधिक रखता है और कौन सा कम। कौन इस योग्य है कि उसको किसी हस्तकला संस्था में भेजा जाय और कौन इस योग्य है कि उससे सिर्फ मजदूरी कराई जाय। इस प्रकार मनोविज्ञान ने शिक्षक और शिक्षालयों के काम को बहुत कुछ हल्का करने का प्रयत्न किया है और जो परिश्रम मन्द बुद्धि और अल्प बुद्धि वाले बच्चों पर निष्फल जाता था उसको बचा लिया है।

मनोविज्ञान से हम बच्चे की मनोवृत्ति का निरीक्षण कर सकते हैं

जैसा कि वर्णन किया जा चुका है। इस विद्या से हम बच्चों की मानसिक शक्ति का अनुमान लगाने के अतिरिक्त यह मालूम कर सकते हैं कि कौन सी बात बच्चे को कब और किस तरह बताई या पढ़ाई जाय जिससे उसकी प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ काम में आ जायँ और हमें अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकें। बच्चों की मानसिक प्रवृत्तियों में सबसे पहले प्राकृतिक प्रवृत्ति का वर्णन आता है जो बच्चा जन्म से लेकर पैदा होता है। अतएव विभिन्न प्राकृतिक प्रवृत्तियों का विभिन्न अवसरों पर प्रयोग किया जा सकता है जैसे जिज्ञासा, सहानुभूति। इन सब प्राकृतिक प्रवृत्तियों को शिक्षक विभिन्न अवसरों पर उचित रीतियों से काम में ला सकता है और बच्चे की शिक्षा के सिलसिले में अच्छी सहायता प्राप्त कर सकता है।

"शिक्षा का तात्पर्य यही है कि इन (प्राकृतिक) शक्तियों पर अधिकार प्राप्त कर लिया जाय और बच्चे की शक्तियों को सही मार्ग पर लगा दिया जाय। बुद्धिमान गुरू शिष्य के प्रत्येक कार्य के पीछे किसी न किसी प्राकृतिक शक्ति को काम करते देख सकता है और यही उसकी सफलता की कुंजी है कि वह इस शक्ति का सही और उचित व्यवहार करे। यही नहीं बल्कि वह शिष्य की शक्तियों का व्यवहार करते हुए ऐसी ऐसी बातें पढ़ा दे जिनको साधारण रूप में कठिनता से पढ़ाया जा सकता है। जैसे शिष्य को नीति-शास्त्र पर शिक्षा देना असम्भव है। उसके समक्ष चरित्र की उच्चता और दृढ़ता पर सम्भाषण देना गोया भैंस के आगे बीन बजाना है। लेकिन यदि नीति-शास्त्र की छोटी-छोटी बातें, जिन पर यह उच्च कोटि का भवन बनता है, बच्चे की प्राकृतिक शक्तियों, मुख्यत: घृणा, रक्षा, दृढ़ प्रतिज्ञा, इत्यादि का प्रयोग करते हुए उचित अवसरों पर उदाहरणों द्वारा बच्चे के सामने रक्खी जायें तो उचित परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।*

---

*ज़फ़र –शिक्षण-मनोविज्ञान, पृ० ५४

वैयक्तिक अथवा सामूहिक शिक्षा--बच्चे की शिक्षा के सम्बन्ध में एक प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या बच्चे को वैयक्तिक रूप से शिक्षा दी जाय या उसे कुछ और बच्चों के साथ सम्मिलित करके सामूहिक रूप से शिक्षा दी जाय। यह प्रश्न विचारणीय है। मनोविज्ञान बच्चे की प्राकृतिक प्रवृत्ति का निरीक्षण करता है और अधिकतर बच्चे के विषय में बताता है कि किन-किन बातों और शक्तियों का पालन होता है या हो सकता है। इस दशा में बच्चे की शिक्षा की सबसे अच्छी रीति तो यही मानी जाती है कि प्रत्येक बच्चे को अलग अलग शिक्षा दी जाय अर्थात् जिस प्रकार प्राचीन समय में एक-एक करके बच्चे शिक्षकों के पास जाते थे और पाठ लेकर फिर अपने स्थान पर आ बैठते थे। कुछ इसी प्रकार बच्चे की शिक्षा होनी चाहिये। अन्तर केवल इतना ही हो कि आजकल के शिक्षक भूतकाल के शिक्षक की भाँति मनोविज्ञान से अनभिज्ञ न रहें और बच्चे के मस्तिष्क में जबरदस्ती किताबी बातें (पुस्तकीय ज्ञान) न ठूँस दें। बल्कि वह बच्चों की प्रवृत्ति को सामने रखते हुए उसे बिना भय दिखाये और धमकाये शिक्षा की ओर प्रेरित करें और इस प्रकार शिक्षा को उसके लिए रुचिकर बना दें। अतएव आजकल के शिक्षा-शास्त्री अधिकतर इसी बात पर ज़ोर देते हैं कि हमें अपनी शिक्षा-विधि को ऐसा बनाना चाहिये कि बच्चा वैयक्तिक रूप से शिक्षा प्राप्त कर सके। वह यह कहते हैं कि बच्चे की मानसिक शक्तियों पर, उसके शारीरिक अंगों पर कम से कम भार पड़ना चाहिये ताकि वह सही मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर विद्या रूपी धन-राशि का स्वामी बन सके।

आजकल के सुयोग्य अध्यापक उन रीतियों का प्रचार करते हैं जिनको "वैयक्तिक विधि" कहते हैं। इनसे तबियत पर कम से कम भार पड़ता है। स्कूल का फर्नीचर ऐसा खोजा जाता है कि जिसमें आवश्यकता से अधिक बच्चों को सिर्फ चुपचाप बैठे-बैठे सुनते रहने के

विरुद्ध आवाज़ नहीं उठानी पड़ती है। प्रायः कक्षायें छोटे-छोटे दलों में विभक्त कर दी जाती हैं और इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रत्येक बालक को ऐसा सामान दे दिया जाता है कि वह उस समय उसी का होता है। ऐसा सामान जैसे कि कार्डों पर लिखे हुए अक्षर और शब्द बच्चों को दे दिये जाते हैं ताकि वह स्वयं वाक्य बना सकें। इसके अतिरिक्त तरह तरह की गोलियाँ बच्चों में बाँटी जाती हैं ताकि वह प्रयोगों द्वारा गिनती सीख सकें। इसके अतिरिक्त हर बच्चे के पास लिखने और नक़शा खींचने का सामान भी होता है। जिन शिक्षण-संस्थाओं में उचित फर्नीचर होता है वहाँ प्रत्येक बच्चा अपने साथ अपने डिब्बे भी लाता है और उनको वहीं रख देता है। शिक्षक कक्षा में घूमता रहता है और बच्चों को आदेश देता रहता है, सहायता पहुँचाता है और उपाय सामने रखता है।*

बच्चों को वैयक्तिक रीति से शिक्षा देने की रीति में मैडम मान्टेसोरी की शिक्षा-विधि सबसे अधिक वर्णन करने योग्य है। इस शिक्षा-विधि में बच्चों को "शिक्षा की इकाई" माना गया है। बच्चों को खेल द्वारा शिक्षा दी जाती है। वह सब काम स्वयं करते हैं और उन कामों से शिक्षा प्राप्त करते हैं। अर्थात् अत्यन्त सरल रीति द्वारा, शिक्षाप्रद खेलों द्वारा वह स्वयं पढ़ना लिखना और गिनना सीख लेते हैं और आकार प्रकार व रंगों और वज़नों की पहचान करना सीख लेते हैं और इस तरह अपनी इन्द्रियों को बिना शिक्षक की सहायता के अपने दर्जे के दूसरे बच्चों की आवश्यकता के अनुसार बिना शिक्षा दिये सीख लेते हैं।"† इस शिक्षा-विधि पर जो आलोचनायें हैं वह यह हैं कि बच्चों को वैयक्तिक शिक्षा दी जाती है। वह समाज के व्यावहारिक पहलुओं से बिलकुल मुक्त होती है। बच्चे को समाज से बिलकुल अलग

---

*The Approach to Teaching, P. 94

†*IBID*. PP. 94-95

अलग नहीं रक्खा जा सकता। उसको ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है कि समाज का एक सफल नागरिक बन सके, और यह बात उसी समय सम्भव है जब कि वह शिक्षा इस प्रकार प्राप्त करे कि सामूहिक रूप से कक्षा में शिक्षा प्राप्त करते हुए भी वह अपने व्यक्तित्व को स्थिर रक्खे, अर्थात् वह दर्जे में शिक्षा पाता रहे। लेकिन साथ ही साथ उसके व्यक्तित्व को आँच न आये।

"माउन्टसोरी शिक्षा-विधि इस सिद्धान्त को पूर्ण रूप से स्वीकार करती है कि शिष्य (विद्यार्थी) इकाई है। चूंकि जीवन एक सामाजिक व्यवहार का नाम है और स्कूल एक छोटा सा समाज है, आवश्यकता इस बात की है कि कुछ नियम और कुछ निर्देशन हों लेकिन इसके प्रतिकूल वहाँ न तो कोई खास टाइमटेबिल होता है और न कक्षायें होती हैं। बच्चे जो जी में आता है करते हैं और सीखी बातें उचित अवसरों पर स्वतंत्रता के साथ काम में लाते हैं।"*

माउन्टसोरी शिक्षा-विधि के अतिरिक्त और भी शिक्षा-विधियाँ इस प्रकार की हैं जिनमें बच्चों को वैयक्तिक रूप से शिक्षा दी जाती है। जैसे डालटन प्लान में प्रत्येक विद्यार्थी को एक तरह से दूसरे विद्यार्थी से अलग शिक्षा दी जाती है। इसी प्रकार डेवी की शिक्षा-विधि ने भी बच्चे के व्यक्तित्व को बनाये रक्खा है। दूर क्यों जाइये, खुद हमारे देश में नई राष्ट्रीय शिक्षा जिसको वर्धा-स्कीम के नाम से पुकारते हैं बच्चे के व्यक्तित्व पर अधिक ज़ोर देती है। इन सब शिक्षा-विधियों का विस्तारपूर्वक वर्णन आगे किया जायगा। यहाँ यह बताना अभीष्ट है कि बच्चे की शिक्षा की सुन्दर मनोवैज्ञानिक विधि यही है कि उसको शिक्षा की इकाई माना जाय। उसकी मानसिक और शारीरिक शक्तियों को सामने रखते हुए और समाज का ध्यान रखते हुए उसको

---

*Education, Its Data and First Principles, Pp. 107-108

उचित रूप से शिक्षा दी जाय और इस तरह उसे कक्षा में सब लड़कों के साथ ही पढ़ाने से किसी हद तक अलग रक्खा जाय।

सामूहिक शिक्षा--मगर क्या बच्चे को सामूहिक पढ़ाई से बिलकुल ही अलग रखना अच्छा होगा? क्या स्कूल और कक्षा, स्कूल की सामाजिक जिन्दगी और उसका सामाजिक वातावरण बच्चों की शिक्षा के लिये बेकार बाते हैं? तो फिर इन संस्थाओं, इन मकतबों, इन पाठशालाओं, कालेजों और यूनीवर्सिटियों की क्या आवश्यकता है? बात यह है कि इस मामले में भी हमको मनोविज्ञान की शरण लेनी पड़ती है। मनोविज्ञान जिस तरह बच्चे की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए यह बताता है कि बच्चा किन किन शक्तियों का पालक है, किन किन प्राकृतिक प्रवृत्तियों का स्वामी है, किन किन स्थायी भावों को अपने अन्दर पैदा कर सकता है और किन किन रीतियों से शिक्षा-प्रयत्नों द्वारा अच्छे परिणाम पा सकता है, इसी तरह यह ज्ञान यह भी बताता है कि यही बच्चा जब एक समूह का, एक कुटुम्ब का अंग बन जाता है तो उसकी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों में एक स्पष्ट अन्तर हो जाता है। एक बच्चा जिसमें समूह से अलग रखकर एक विशेष बात से प्रभावित होने का डर नहीं रहता जब संगठित समूह का अंग बन जाता है बहुत जल्दी उसी बात को ग्रहण कर लेता है। कारण यह है कि समूह या गिरोह की एक विशेष मनोवृत्ति बन जाती है और इसी मनोवृत्ति के आधीन उसके कार्य होते हैं। उसी तरह बच्चे की मनोवृत्ति उसके व्यक्तित्व से और उसके एक समूह का सदस्य होने से दो अलग अलग बातें हैं। बच्चा एक समूह का सदस्य बनकर कभी कभी अपनी शक्ति से अधिक काम कर लेता है और कभी कम। इस तरह उसका व्यवहार कभी कभी उसको ऊपर की ओर ले जाता है और कभी अवनति की ओर फेंक देता है। समूह की मनोवृत्ति स्वयं अलग बन जाती है और बच्चा इसी मनोवृत्ति से प्रभावित होकर काम करता है।

"सामूहिक मनोवृत्ति" एक स्थायी ज्ञान है। इस विषय पर सबसे पहिले इंगलैंड के प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता मैकडूगल ने काम किया। उसने एक ग्रन्थ पुस्तक भी रच डाली जिसका नाम "ग्रूपमाइन्ड" या समूह का मस्तिष्क है। इस किताब में उसने समूह की मनोवृत्ति पर विस्तार पूर्वक दलील के साथ विवेचना की है और यह बताया है कि किस तरह समूह बहुत सी प्राकृतिक प्रवृत्ति और अन्त: क्षोभों से प्रभावित होकर अपने स्थायी भाव बनाता है और किस तरह समूह के सब व्यक्ति एक खास लीडर के नेतृत्त्व में बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

समूह की मनोवृत्ति पर पूर्ण विवेचना करना यहाँ उपयुक्त न होगा, फिर भी कुछ बातें वर्णन कर देना आवश्यक है जिससे मालूम होगा कि बच्चे को सदैव अलग शिक्षा देना लाभप्रद है, फिर भी हम कक्षा और समूह की महत्ता को छोड़ नहीं सकते हैं।

सामूहिक मनोविज्ञान—बच्चा बहुत सी प्राकृतिक प्रवृत्तियों का पालक होता है। यह प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ प्राय: ऐसी हैं जो केवल समाज या समूह में ही अपना प्रभाव दिखलाती हैं जैसे कि जत्थाबन्दी की प्राकृतिक मनोवृत्ति को ले लीजिये। यह शक्ति बिना जत्था या समूह के विकसित ही नहीं हो सकती। इसी प्रकार आत्म-विश्वास और छोटा समझने की प्रवृत्ति भी बिना समूह के सम्पर्क में आये निरर्थक हो जाती है। यह प्राकृतिक प्रवृत्ति उसी समय बच्चे की क्रिया में विकसित हो सकती है जबकि बच्चा दूसरे बच्चों के साथ मिले जुले और उनके साथ काम करे। अर्थात् यह प्राकृतिक प्रवृत्ति उस समय प्रगट होती है जबकि बच्चा एक समूह का कर्ता व्यक्ति बन जाता है।

जब एक ही विचार के कुछ लोग एक स्थान पर एकत्र हो जाते हैं तो उनका व्यवहार प्रत्येक व्यक्ति के प्रथकत्त्व प्रयोग से बिलकुल भिन्न

हो जाता है। इस समूह के कार्य, उसका प्रत्यक्ष ज्ञान, उसके विचार, मतलब, पूरा कृत्य अपने सदस्यों की वैयक्तिक प्रयोगिक क्रिया से बिलकुल अलग होता है। इस तरह इसकी मनोवृत्ति बिलकुल दूसरी ही हो जाती है। इसी मनोवृत्ति को काम में लाकर एक सुयोग्य व्यक्ति समूह को अपने वस में कर लेता है और उससे मनचाहा काम ले सकता है। इसी विद्या का ज्ञाता बनकर योग्य अध्यापक अपने समूह को ऐसे ऐसे पाठ दे सकता है जो साधारणत: अकेले विद्यार्थी को देना कठिन होता है। इस कला की बदौलत देश के नेता, संस्थाओं के कार्य-कर्त्ता, राजनीतिक समूहों के पथ-प्रदर्शक, धर्म के प्रवर्तक और राष्ट्रीय संस्थाओं के संरक्षक अपने अपने समूहों में आश्चर्यजनक काम कर जाते हैं।

प्राकृतिक शक्तियों के अतिरिक्त कुछ और मानसिक कार्य ऐसे हैं जिनमें मनुष्य की कई प्राकृतिक शक्तियाँ एक ही समय पर विकसित होकर एक विशेष रूप से कार्य करने लग जाती हैं। इस प्रयोग-विधि को हम "प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ" कहते हैं। इनमें सहानुभूति, जिज्ञासा, अनुकरण, खेल आदि प्रवृत्तियाँ सम्मिलित हैं। सर टी० पी० नन का विचार है कि मनुष्य में अनुकरण और संकेत की शक्ति इतनी अधिक होती है कि उसके प्रत्यक्ष ज्ञान, विचारों और कार्यों को जो नक़ल या अनुकरण के आधीन होते हैं, एक विशेष नाम से पुकारा जा सकता है। अतएव इसको उन्होंने अंग्रेज़ी में (Mimesis) कहा है। हम उसका अनुवाद "भेड़ चाल" कर सकते हैं। विशेषत: इस प्राकृतिक प्रवृत्ति के कारण समूह या वर्ग उत्पन्न होता है। भीड़ में आप सिर्फ अनुकरण की प्रवृत्ति को काम में लाकर उसके सदस्यों से जो चाहे काम ले सकते हैं। यहाँ तक कि आप सब लोगों को विवश कर सकते हैं कि वह रोने लगें या ठहाका मारकर हँसने लगें।

कक्षा में वैयक्तिक मनोवृत्ति—शिक्षा शास्त्रियों का विचार है कि जहाँ तक बच्चे के किताबी ज्ञान की शिक्षा का सम्बन्ध है, उसे वैयक्तिक

रूप से शिक्षा देना अधिक सुन्दर है, लेकिन बहुत सी बातें ऐसी हैं जो भली प्रकार सुन्दर रीति से केवल कक्षा में ही शिक्षा द्वारा सिखाई जा सकती हैं। जैसे कला-कौशल, साहित्य, नीति-विद्या, इत्यादि के पाठ कक्षा में सिखाये जायँ तो अच्छा है। कक्षा में सामूहिक मनोवृत्ति को काम में लाते हुए शिक्षक अपने विद्यार्थियों में उचित अन्तःक्षोभ उत्पन्न कर सकता है और मज़बूत प्रवृत्तियों की नींव डाल सकता है। यह वैयक्तिक शिक्षा में असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। पद्य पढ़ाते हुए पूरे दर्जे में पद्यों की सुन्दरताओं को केवल 'अनुकरण' की प्राकृतिक प्रवृत्ति की सहायता से विद्यार्थियों को इस तरह बताया जा सकता है कि प्रत्येक विद्यार्थी केवल प्रसन्न ही न हो बल्कि सिर धुनने लगे। इसी तरह नीति-विद्या के पाठ भी दिये जा सकते हैं।

सामूहिक रूप से पढ़ाने के सामान्य उद्देश्य—यह अनुचित न होगा अगर हम यहाँ कुछ ऐसे साधारण उद्देश्यों का वर्णन करें जिनकी आवश्यकता शिक्षक को प्रतिदिन कक्षा को पढ़ाने में होती है। यह सिद्धान्त डब्लू० एम० रायबरन की पुस्तक "मनोविज्ञान और शिक्षा-विधि" से लिये गये हैं।

१—जो कुछ तुमको पढ़ाना है उसे अच्छी तरह समझ लो।

२—अपने पाठ को भली प्रकार चुन लो।

३—पाठ के समय "शिक्षा के उपाय" से पूरी तरह लाभ उठाओ।

४—पूरी कक्षा को पढ़ाओ।

५—घबराहट को पास न फटकने दो और स्वाभाविकता को अन्त तक स्थायी रक्खो।

६—याद रक्खो, कक्षा को पढ़ाने की कसौटी यह है कि सब बच्चे काम में तल्लीन रहें।

७—बच्चों के पूर्वज्ञान से पूरी तरह लाभ उठाओ।

८—जहाँ प्रतिदिन की बातों से सहायता मिले उनसे सहायता लो।

९—नियमों का आप भी पालन करो और बच्चों से पालन कराओ।

१०—सदाचरण के पालक स्वयं हो और बच्चों से भी उसका पालन कराओ।

प्रश्न

१—खेल के मैदान में एक चारवर्षीय और एक दसवर्षीय बच्चे को दूसरे बच्चों के साथ खेलते देखिये। ध्यानपूर्वक देखिये कि इनके खेलों में क्या क्या अन्तर हैं। उनका वर्णन कीजिये।

२—"एक छोटे से गाँव के स्कूल के बच्चे जहाँ एक ही अध्यापक के आधीन कई दर्जे होते हैं" उन बच्चों से शिक्षा में योग्य होते हैं जो शहर के बड़े स्कूलों में शिक्षा पाते हैं। यदि इस बात को ठीक मान लिया जाय तो आपके विचार में इस का क्या कारण हो सकता है?

३—श्रेणी-बंधन (जमातबन्दी) किसे कहते हैं? यह क्यों आवश्यक है? बताइये कि आप किन-किन सिद्धान्तों पर स्कूल का श्रेणी-बन्धन (जमातबन्दी) करेंगे।

४—सामूहिक शिक्षा की शर्तें क्या हैं? कुछ रीतियों पर विवेचना कीजिये जो आप कक्षा में वैयक्तिक प्रतिकूलता की गुत्थी सुलझाने के लिए प्रयोग करेंगे। (सी० टी०)

५—बताइये वैयक्तिक विद्यार्थी के विषय में पूर्ण ज्ञान रखने से शिक्षक को किस तरह उपरोक्त काम में सहायता मिल जाता है? (सी० टी०)

६—"सामूहिक शिक्षा का उद्देश्य और अंत समानता है और इस तरह वह व्यक्ति को कुचल डालती है"। इस विचार पर विवेचना कीजिये और बताइये कि आप कक्षा में वैयक्तिक प्रतिकूलता से किस तरह कार्य करने के लिए प्रयत्न करेंगे।

७—विस्तार से समझाइये कि आप शब्द "वैयक्तिकता" से क्या तात्पर्य समझते हैं? वर्तमान शिक्षा किस सीमा तक वैयक्तिकता के विकास में सहायता देती है? (एल० टी०)

अध्याय ४

शिक्षक और शिष्य

शिक्षा कला में ट्रेनिंग की महत्ता—बच्चे की शिक्षा के सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात शिक्षा-विधि है। बच्चे को किस तरह शिक्षा दी जाय? वह कौन से सिद्धान्त हैं जिनको बच्चे के शिक्षा-काल में दृष्टि में रक्खा जाय? शिक्षा-मनोविज्ञान के वह कौन से सिद्धान्त हैं जिनकी पैरवी के बिना बच्चे की शिक्षा उसकी प्रवृत्ति के अनुसार नहीं हो सकती और इसलिए अच्छे परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते? आधुनिक काल में शिक्षा-शास्त्रियों का लगातार परिश्रम और प्रयत्न किन परिणामों पर पहुँचा है और प्रतिदिन प्रयोग और निरीक्षणों के आधार पर हम शिक्षा देने की कौन सी रीतियों को अच्छी दृष्टि से देखते हैं और किन को नहीं? यह तो स्पष्ट है कि आजकल बच्चे की शिक्षा की सब विधियाँ मनोविज्ञान पर अवलंबित हैं। आजकल प्राचीन काल की तरह बच्चे के मस्तिष्क को एक खाली बर्तन की तरह नहीं समझा जाता जिसमें शिक्षक ज्ञान के भण्डार को ठूँस देता था और भय, ताड़ना और दण्ड से काम लेता था; बल्कि जैसा कि हमें मालूम है बच्चे का मस्तिष्क दिन-प्रतिदिन विकास होती हुई एक जीवित चेतना है जो प्रारम्भ से बहुत सी प्राकृतिक शक्तियों का आधार है और बच्चे की आयु के साथ-साथ बहुत सी बातें प्राप्त कर करके अपनी शक्तियों में असीम वृद्धि करता रहता है। अतएव हम जानते हैं कि बच्चा बालकाल ही से बहुत सी प्रतिक्रियायों पर (Reflex) प्रयोगात्मक कार्यों में लाने के लिए अधिकार रखता है। इन कार्यों के करने के लिए वह किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करता

न कोई इरादा करता है। बल्कि यह काम अपने आप हो जाते हैं जैसे कि आँख के सामने कोई पतंगा या भुनगा आ जाने से आँख अपने आप झपक जाती है। इस प्रकार प्राकृतिक शक्तियाँ (Instincts) और अन्तःक्षोभ (Emotions) बच्चा जन्म से लेकर संसार में आता है और यही शक्तियाँ उसकी पग-पग पर सहायक होती हैं और किसी विशेष अवसर पर व्यवहारिक रीति का कारण बनती हैं। बच्चा ज्यों ज्यों बढ़ता है, उसकी प्राकृतिक प्रवृत्ति की सूची में भी वृद्धि होती रहती है अर्थात् जो प्राकृतिक शक्तियाँ सोई होती हैं वह जागती जाती हैं। इसी के साथ-साथ बच्चा अपनी प्राकृतिक प्रवृत्तियों को सामने लाता है जो वास्तव में प्राकृतिक शक्तियों से ही बनती हैं। अतएव खेल-कूद में, संकेत या अनुकरण में, बातें ग्रहण करने में और काम का ढर्रा बाँधने में यही मानसिक क्रियायें कार्यान्वित होती हैं जो बच्चे के स्वभाव की पहिले ही से विशेष भाग होती हैं। प्राप्त की हुई मानसिक क्रियाओं की सूची में हम स्थायी भावों (Sentiments) को ले सकते हैं। बच्चे के अच्छे या बुरे स्थायी भावों का उत्तरदायित्व अधिकतर बल्कि पूर्ण रूप से उन लोगों पर होता है जो उसकी शिक्षा व दीक्षा की देख-भाल के उत्तरदायी होते हैं। एक सुयोग्य अध्यापक अपने विद्यार्थियों में अच्छी चीजों और सदगुणों के अन्तःक्षोभ उत्पन्न कराने में सफल हो सकता है। इसके प्रतिकूल एक अनुत्तरदायी अध्यापक बच्चे के मस्तिष्क की प्रगति के इस पहलू को बिलकुल ही छोड़ सकता है जिसका फल यह होता है कि बच्चे के स्थायी भाव उच्च होने की अपेक्षा गिर जाते हैं।

इसके अतिरिक्त बच्चे के मस्तिष्क के और जितने भी कृत्य हैं वह सब शिक्षा-काल में उचित रीतियों से काम कर सकते हैं और अच्छे परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। बच्चे की पंचेंद्रियों की उचित व्यवस्था, उसकी पर्यालोचन-शक्ति, उसकी जिज्ञासा, उसका तर्क, उसकी कल्पना-शक्ति—यह सब मानसिक शक्तियाँ अच्छी शिक्षा-विधि से विकास को प्राप्त होकर पूर्ण शिक्षा देने में अत्यधिक सहायता पहुँचा

सकती हैं। वास्तव में अच्छी शिक्षा-विधि और अच्छे शिक्षक की यही विशेषता है। अच्छा अध्यापक बनना एक कला है और जब तक हम इस कला का भली प्रकार अध्ययन न करें हमारे लिए यह असम्भव है कि बच्चे को पढ़ाने की कला में सफल बन सकें। निस्सन्देह बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो जन्म से ही शिक्षक होते हैं, जिनमें बच्चे के पालन-पोषण की प्राकृतिक योग्यता होती है और शिक्षा देने की प्राकृतिक शक्तियाँ होती हैं। प्राय: माता-पिता, विशेषकर मातायें और बड़े भाई-बहन, शिक्षित या अशिक्षित, अपनी सहानुभूति को काम में लाते हैं और उनको पता भी नहीं होता कि उनमें वह योग्यतायें मौजूद हैं। लेकिन इन लोगों की एक बड़ी संख्या को, जो वास्तव में स्कूलों में पढ़ाते हैं, इस कला को कभी-कभी सरलतापूर्वक और कभी कठिनता से सीखना पड़ता है।*

अध्यापक और शिक्षार्थी—शिक्षा-विधि पर तर्क-वितर्क करने से पहिले अच्छा यह होगा कि हम अध्यापक और विद्यार्थी पर कुछ प्रकाश डालें। मनोविज्ञान हमें बताता है कि प्रत्येक बालक इस योग्य नहीं है कि वह शिक्षा प्राप्त कर सके। बच्चे अपनी अपनी मानसिक शक्तियों के विचार से एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इनकी बौद्धिक शक्तियाँ अलग-अलग होती हैं। कोई बच्चा अधिक बुद्धिमान होता है तो कोई कम; कोई साधारण स्कूलों की शिक्षा प्राप्त कर सकता है तो कोई नहीं। कुछ यूनीवर्सिटियों और कालेजों में उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं तो कुछ केवल किसी दस्तकारी की शिक्षा ही प्राप्त करने के योग्य होते हैं। बच्चे अपनी प्राकृतिक प्रवृत्तियों, मानसिक शक्तियों, और शारीरिक शक्तियों के अनुसार एक दूसरे से भिन्न होते हैं और इन सब को शिक्षा के सम्बंध में एक ही लाठी से हाँका नहीं जा सकता।

**Ward & Roscue* · The Approach to Teaching, p. 9.

इसी प्रकार शिक्षक भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। जन्म-जात अध्यापक के अतिरिक्त प्राय: ऐसे ही शिक्षक होते हैं जो केवल अपने परिश्रम और योग्यता की बदौलत शिक्षा-कला में विशेष योग्यता प्राप्त कर लेते हैं और सफल अध्यापक बन जाते हैं। कुछ शिक्षक अपने ज्ञान की गहनता के कारण शिक्षा देने में असफल रह जाते हैं और कठिन परिश्रम से भी अपने शिक्षार्थियों को यथार्थ रूप में शिक्षा नहीं दे सकते। बहुत से शिक्षक तो प्रारम्भ से ही असफल अध्यापकों की सूची में गिने जा सकते हैं। न तो उनमें ज्ञान होता है, न उनका शिक्षण से कुछ प्राकृतिक लगाव होता है, न वह परिश्रम करना चाहते हैं और न परिश्रम कर ही सकते हैं। वह केवल नाम के अध्यापक बनते हैं। उन्हें इससे कुछ मतलब नहीं कि बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं या नहीं और न उन्हें इससे कुछ मतलब है कि उनका कर्तव्य एक अध्यापक के नाते क्या होना चाहिये। ऐसे अध्यापक समाज के लिए बहुत ही खतरनाक होते हैं और किसी रूप में भी उनकी शिक्षण-सेवायें प्राप्त नहीं करनी चाहिये।

अच्छे अध्यापक के गुण—प्रोफ़ेसर डमविल अपनी पुस्तक (Teaching—Its Nature and Varieties) में अच्छे अध्यापक की विशेषतायें वर्णन करते हुए लिखते हैं :—

"जो लोग इस (शिक्षण) पेशे में योग्य और सफल होने के अभिलाषी हैं उनमें साधारण मानसिकता के अच्छे परिमाण में होने के अतिरिक्त इस बात की आवश्यकता भी है कि उनमें कुछ विशेष प्रकार के प्राकृतिक झुकाव (Aptitudes) हों जैसे निगरानी व सुधार की शक्ति, आत्म-विश्वास, काफी अच्छी और साफ वाक्-शक्ति, योग्यता और सहानुभूति। इन विशेषताओं में से कुछ तो उचित परिश्रम व वार्तालाप से प्राप्त की जा सकती हैं परन्तु कुछ और, विशेषकर निगरानी और सुधार की शक्ति, कुछ व्यक्तियों में बिलकुल ही

असम्भव है हालाँ कि वह दूसरे गुणों में उचित रीति द्वारा प्राकृतिक योग्यतायें रखते हैं। यदि हम चाहते हैं कि किसी प्रकार की सफलता प्राप्त करें तो किसी विशेष योग्यता का कोई न कोई आधार अवश्य होना चाहिये। अगर ऐसे व्यक्ति को जिसमें साधारण योग्यता की प्रचुर मात्रा विद्यमान है मगर विशेषताओं की काफी कमी है इस पेशे (शिक्षण) में झोंक दिया जाय तो उसका जीवन स्वयं उसके लिए लज्जास्पद बन जायगा और जो बच्चे उसकी देखरेख में रहेंगे उनके लिए भी मुसीबत हो जायगी।"*

एक अच्छे अध्यापक में ईश्वर-प्रदत्त गुणों के अतिरिक्त कुछ और बातें अत्यन्त आवश्यक हैं। उसको बच्चे की मनोवृत्ति का पूर्ण रूप से ज्ञान होना चाहिये, अर्थात् वह मनोविज्ञान के प्रकाश में बच्चे की प्राकृतिक प्रवृत्ति और प्रकृति से पूर्ण परिचित हो। शिक्षा-विधि में वह पूर्ण रूप से परिचित हो। उसे यह भी जानने की आवश्यकता है कि कौन-कौन सी शिक्षा-विधियाँ किन-किन बच्चों के लिए और किन अवसरों पर उचित हैं। इसके अतिरिक्त उसे शिक्षा की प्रगति से अर्थात् शिक्षा-कला के विकास से भी परिचित होने की आवश्यकता है, ताकि वह शिक्षा-विधि के प्रकाश में उचित अवसरों पर शिक्षा और उसकी रीतियों पर अन्वेषण कर सके और उसके महत्त्व को जान सके। उसको बच्चे के शारीरिक परीक्षण और शारीरिक अंगों के विकास से भी भली प्रकार परिचित होना चाहिये ताकि वह शिक्षण-काल में उसके बैठने-उठने, खड़े होने, लिखने-पढ़ने, व्यायाम करने और खेलने-कूदने की रीतियों पर दृष्टि रख सके और उसके अंगों को कमजोर या विकृत होने से बचा सके।

इन बातों के अतिरिक्त अच्छे अध्यापक में इस बात की आवश्यकता

---

* *Dumville*: Teaching, Its Nature & Varieties, p. 14.

अनिर्वाय रूप से है कि वह अपने ज्ञान को प्रयोग के रूप में सुन्दर ढंग से प्रयोग कर सके। वास्तव में यही गुण अच्छे अध्यापक की विशेष योग्यता है। अध्यापक के व्यक्तित्व का बच्चे पर अनिवार्य रूप से प्रभाव पड़ता है। अध्यापक अपनी कार्यप्रणाली द्वारा, अपने उठने-बैठने की रीतियों से, अपने आचार-विचार से, अपनी डाट-डपट से और अपने सुझावों से (Suggestions), अपने प्रशंसात्मक और अप्रशंसात्मक शब्दों से, यहाँ तक कि अपने प्रश्नों से बच्चों पर अपरोक्ष रूप से प्रभाव डालता है जो उनकी मनोवृत्ति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों और प्रभावों का कारण बन जाता है। अतएव परिणाम यह होता है कि अच्छे अध्यापक से प्राप्त किये हुए यह प्रभाव बच्चों के चरित्र पर और उनके व्यक्तित्व (Individuality) पर अत्यन्त सुन्दर प्रभाव डालते हैं। इसके प्रतिकूल अनुत्तरदायी अथवा खराब अध्यापक अपने बच्चों पर अप्रिय प्रभावों का कारण बन जाता है।

अच्छे अध्यापक को चाहिये कि वह अपने आधीन बच्चों में अत्यन्त दिलचस्पी ले और उनकी शिक्षा के साथ-साथ उनके चरित्र के निर्माण म आदर्श रूप से भाग ले। इस बात की आवश्यकता है कि वह अपनी कक्षा के सब बच्चों को यह विश्वास दिला दे कि वह विश्वस्त रूप से प्रत्येक बच्चे में दिलचस्पी रखता है, वह हर एक की सहायता के लिए लालायित रहता है और वह ऐसा करने के लिए पूरी-पूरी योग्यता रखता है। उसे उनकी दृष्टि में एक देवता होना चाहिये और सदैव अपनी शारीरिक शक्ति के कारण उनके मस्तिष्क में एक अच्छा स्थान सरलता से प्राप्त कर लेना चाहिये। फिर भी अन्त में सबसे अधिक महत्त्व रखनेवाली चीज़ है अध्यापक की सूझ-बूझ और उसके चरित्र की महत्ता। अत: एक नियम की दृष्टि से संसार के सबसे बड़े स्कूल मास्टर बड़े खिलाड़ी नहीं रहे हैं।*

---

* *Green & Birchenough*: A Primer of Teaching Practice, p. 233.

सारांश यह कि अच्छे अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह एक तरफ तो शिक्षा-सिद्धान्तों और नियमों से पूरी तरह परिचित हो और दूसरी तरफ वह व्यवहारिक रूप में अपने ज्ञान को अपने बच्चों में प्रयोग कर सके। अगर एक अध्यापक केवल शिक्षा-सिद्धान्तों से ही परिचित है और शिक्षा-सिद्धान्तों को ही शिक्षा-काल में प्रत्येक पद पर व्यवहार में लाता रहता है और बच्चों की आवश्यकता को छोड़ देता है, तो ऐसी अवस्था में वह एक सफल अध्यापक कहलाने का अधिकारी नहीं है। इसके प्रतिकूल अगर वह अपने ज्ञान के साथ-साथ बच्चे की तात्कालिक आवश्यकता को, उसकी जिज्ञासा और प्रतिक्षण बढ़ती हुई प्रवृत्ति को सामने रखता है और उसीके अनुसार अपने ज्ञान को व्यवहारिक रूप में काम में लाने से पहिले उसमें आवश्यक परिवर्तन कर लेता है, ताकि वह सुन्दर परिणाम प्राप्त कर सके, तो इस अवस्था में वह सुयोग्य अध्यापक के कर्तव्य को निभाता है और उसकी गणना अच्छे अध्यापकों की सूची में हो सकती है।

शिक्षा के विषय के अध्ययन के पक्ष में हम कुछ इस प्रकार की बात कह सकते हैं कि एक अपरिचित अध्यापक एक अच्छा भला अध्यापक बनाया जा सकता है बशर्ते कि उसकी कमज़ोरी किसी असाधारण त्रुटियों में से न हो और यह कि अच्छे अध्यापक और अच्छे बन सकते हैं।

"ईश्वरप्रदत्त अध्यापक" भी बुरे नहीं रह सकते अगर वह शिक्षा-कला के सम्बन्ध में अपने संकुचित विचारों को और विस्तृत स्वरूप प्रदान करें और गम्भीर बनायें और इस तरह एक नियम-बद्ध नेतृत्व के लिए और अधिक लाभप्रद बना लें। यह सत्य हो सकता है कि एक बड़े कवि की तरह एक बड़ा शिक्षक भी जन्म से ही बड़ा होता है। उसको बड़ा बनाया नहीं जा सकता। लेकिन हमारे सामने जो प्रश्न है वह इस प्रकार हल नहीं किया जा सकता कि एक पुराने परन्तु पूर्ण वाक्य को आवश्यकता के अनुसार अपना

लें और बस। हमें प्रथम श्रेणी से कम श्रेणी के कवियों की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है लेकिन इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि हम मध्यम श्रेणी की विशेषताओं वाले अध्यापकों को दीक्षा दें ताकि वह अपनी ईश्वर-प्रदत्त योग्यताओं को सुन्दर बना सकें, और ऐसा करने का एक उपाय यह है कि हम उनके प्रयोगों को उस तर्क-वितर्क के अन्वेषण की ओर ले जायें जो अच्छे सिद्धान्तों के बनाने की जान हैं।*

विद्यार्थी—वर्तमान काल में जो शिक्षा-विधियाँ प्रचलित हैं वह सब विद्यार्थियों की मनोवृत्ति पर अवलंबित हैं। पहले-पहल बच्चे को शिक्षा देने में मनोविज्ञान का बिलकुल दखल न था। बच्चे को जो कुछ पढ़ाया जाता था वह केवल डरा-धमका कर या ज़बरदस्ती। बच्चे की प्राकृतिक प्रवृत्ति, उसके अंतःक्षोभ, उसकी दिलचस्पियाँ इत्यादि बिलकुल ही छोड़ दी जाती थीं। इसका परिणाम यह होता था कि बहुत से बच्चे शिक्षा जैसी अमूल्य निधि से वंचित रह जाते थे। लेकिन अब समय बदल चुका है। आजकल मनोविज्ञान ने बहुत उन्नति कर ली है; अतएव उसके साथ-साथ शिक्षा-विधियों में भी उन्नति होती जा रही है। मनोविज्ञान के पुराने नियम समय के साथ-साथ बदलते रहते हैं और उसी के साथ शिक्षा के नियमों में भी आश्चर्यजनक परिवर्तन हो रहे हैं। प्रारम्भिक काल का मनोविज्ञान मस्तिष्क को खास वैयक्तिक वस्तु समझ रहा था जिसका सम्बन्ध बिलकुल साफ़-साफ़ बाह्य जगत से होता था। एक अकेली बात जो सिद्ध होने को थी वह यह थी कि किन रीतियों से संसार और मस्तिष्क एक दूसरे के साथ व्यवहार में आते हैं। इस पूरे व्यवहृत प्रयोग का अर्थ सिद्धान्त रूप से यह हुआ कि मानो सारे

**Raymont* : Principles of Teaching, pp. 2[illegible]-26.

संसार में केवल एक ही मस्तिष्क का गृह है। वर्तमान काल की प्रवृत्ति यह है कि वैयक्तिक मस्तिष्क को समाजी जीवन का एक रूप (Function) समझा जाय अर्थात् यह कि वह अपने आप विकसित होने या व्यवहृत होने पर अनधिकार चेष्टा नहीं रखता बल्कि उसको समाजी संस्थाओं से उसे प्रभावित या लगातार शक्तियाँ पहुँचाने और अपना खाद्य समाज से पाने की आवश्यकता रहती है। वंश-परम्परा की कल्पना ने यह स्पष्ट कर दिया है कि एक व्यक्ति की सम्पत्ति चाहे वह मानसिक हो या प्राकृतिक उसको अपनी वंश-परम्परा से पैतृक रूप से मिलती है अर्थात् वह उसके लिए एक सम्पत्ति है जो उसको उसके पूर्वजों से मिलती है और उसकी देख-रेख में भावी जीवन के लिये सुरक्षित रहती है। विकास के सिद्धान्त से इस बात की चेतावनी मिलती है कि मस्तिष्क को एक व्यक्ति के अतिरिक्त किसी दूसरे के साझे की सम्पत्ति नहीं स्वीकृत किया जा सकता। बल्कि वह तो मनुष्य-जाति के लिए सीमित विचारों और प्रयत्नों का दूसरा नाम है। और यह कि वह ऐसे वातावरण में स्फुटित होता है जो कि सामाजिक भी है और प्राकृतिक भी। इसके अतिरिक्त यह कि सामाजिक आवश्यकतायें और उद्देश्य उसको वह रूप देने में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं। यही नहीं बल्कि बर्बरता, अशिक्षा, तथा सभ्यता समाज का मुख्य अन्तर केवल उनकी पूर्ण प्रकृति का अन्तर नहीं है बल्कि सामाजिक पैतृक सम्पत्ति और सामाजिक साधनों का अन्तर है।*

एतदर्थ बच्चा अपनी प्राकृतिक प्रवृत्ति की दृष्टि से, अपने पैतृक प्रभावों के प्रभाव से और समाज का एक अंग होने की हैसियत से विभिन्न गुणों का पात्र होता है। अच्छे अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह न केवल बच्चे की प्राकृतिक प्रवृत्ति का निरीक्षण करे और उसकी मानसिक शक्तियों को काम में लाये बल्कि अपनी शिक्षा-प्रणाली में

---

*_Dewey_ : School & Society, pp. 90-91.

बच्चे के व्यक्तित्व के साथ-साथ उसको समाज का एक अंग समझते हुए ऐसी शिक्षा दे जो समाज के लिए लाभप्रद हो। यही नहीं वरन् उसको उसके पूर्वजों के ज्ञान व मानसिक शक्तियों की थाती समझते हुए उन सब मानसिक शक्तियों को विकसित कर दे ताकि पैतृक रूप में प्राप्त किये हुए कोष उसको न केवल ज्ञान-विज्ञान से मालामाल कर दें बल्कि उसको समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान दिला दें।

बच्चों के निरीक्षण के विषय में शिक्षक को बच्चे की मानसिक प्रवृत्तियों को कदापि न छोड़ना चाहिये। साधारणतः बच्चे का विकास इस प्रकार होता है : (१) बचपन, (२) लड़कपन, (३) वयस्क होने से पूर्व, (४) पूर्ण वयस्क। बच्चों की शिक्षा-प्रणाली का विकास अधिकतर उसके विकास के स्वरूप पर निर्भर होता है। एक बच्चा जो सिर्फ ४ साल का है उस बच्चे से जो १० वर्ष का है बिलकुल विभिन्न प्रकार से शिक्षा प्राप्त करेगा। अतएव हम जानते हैं कि ४ वर्ष के बच्चे की शिक्षा आदि से अन्त तक खेल ही खेल होगी और उसी खेल से वह लिखने-पढ़ने और गिनने के प्रारम्भिक सिद्धान्तों से परिचय प्राप्त कर लेगा। इसके प्रतिकूल दस वर्ष के बच्चे की शिक्षा में खेल का भाग बहुत कम होगा और उसकी मानसिक शक्तियों की सहायता से उसको ऐसी शिक्षा दी जायगी जो कि मनोविज्ञान के अनुसार होगी और अच्छे परिणाम प्राप्त करेगी। यही कारण है कि वर्तमान काल में विभिन्न आयु के बच्चों को विभिन्न रीतियों से शिक्षा दी जाती है। बहुत छोटे बच्चों के लिए नरसरी स्कूल होते हैं। इससे बड़ों के लिए किंडरगार्टन आदि और बड़ी आयु वाले बच्चों के लिए प्राइमरी स्कूल हैं। इससे भी बड़ी आयु के बच्चों के लिए सेकेन्डरी स्कूल इत्यादि हैं। हमारे प्रान्त में जो बुनियादी शिक्षा प्रचलित है उसमें उन सिद्धान्तों को दृष्टि में रक्खा गया है और युद्ध के समाप्त होने के पश्चात् शिक्षा की स्कीम (Post-war Education

Scheme) में भी उन पर अधिक से अधिक ज़ोर दिया गया है जिसका विस्तृत वर्णन आगे किया जायगा।

शिक्षा-प्रणाली के कुछ सिद्धान्त—शिक्षा-प्रणाली के साधारण सिद्धान्त वर्णन करने से पहिले आवश्यक है कि हम नये अध्यापक को इस बात से सचेत कर दें कि शिक्षा की प्रणाली मशीन के कल-पुर्जों की तरह नहीं जो नियत ढर्रे पर नीरस और बिना दिलचस्पी के कार्यान्वित होती रहे। सत्य तो यह है कि प्रत्येक पाठ जो बच्चों को पढ़ाया जाता है स्वयं अपनी अलग शिक्षा-प्रणाली रखता है। उसमें दिलचस्पी होती है, सरसता होती है और जान होती है। बच्चे प्रत्येक सफल पाठ से असीम प्रसन्नता प्राप्त करते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से अध्यापक से ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस तरह सफल अध्यापक अपने बच्चों को एक नये ढंग से बता सकता है जो वह स्वयं बच्चों के पूर्व-ज्ञान को, उनकी मानसिक शक्तियों और पाठ के उद्देश्य को सामने रखते हुए गढ़ सकता है। इसका मतलब यह नहीं है कि शिक्षा की प्रणाली बिलकुल असिद्धान्तिक है और शिक्षकों के पथ-प्रदर्शन के लिए हमारे पास कुछ ऐसे नियम नहीं हैं कि जो उनको उनके पाठ में सहायता दे सकें। जिस तरह शतरंज का खिलाड़ी अपने मोहरों की चालें जानता है मगर खेल के समय वही चाल चलता है जिससे उसका विपक्षी मात खा सके, इसी तरह सफल अध्यापक शिक्षा-प्रणाली के मोटे मोटे सिद्धान्तों से कुछ न कुछ परिचित होता है। वह बच्चों की मनोवृत्ति को भली प्रकार जानता है। वह उनकी बुद्धि और पूर्व-ज्ञान से अच्छी तरह जानकारी रखता है और सबसे ज्यादा उसे अपने ऊपर पूर्ण विश्वास होता है। जब वह बच्चों को पाठ पढ़ाता है तो अपने ज्ञान के कोष को बहुत होशियारी से काम में लाता है जिससे शिक्षा-त्मक खेल में जान पैदा हो जाती है और वह अपने जीवित मोहरों की सहायता से अपनी इच्छानुसार विद्यार्थी पर ऐसी चालें

चलता है कि बाज़ी उसके हाथ में रहती है और उसकी गणना अच्छे अध्यापकों में होने लगती है।

शिक्षा देने के तीन अनिवार्य सिद्धान्त यह हैं कि शिक्षक ज्ञान से परिपूर्ण हो, उसकी शिक्षा-प्रणाली अच्छी हो और उसका अनुशासन अच्छा हो। अगर शिक्षक अपने विषय को अच्छी तरह नहीं जानता तो उससे यह आशा रखना बेकार है कि वह अपने बच्चों को वह विषय सफलता और विश्वास के साथ पढ़ा सकेगा। ऐसे अध्यापक निस्सन्देह विद्यार्थियों के लिये खतरनाक हैं। सरलता के लिए हम यह मान लेते हैं कि अध्यापक अपने विषय पर अधिकार रखता है और वह अपने विद्यार्थियों की 'क्यों' को सन्तुष्ट करने की अत्यन्त योग्यता रखता है। अब प्रश्न यह है कि वह अपने ज्ञान को बच्चों के सामने किस तरह सफलता के साथ रखे? इसका उत्तर वार्ड और रास्क ने इस प्रकार दिया है:

"यह बिलकुल सत्य है कि एक अच्छी शिक्षा-प्रणाली केवल सिद्धान्तों का यांत्रिक संग्रह नहीं होती। हर एक अध्यापक को स्वयं अपना ढंग प्रयोग करना चाहिए, फिर भी यह याद रखना आवश्यक है कि अच्छी शिक्षा-प्रणाली केवल कुछ मोटे सिद्धान्तों को स्थायी रूप से दृष्टि के सामने रखने से ही प्राप्त हो सकती है। इन सिद्धान्तों में यह बातें सम्मिलित हैं: शिक्षा में एक चुनी हुई प्रणाली, मनोविज्ञान की ऐसी क्रमबद्धता जिससे समय और शक्ति नष्ट न हो और वर्णन-शैली का ऐसा विभाजन जिसकी बदौलत विद्यार्थियों से अधिक से अधिक सहायता प्राप्त हो सके और शिक्षा में उनकी दिलचस्पी कायम रह सके"।*

**Ward and Roscue* : The Approach to Teaching, p. 63.

प्रश्न

१—अच्छा अध्यापक बनना एक कला है और जब तक हम इस कला का अच्छी तरह अध्ययन न कर लें हमारे लिये यह असम्भव है कि बच्चों के पढ़ाने की कला में सफल बन सकें। इस बात की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिये।

२—"सम्भवतः अध्यापक के मनोविज्ञान से परिचित होने की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि बच्चों के मनोविज्ञान से। क्यों कि वास्तव में प्रत्येक शिक्षा का विषय इन दोनों की क्रिया और प्रतिक्रिया का विषय होता है और जिस हद तक अध्यापक त्रुटियाँ करता है उस हद तक बच्चा भी" इस बात की सत्यता की तर्क द्वारा विवेचना कीजिये।

३—"अध्यापक का सबसे पहला कर्तव्य यह है कि वह इस बात पर विचार करे कि कैसे और किन अवस्थाओं में लोग और विशेषतः बच्चे बातें सीखते हैं।" आप इस विचार से सहमत हैं या नहीं? विस्तृत रूप से वर्णन कीजिये।

४—अध्यापक में क्या क्या आवश्यक गुण होने चाहिये, ताकि वह विद्यार्थियों को नियंत्रण में रख सके।

५—सफल अध्यापक में कौन से गुण होना आप जरूरी समझते हैं? विस्तृत वर्णन कीजिये। [नार्मल]

६—पाठ पढ़ाने में नीचे लिखी हुई बातों की महत्ता प्रकट कीजिये:—

अ—शिक्षक की आवाज़

ब—शिक्षक की भाषा

स—प्रश्न

द—अध्यापक का व्यक्तित्व (नार्मल)

७—"विद्वान हमेशा सफल अध्यापक नहीं होते" इस पर अपने विचार प्रगट कीजिये और यह बताइये कि सफल अध्यापक में कौन से गुण होने चाहियें। अपने पाठ को सफल बनाने के लिये अध्यापक क्या उपाय कर सकता है ?

(नार्मल)

८—"अध्यापक प्रत्येक बच्चे से यह आशा नहीं कर सकता कि वह स्कूल में अच्छा ही काम करेगा। लेकिन उसे प्रत्येक बालक की सहायता करनी चाहिये ताकि वह योग्यतायें भली प्रकार विकसित हों जिनको वह जन्म से माता के उदर से ही लेकर संसार में आता है।" इस बात पर संक्षेप से विवेचना कीजिये।

अध्याय ५

शिक्षा का पाठ्य-विषय

इस अध्याय में हम इस बात पर प्रकाश डालेंगे कि हम बच्चो को उनकी शिक्षा के काल में कौन-कौन से विषय पढ़ायें और कौन-कौन से नहीं एवम् किन विषयों पर अधिक ध्यान दें और किन पर कम। शिक्षा के विषय और उन विषयों में विभिन्न पाठ्य-विषयों का चुनाव साधारणत: शिक्षा-विभाग का काम है। अध्यापक को इससे प्रत्यक्ष रूप में कोई मतलब नहीं कि अमुक विषय बच्चे को क्यों पढ़ाया जाता है और अमुक क्यों नहीं, या एक विषय शिक्षा का अनिवार्य विषय क्यों है और दूसरा क्यों नहीं। लेकिन अध्यापक के लिए यह जानना आवश्यक है कि शिक्षा का पाठ्य-क्रम नियत करने की आवश्यकता क्यों पड़ती है और वह कौन-कौन से सिद्धान्त हैं जिनको दृष्टि के सामने रखते हुए शिक्षा का पाठ्य-क्रम निर्धारित किया जाता है। अतएव हम उन्हीं दृष्टिकोणों की यहाँ पर संक्षिप्त विवेचना करेंगे।

शिक्षा-पाठ्य-विषय—शिक्षा-पाठ्य-विषय का विकास धीरे धीरे किस तरह हुआ इससे हमें यहाँ मतलब नहीं। शुरू-शुरू में शिक्षण-पाठ्य-क्रम निश्चय भोंडी, अनमेल, बेजोड़ शक्ल में होगा। बच्चा धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त थोड़ा-बहुत लिखना-पढ़ना और गिनना सीख लेता होगा। लेकिन ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि बच्चे को उसके पूर्वजों के अनुभवों के प्रयोग और कार्य सिखाये जायँ। अत: समय-समय पर नये-नये विषय शिक्षण-पाठ्य-क्रम में सम्मिलित किये गये। फिर समय के

साथ-साथ उन नये-नये विषयों को भी विभिन्न विषयों में विभक्त कर दिया गया और उनको बच्चे और समाज की आवश्यकता के अनुसार या तो शिक्षण-पाठ्य-क्रम में सम्मिलित कर दिया गया या उससे निकाल दिया गया।

एतदर्थ शिक्षण-पाठ्य-क्रम निर्धारित करना शासन का या शिक्षा-विभाग के शिक्षाविदों का काम है। "शिक्षण-पाठ्य-क्रम एक राष्ट्र के न कि किसी वर्ग के विचारों और धारणाओं का वाह्य प्रदर्शन है; और राष्ट्र को इस बात का अधिकार है कि उसके स्कूलों में जो शिक्षा दी जायगी उसका मोटा खाका पहिले चुन ले और इस सिलसिले में जो इस काम में निपुण हों उनकी इस राय का विशेष रूप से ध्यान रक्खे कि बच्चों की मानसिक भूख में क्या-क्या चीज़ें सम्मिलित हो सकती हैं। मगर एक बुद्धिमान शिक्षा-विभाग यद्यपि एक साधारण शिक्षा-कार्य-क्रम की पैरवी पर ज़ोर देगा, फिर भी विस्तृत रूप में लाने से बचेगा और अपने अध्यापकों को प्रत्येक सम्भव रूप में स्वतन्त्रता दे देगा कि वह प्रयोग करें और व्यक्तित्व का विकास करें। उदाहरण के रूप में एक प्राइमरी स्कूल में इतिहास या भूगोल के पाठ पढ़ाने में कोई विशेष प्रतिबन्ध न लागू किया जायगा। हाँ, यह न होगा कि वह उन पाठों को बिलकुल ही न पढ़ायें और उनके स्थान पर यूनानी भाषा पढ़ाने लगें।"*

शिक्षण-पाठ्य-विषय का साधारण सिद्धान्त—जैसा कि बताया जा चुका है शिक्षण-प्राठ्य-क्रम का चुनाव राष्ट्र की आवश्यकताओं के लिहाज़ से किया जाता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि शिक्षण-पाठ्य-क्रम के निर्धारित करने में हमको प्रत्येक पग पर याद रखना चाहिये कि स्कूल को पहिले की अपेक्षा अधिक तत्परता से अपना उद्देश्य पूर्ण करना चाहिये ताकि राष्ट्र व समाज के होनहार बच्चे

**Raymont* : Principles of Education, P.90.

अपना-अपना काम अधिक योग्यता, उत्साह, परिश्रम और आराम के साथ घर पर, कारखानों में तथा अपने पास-पड़ोस में कर सकें। इस तरह हमारा शिक्षा-पाठ्य-विषय इस बात का प्रयत्न करता है कि हम बच्चों की प्राकृतिक शक्तियां, प्राकृतिक प्रवृत्तियों, स्थायी भावों, स्वभावों और नैतिक गुणों को इस तरह से विकसित करें कि वह अपने और समाज के लिए लाभप्रद बन सकें।*

संसार के सभ्य देशों में विभिन्न कालों में जितने भी शिक्षण-पाठ्य-क्रम निर्धारित हुए उन सबकी मनोवृत्ति का अध्ययन किया जाय तो मालूम होगा कि सब पाठ्यों में जो सबसे बड़ा सिद्धान्त निहित रहा है वह शिक्षा का उद्देश्य है। अगर हम अपनी शिक्षा के उद्देश्य का एक मुख्य दृष्टिकोण रखते हैं तो हमारा शिक्षण-पाठ्य-क्रम भी उसी रंग में रंगा होगा। पहिले समय में शिक्षा का उद्देश्य यह समझा जाता था कि उससे मानसिक शक्तियों को विकास मिले। शिक्षा-पाठ्य-विषय में ऐसे ही विषय थे जिनसे विभिन्न मानसिक शक्तियों को प्रगति मिले। हमें इससे बहस नहीं कि यह सिद्धान्त कहाँ तक सही था या गलत, मगर बहुत समय तक शिक्षण-पाठ्य-क्रम उसी सही या गलत दृष्टिकोण पर निर्धारित होता रहा है। आजकल अंग्रेज़ी शिक्षा-प्रणाली में शिक्षा का उद्देश्य यह है कि बच्चे के व्यक्तित्व को पूर्ण किया जाय ताकि वह अपने और फिर जाति व राष्ट्र के लिए सुन्दर व्यक्ति बन सके। अतएव इसी उद्देश्य को सामने रखते हुए शिक्षण-पाठ्य-क्रम निश्चित किया जाता है कि हम बच्चों की छिपी हुई शक्तियों को सामने लायें। उनको शिक्षा द्वारा निखार दें और इस तरह उनको एक सफल व्यक्ति बना दें। इसी प्रकार वर्तमान काल में अमेरिका का प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री "जान डेवी"

---

*See Hand Book of Suggestions for Teachers, P.37.

शिक्षा-पाठ्य-विषय को निर्धारित करने में इस बात की आवश्यकता अनुभव करता है कि बच्चा मनोवृत्ति के प्रकाश में और जीव-विद्या के अनुसार राष्ट्र के क्रमानुसार "कार्यों" को अपनी शिक्षा के काल में दोहराये और इस तरह वह खेल-खेल में और फिर हाथ से काम करने में (जिन को डेवी Occupations कहता है) शिक्षा प्राप्त कर ले और इस प्रकार समाज की आवश्यकताओं को मुख्य समझकर अपनी मानसिक शक्तियां को शक्तिशाली बनाये। आजकल हमारे प्रान्त में जो बुनियादी शिक्षा प्रचलित की गई है उसका शिक्षण-पाठ्य-क्रम भी "शिक्षा के उद्देश्य" के नये दृष्टिकोण के प्रकाश में निर्धारित किया गया है। अब शिक्षा को किन्हीं व्यक्तिगत भावनाओं की पूर्ति के लिए यंत्र नहीं बनाया गया है बल्कि उसके उद्देश्य की पूर्ति में एक जबरदस्त इन्कलाब उत्पन्न हो गया है। इसका उद्देश्य केवल इस के अतिरिक्त कुछ नहीं कि बच्चों को उनके वातावरण या घरेलू जीवन के साथ सम्बन्धित ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे स्वयं सोचें और स्वयं काम करें और इस तरह यह प्रमाणित कर दें कि शिक्षा जीवन के लिए है।

बुनियादी शिक्षा का शिक्षण-पाठ्य-क्रम—बुनियादी शिक्षा में एक केन्द्रित कला या दस्तकारी के सिलसिले में सब विषय सिखाये जाते हैं। इन कलाओं में सूत कातना, कपड़ा बुनना, दफ़्ती का काम करना, बागबानी, मिट्टी का काम इत्यादि काम सम्मिलित हैं। इनके सिलसिले में जो विषय सिखाये जाते हैं वह निम्नलिखित हैं।

१—मातृभाषा (हिन्दी)

२— हिसाब

३—सामाजिक विषय

४—जनरल साइन्स

५—आर्ट और क्राफ़्ट

६—स्वास्थ्य

७--ग्राम सुधार
८ --द्वितीय भाषा (अंग्रेज़ी अथवा उर्दू)

हम यहाँ पर प्रत्येक विषय पर विवेचनात्मक वर्णन नहीं करेंगे। होनहार अध्यापक को स्वयं इन विषयों से परिचित होने और उनके गुणों पर विचार करने के अवसर मिलेंगे। इसके अतिरिक्त वह शिक्षण-मनोविज्ञान में अपने ज्ञान को काम में लाकर हर विषय के मनोवैज्ञानिक पहलू पर विचार कर सकता है। हम भी बुनियादी शिक्षा के सम्बन्ध में किसी अगले अध्याय में विषय के इस दृष्टि-कोण पर संक्षिप्त विवेचना करेंगे। इस अवसर पर यह वर्णन करना आवश्यक प्रतीत होता है कि वह कौन कौन से सिद्धान्त हैं जिनके आधीन पाठ्यक्रम के विषय निर्धारित किये जाते हैं; और विशेषकर बुनियादी शिक्षा का पाठ्यक्रम।

शिक्षण-पाठ्य-क्रम के सिद्धान्त:—शिक्षा का मुख्य काम यह है कि वह हमारे पूर्वजों के प्रयोगों और कार्यों को हमारी सन्तानों को सिखा दे। अगर हम अपने चारों ओर दृष्टि डालें और तनिक ध्यान दें तो हमको मालूम होगा कि हम ज्ञान के एक असीम समुद्र से घिरे हुए हैं। यही नहीं, बल्कि इस बात का भी अनुभव होगा कि प्रकृति की हज़ारों-लाखों बल्कि अगणित बातें ऐसी भी हैं जो मनुष्य को अब तक पता नहीं। हमारा प्रयत्न यह होता है कि हम शिक्षा-दीक्षा द्वारा अपने पूर्वजों की खोजी हुई बातें अपनी संन्तानों को बता दें और उनको ऐसे विस्तृत मार्ग पर डाल दें जिससे वे ज्ञान के असीम मैदान में और खोज करने के लिए तैयार हो जायें। अतएव हम ऐसी संस्थायें स्थापित करते हैं जिनसे यह उद्देश्य पूरा हो जाय। अब प्रश्न यह होता है कि हम कौन कौन सी बातें पढ़ायें और कब? किन बातों पर ज़्यादा ज़ोर दें और किन बातों पर कम? इन प्रश्नों के उत्तर सरल हो सकते हैं अगर हम उस समाज की आवश्यकताओं को दृष्टि के सामने रक्खें जिसका बच्चा एक होनहार व्यक्ति बननेवाला है।

सबसे पहिले बच्चे को भाषा पर अधिकार करने की बात आती है

ताकि वह अपने विचारों को प्रगट कर सके। भाषा के द्वारा ही वह अपने माता-पिता और भाई-बहन की बातें सुनता और समझता है। अतएव स्पष्ट है कि पाठ्य-क्रम में भाषा को सबसे अधिक महत्ता प्राप्त होनी चाहिये। इसके बाद बच्चे को अपने पास-पड़ोस से दिलचस्पी होती है। वह कहानियाँ सुनना पसन्द करता है। कहानियों की अच्छी-अच्छी बातों से पुलकित होता है। उच्च आदर्श के उदाहरण उसके सामने आते हैं तो वह उनसे प्रभावित होता है। वह विभिन्न लोगों से मिलता-जुलता है; वह प्रेम, सहानुभूति, डाट-डपट और धमकी को समझता है। वह उन बातों से भागना चाहता है जो भूगोल, इतिहास और अर्थ-शास्त्र की वर्णमाला हैं; और इसलिये उसको उन विषयों में अधिक ज्ञान होने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त वह प्राकृतिक बातों को देखता है और उनका कारण जानने के लिए लालायित रहता है। उसकी कौतूहल और जिज्ञासा की प्राकृतिक शक्तियाँ उसको विवश करती हैं कि वह प्रत्येक न समझ में आने वाली बात का कारण ज्ञात करे। उसकी "क्यों" से उसके माँ-बाप तक तंग आ जाते हैं। हमें उसके इसी "क्यों" से लाभ उठाना है और हम जनरल साइन्स की बातों को भी शिक्षण-पाठ्य-क्रम में सम्मिलित करने के लिए विवश हैं। इसी प्रकार गणित, बागबानी, आर्ट व क्राफ्ट इत्यादि विषय शिक्षण-पाठ्य-क्रम में सम्मिलित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इन सब विषयों में किस विषय को कौन-सा स्थान दिया गया यह बात बच्चे की मनोवृत्ति पर निर्भर है। बच्चा विश्वस्त रूप से काम-काज में अधिक दिलचस्पी लेता है, इसलिए आर्ट व क्राफ़्ट को पहला स्थान दिया गया है और शिक्षा-प्रबन्ध को इस तरह चुना गया है कि सब विषय हाथ के काम के सिलसिले में पढ़ाये जायें।

प्रश्न

१—"स्कूल का काम यह है कि वह इस परम्परागत, ज्ञान तथा स्वभाव को जिन पर हमारी सभ्यता निर्भर है स्थिर रखे

और इस थाती को दूसरों तक पहुँचाये"। इस राय पर एक संक्षिप्त सी विवेचना कीजिये।

२—"हम कोई ऐसा मुख्य नियम नहीं बना सकते जिसकी सहायता से एक विशेष स्कूल में विषयों को एक निर्धारित रूप में पढ़ाया जा सके।" इस वर्णन से आप किस हद तक सहमत हैं ?

३—शिक्षक के लिए यह क्यों आवश्यक है कि शिक्षण-पाठ्य-क्रम में जो विषय सम्मिलित किये गये हैं उनके पाठ्य-क्रम में सम्मिलित करने के कारण से परिचित हो ?

४—हमारे यहाँ के शिक्षा-विभाग ने मिडिल स्कूलों के लिए नया शिक्षण-पाठ्य-क्रम निर्धारित किया है। इस पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डालिये।

५—शिक्षण-पाठ्य-क्रम में सामाजिक विषय (Social Studies) सम्मिलित करने का कारण बताइये। (सी० टी०)

६—बेसिक स्कूलों में आर्ट और क्राफ्ट प्रचलित करने के उद्देश्यों पर विवेचना कीजिये। तुम कौन-सा क्राफ्ट अपने स्कूल में प्रचलित करोगे और क्यों ? [एल० टी०]

७—बेसिक स्कूलों के पाठ्य-विषयों में सामाजिक विषय की विवेचना कीजिये। यह कौन-से उद्देश्य की पूर्ति करेगा। [एल० टी०]

८—बेसिक स्कूलों के पाठ्य-क्रम में सूत कातना क्यों सम्मिलित किया गया है ? बेसिक स्कूलों में सूत कातने के लिए तुम क्या समय दोगे ? इस घंटे में तुम बच्चों की दिलचस्पी कैसे बनाये रक्खोगे ? [एल० टी०]

९—शिक्षण-पाठ्य-क्रम में जनरल साइन्स को क्या महत्त्व प्राप्त है और क्यों ?

१०—वर्तमान बेसिक स्कूलों के शिक्षण-पाठ्य-क्रम में जो जो विषय सम्मिलित किये गये हैं उन पर संक्षिप्त नोट लिखिये।

११—"मातृभाषा पर अधिकार प्राप्त करने से बच्चा अपनी शिक्षा पर अधिकार पाता है।" इस वाक्य पर विवेचन कीजिये। आजकल मातृ-भाषा की शिक्षा के सिलसिले में शिक्षा-विभाग ने जो उपाय अपनाये हैं उन पर संक्षिप्त-सा नोट लिखिये।

११—"ड्राइङ्ग" शब्द बच्चों के विचार और भावनाओं को प्रकट करने के लिए अनुपयुक्त और अप्राकृतिक शब्द है। तुम इस शब्द के बदले में कौन सा शब्द अच्छा समझते हो और क्यों? ड्राइङ्ग और आर्ट में क्या अन्तर है?

अध्यय ६

शिक्षा-विधि

शिक्षा-विधियों पर दृष्टि डालने से पहिले एक महत्त्वपूर्ण बात जो हमारे ध्यान का केन्द्र बनती है वह यह है कि सब रीतियाँ एक ही परिणाम प्राप्त करने के विभिन्न साधन हैं। शिक्षक के सामने शिक्षा देने के पूर्व बहुत-सी बातें समाधान के लिए प्रयुक्त होती हैं जिन पर वह या तो स्वयं सोच-विचार करता है या शिक्षा-शास्त्रियों की सहायता प्राप्त करके सन्तोषप्रद समाधान प्राप्त करता है। जैसे वह शिक्षा-पाठ्य-विषय पर ध्यान दे करके यह मालूम करता है कि उसके विभिन्न भागों को किस क्रम में लाये अर्थात् किन विषयों को पहिले प्रारम्भ करे और किन को बाद में। दूसरे वह यह भी मालूम करता है कि विभिन्न विषयों को किस तरह एक दूसरे से सम्बन्धित करे और इस प्रकार शिक्षा दे कि प्रत्येक विषय कोई पृथक विषय न मालूम दे बल्कि सब एक दूसरे से सम्बन्धित हों। तीसरी बात जिस पर वह ध्यान देता है यह है कि प्रत्येक विषय के विभिन्न भागों का सही मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण क्या हो सकता है। फिर सब से आखीर में वह इस बात पर विचार करता है कि अपने पाठ को किस तरह क्रमबद्ध करे कि एक रूखे विषय को दिलचस्प ढंग से बच्चों को पढ़ा सके। स्पष्ट है कि यह सब बातें एक ही उद्देश्य की पूर्ति के विभिन्न साधन हैं; और वह उद्देश्य है बच्चों को पाठ देना। बच्चे को पाठ देने का उदाहरण ऐसा ही है जैसा कि किसी यात्रा के लिए प्रस्थान करना। यात्रा करने से पूर्व यात्री को निश्चित करना पड़ता है कि वह कहाँ जायगा। उसे इस पर भी विचार करना पड़ता है कि वह किस मार्ग से यात्रा करे कि कम से कम परेशानी

और दिक्कत में यात्रा पूरी हो जाय और यात्रा करने से पहिले उसे प्रस्थान करने की जगह भी नियत कर लेनी पड़ती है। कुछ इसी प्रकार बच्चों को शिक्षा देने का विषय भी है। शिक्षक बच्चे को पाठ द्वारा कहाँ ले जाना चाहता है। इसलिए कोई मार्ग और कोई प्रस्थान का स्थान भी अवश्य होना चाहिये वर्ना उसकी दशा जंगलों में भटकते हुए यात्री जैसी हो जायगी। इसलिए चतुर अध्यापक के सामने पाठ पढ़ाने से पहिले तीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न होते हैं। पहिला यह कि उसका उद्देश्य क्या है; दूसरा यह कि पाठ आरम्भ करने के पहिले प्रस्थान करने का उचित स्थान क्या हो सकता है और तीसरा यह कि कौन-सा रास्ता अपनाना चाहिये। इन तीनों प्रश्नों के उत्तर का स्पष्टीकरण स्वयं उसकी योग्यता पर, बच्चे की वर्तमान मानसिक अवस्था पर और बच्चे की इस कोष में वृद्धि करने की प्राकृतिक प्रवृत्ति पर होता है जिसका ज्ञान अध्यापक को अनिवार्य रूप से होना चाहिये।

शिक्षा की दो रीतियाँ—शिक्षा-विधियों में दो रीतियाँ सबसे पहिले हमारे सामने आती हैं। दोनों का उद्देश्य सदैव एक ही है अर्थात् बच्चे के ज्ञान को विस्तृत करना और उसको व्यवस्थित करना। मगर दोनों में आकाश पाताल का अन्तर है। एक में शिक्षक प्रारम्भ से ही विद्या को क्रमानुसार और व्यवस्थित रूप में विद्यार्थी के सामने रखता है। पहिले शिक्षा-सिद्धान्तों और परिभाषाओं से जानकारी कराता है और फिर धीरे-धीरे जब वह ऊँची शिक्षा प्राप्त करता है तो इन सिद्धान्तों की सचाई अपने प्राप्त अनुभवों में देखता है। यह Deductive Method है। दूसरी रीति में विद्यार्थी को सिद्धान्तिक तर्क से अलग रक्खा जाता है। वह अपने पर्यवेक्षण से, अपने प्रयोगों से और अपने परिणामों से विभिन्न सिद्धान्त बना लेते हैं जिनकी सचाई वह और पाठों में अधिकतर पाते जाते हैं। इस रीति को Inductive Method कहते हैं। उदाहरण के रूप में पहिले तरीके के माननेवाले

भाषा पढ़ाने में अपने बच्चों को व्याकरण के पाठ देने लगते हैं। वह उनको सब नियम कंठाग्र करा देते हैं और बताते हैं कि यह नियम आगे चल कर सहायता देंगे। इसके प्रतिकूल दूसरी शिक्षा-प्रणाली के समर्थक बच्चों को छोटे छोटे दिलचस्प वाक्य पढ़ाते हैं और एक ही प्रकार के वाक्यों से व्याकरण के छोटे छोटे मगर महत्त्व-पूर्ण नियम याद कराते हैं और इस प्रकार धीरे धीरे स्वयं बच्चों से व्याकरण के नियम निकलवा लेते हैं। इसी प्रकार भूगोल के पाठों में पहिले नियम के समर्थक भूगोल की परिभाषायें याद कराते हैं। पृथ्वी की परिभाषा करते हैं; उसका आकार, उसकी कीली, विश्वत रेखा, पहाड़, समुद्र, खाड़ी, द्वीप इत्यादि बताते हैं और अन्त में पृथ्वी और उसके विभिन्न भागों की एक क्रमानुगत शिक्षा देते हैं; लेकिन दूसरी शिक्षा-विधि के हामी तुरन्त वातावरण से भूगोल की शिक्षा प्रारम्भ करते हैं और धीरे धीरे भूगोल की शिक्षा को विस्तृत रूप देते जाते हैं ताकि बच्चा अपने प्रयोगों से अपने ज्ञान के कोष को बढ़ाता रहे और क्रमबद्ध करता रहे। इसी प्रकार हम ड्राइंग और आर्ट की शिक्षा में भी इन दोनों शिक्षा-विधियों की तुलना कर सकते हैं। एक सूरत तो यह हो सकती है कि हम बच्चे को विभिन्न प्रकार की रेखायें खींचना सिखायें। उसको कोण और उसके विभिन्न रूपों के खींचने का अभ्यास दें। उसको तरह तरह की सुडौल शक्लें खींचना बतायें और इस तरह धीरे धीरे आर्ट के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का पाठ पढ़ाते हुए इस कला की शिक्षा में आगे बढ़ें। दूसरा रूप यह हो सकता है कि बच्चा एकदम चीज़ों की आकृति बनाना और बिगाड़ना प्रारम्भ कर दे और इस तरह धीरे धीरे नक़शा खींचने की कला के साधारण सिद्धान्त स्वयं सीखे और उनसे लाभ उठाये।

अब प्रश्न यह है कि इन दोनों विधियों में से कौन लाभप्रद है और कौन नहीं? इसका उत्तर यह है कि "यद्यपि शिक्षक का प्रत्यक्ष उद्देश्य यह है कि बच्चे के ज्ञान को विस्तृत और व्यवस्थित करे

फिर भी वह अपने इस उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता अगर वह बच्चे की दिलचस्पी का उभार न दे, उसकी सम्भाषण करने की प्रवृत्ति में सजीवता न उत्पन्न करे और उसकी स्वयं काम करने की प्रवृत्ति को विकसित न कर दे। प्रयोगिक शिक्षा की यह सब उपज केवल एक ही तरह प्राप्त हो सकती है और वह यह है कि उन सब रीतियों से बचा जाय जिनमें बच्चा सहज रूप में हर चीज़ शिक्षक की योग्यता से प्राप्त करता है। विषय को स्वयं बच्चे के दृष्टिकोण से सामने लाया जाय। कोई भी विषय क्यों न हो जिसे हम अपने विद्यार्थी के सामने लाना चाहें यह आवश्यक है कि अगर विद्यार्थी इस विषय को शुरू करने की योग्यता रखता है तो उसके पास उचित मानसिक चित्रों और सामान्य प्रत्ययों का एक पूर्व अनुभव होगा जो कि उसके अगणित प्रयोगों का एक भाग होगा और अध्यापक के लिए अनिवार्य है कि वह उन्हीं सामान्य प्रत्ययों को सामने रखते हुए शिक्षा प्रारम्भ करें। हमें चाहिये कि बच्चों के पूर्व-ज्ञान के भण्डार को सामने रख कर शिक्षा प्रारम्भ करें। उसके सामान्य प्रत्ययों को उचित रीतियों से पढ़ाई, लिखाई, निरीक्षण और प्रयोग इत्यादि से विस्तृत रूप दें और इस तरह वह जो कुछ ज्ञान प्राप्त करे उसको एक नियमबद्ध संगठन के आधीन ले आयें।"*

सम्भाषण की रीति—Deductive और Inductive शिक्षा-विधियों के अतिरिक्त एक और रीति बहुत ही लाभप्रद प्रमाणित हुई है जिसमें बच्चे की प्राकृतिक शक्ति 'कौतूहल' को काम में लाते हैं और इस तरह उसको एक सम्भाषण करने वाले की तरह नई नई बातें स्वयं मालूम करने के अवसर देते हैं। बजाय इसके कि कोई बात बच्चे को सीधी बता दी जाय इस शिक्षा-प्रणाली में बच्चा उस बात को अपने आप उचित प्रश्नों द्वारा खोज लेता है। इस विधि को सम्भाषण की

* *Raymont*: Principles of Education, P. 163.

विधि (Heuristic Method) कहते हैं। यह साइन्स और भूमिति के पाठ पढ़ाने के लिए विशेषतः बहुत लाभप्रद है। अध्यापक बच्चों की योग्यता को सामने रखकर नए पाठ को इस प्रकार उनके सामने पेश करता है कि उनकी प्रवृत्ति स्वयं नई-नई बातें खोजनेवाली हो जाती है। वह अपने पाठ में अत्यन्त दिलचस्पी लेते हैं। उनकी प्राकृतिक प्रवृत्ति जाग उठती है और वह पाठ के बीच में स्वयं साइन्स के नये-नये सिद्धान्त या भूमिति के नए-नए नियम समझ लेते हैं।

उदाहरण के रूप में अगर अध्यापक को बच्चों को पानी की भाप बनाकर उड़ाना पढ़ाना है तो उसका पाठ निम्नलिखित प्रश्न व उत्तर पर निर्भर होगा।

प्रश्न—इस प्याले के पानी को हम गरम कर रहे हैं। यह धुआँ सा पानी में से क्या निकल रहा है। ?

उत्तर--पानी की भाप।

प्र०—यह भाप कहाँ जा रही है ?

उत्तर—हवा में मिल रही है।

प्रश्न--क्यों हवा में पानी होता है ?

उत्तर—हाँ।

प्रश्न—किस रूप में ?

उत्तर—भाप के रूप में।

प्रश्न—यह पानी की भाप कहाँ से आती है ?

उत्तर—(१) हम जो पानी फेंकते हैं वह हवा में भाप बनकर मिल जाता है। (२) नदी-नालों का पानी भी हवा में भाप बनकर मिल जाता है। (३) जो कपड़े हम धोते हैं उनका पानी भी हवा में भाप बनकर मिल जाता है।

प्रश्न—जो पानी हम फेंकते हैं वह भाप में किस तरह मिल जाता है ?

उत्तर--सूरज की गर्मी से।

इस उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा कि किसी बात को स्वयं बताने की अपेक्षा शिक्षक उसको विद्यार्थी से निकलवा लेता है। यह रीति, जैसा कि बताया जा चुका है, साइन्स, भूमिति और चरित्र-निर्माण के पाठों में बहुत लाभप्रद प्रमाणित हुई है।

शिक्षण-प्रणाली—अब हम उन सिद्धान्तों पर एक सरसरी नज़र डाल सकते हैं जिन पर अच्छी शिक्षा की नींव रक्खी जाती है। यह सब सिद्धान्त एक ही विशेष नियम के आधीन हैं अर्थात् बच्चे के मस्तिष्क को एक बढ़ती हुई और विकास-प्राप्त वस्तु समझना और विद्या को बच्चे के सामने उसकी बुद्धि की शक्ति के अनुसार पेश करना। अतएव शिक्षा-शास्त्रियों ने कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त बनाये हैं जिनको सदैव स्मरण रखना अध्यापक के लिए अनिवार्य है। यह सिद्धान्त बुद्धिमानों के कथनानुसार शिक्षण-कला में महत्त्व रखते हैं, इसलिए अच्छा होगा कि हम उनको यहाँ पर संक्षेप में वर्णन कर दें।

ज्ञात से अज्ञात—शिक्षक के लिए आवश्यक है कि वह अपना पाठ बच्चों के सामने इस प्रकार रक्खे कि एक तरफ़ बच्चों के ज्ञान को काम में लाये और दूसरी ओर उनकी कौतूहल की प्राकृतिक शक्ति को उभार दे और उन दोनों की सहायता से उनको नई बातें सिखा दे। इस सम्बन्ध में यह बात याद रखने की है कि प्राय: शिक्षक बच्चों के पूर्व-ज्ञान के विषय में गलत अनुमान लगा जाते हैं। कुछ चीज़ों के विषय में वह समझते हैं कि बच्चे उन्हें जानते हैं हालाँकि वह उनके नाम तक से परिचित नहीं होते। अमेरिका के एक प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री डाक्टर स्टन्ले हाल ने एक बार बच्चों पर इस प्रकार के प्रयोग किये कि वह साधारण वस्तुओं को जिनके विषय में हमारा अनुमान होता है कि बच्चे इनको अवश्य ही जानते होंगे जानते हैं या नहीं। डाक्टर हाल के परिणामों में से कुछ निम्नलिखित हैं :—

शहर बोस्टन में ८० प्रतिशत बच्चे शहद की मक्खी के छत्ते से अनभिज्ञ थे।

७७ प्रतिशत कौवे से अनभिज्ञ थे।

६५.५ ,, चींटी नहीं जानते थे।

६३ ,, गिलहरी नहीं पहिचानते थे।

८७ ,, बाँझ का पेड़ नहीं जानते थे।

६५ ,, इन्द्र-धनुष से अनभिज्ञ थे।

यदि इस प्रकार के प्रयोग हम अपने स्कूल में करें तो हमें मालूम होगा कि बहुत-सी ऐसी साधारण वस्तुयें निकलेंगी जिनसे बच्चे बिलकुल अपरिचित होंगे। इसलिए इस बात की आवश्यकता है कि शिक्षक बच्चे के पूर्वज्ञान का यथार्थ अनुमान करे और अपने पाठ के समय उन्हीं चीज़ों का वर्णन करे जिनके बारे में उसे पूरा विश्वास हो कि बच्चे इनको अवश्य ही जानते होंगे।

ज्ञात से अज्ञात की ओर जाने में बच्चे की मनोवृत्ति का दृष्टिकोण मौजूद है। बच्चा धीरे-धीरे अपने ज्ञान के सम्बन्ध में कुछ इस प्रकार की नई बातें सीख सकता है कि उसकी जिज्ञासा और कौतूहल-शक्ति जाग जाती है। वह पाठ में दिलचस्पी लेता है और उस ओर अधिक से अधिक ध्यान आकर्षित करता है जिसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि शिक्षक अपना काम सरलतापूर्वक निभा सकता है।

राशिभूत से भाववाचक—इसी सिलसिले में शिक्षा देने की दूसरी रीति बताई जाती है। बच्चों को राशिभूत से भाववाचक बातें बताना अपेक्षाकृत कठिन है। जिस तरह बच्चे को ज्ञात से अज्ञात की ओर ले जाते हैं, बिलकुल इसी तरह उसे राशिभूत बातों से कल्पनात्मक बातों की ओर ले जाना चाहिये। चीज़ को बच्चे देख सकते हैं, छू सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं और उससे प्रसन्न हो जाते हैं; इससे वह स्वभावतः बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। इसके मुकाबिले में जो बातें केवल कल्पना पर ही अवलम्बित हैं, जिनका कोई प्रत्यक्ष रूप न हो और जिनको बच्चा अपनी कल्पना में भी मुश्किल से ला सकता हो उनमें वह कभी भी दिलचस्पी न लेगा। सफल अध्यापक का कर्तव्य है

कि वह बच्चों के "ज्ञान" को काम में लाते हुए उन्हें "कार्य-शील" बातों की ओर ले जायँ। यही कारण है कि बच्चे को गिनती सिखाने में गोलियाँ वगैरह प्रयोग कराते हैं ताकि बच्चा पहिले राशिभूत चीज़ों की गिनती से संख्या का ज्ञान प्राप्त कर सके और फिर उनके सही भाववाचक सामान्य प्रत्यय अपने मस्तिष्क में सुरक्षित रख सके। इसी प्रकार बच्चों को चरित्र-गठन का ज्ञान देते समय इस बात की आवश्यकता है कि उनको ऐसी दिलचस्प कहानियाँ सुनाई जायें जिनमें कहानियों के पात्र जीते-जागते प्रत्यक्ष रूप में वर्णन किये जायें और उनके कृत्य भी प्रतिदिन के जीवन-कार्यों से सम्बन्धित और मिलते-जुलते हों, मगर परिणाम में वह चरित्र-गठन की बात छिपी हो जो शिक्षक बच्चों को सिखाना चाहता है। इसी तरह के और भी उदाहरण बतलाये जा सकते हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हमारे पाठ प्रत्यक्ष चीज़ों से प्रारम्भ होकर अप्रत्यक्ष पर समाप्त हो जायें, बल्कि राशिभूत बातों से भाववाचक बातों की ओर आयें और फिर भाववाचक बातों का सम्बन्ध राशिभूत बातों से करें ताकि उनकी सचाई का प्रमाण मिल सके।

सरल से जटिल—अध्यापक के लिए तीसरा सिद्धान्त यह है कि पहले वह बच्चों को सरल बातें बताये और फिर धीरे-धीरे जटिल और कठिन बातें समझाये। सरल और कठिन बातें भी विभिन्न लोगों के लिए विभिन्न होती हैं। आप जिस बात को सरल समझते हैं सम्भव है वह बच्चों के लिए कठिन हो या आपके विद्यार्थियों के लिए कठिन हो। इसी तरह जिस वस्तु के विषय में आपका विचार है कि वह कठिन है सम्भव है कि वह बच्चों के लिए सरल हो। जैसे भूमिति या रेखागणित के विषय में बिन्दु, रेखा, चित्र इत्यादि शब्दों की परिभाषा के बाद धीरे-धीरे हम कठिन शक्लों (आकृतियों) और बातों पर आते हैं और इस प्रकार सरल से कठिन की ओर जाते हैं। क्या यह रीति एक बच्चे के लिये उचित है? क्या बच्चा बिन्दु, रेखा व कोण वगैरह के

ज्ञान में दिलचस्पी ले सकता है ? विश्वस्त रूप से नहीं। इसके लिए हमें रेखागणित के पाठ इस तरह चुनने चाहिये जिससे वह दिलचस्पी ले सकें, उसका पूर्व-ज्ञान काम में आ सके और वह सरल से जटिल की ओर जा सके। इसी तरह हम बच्चे को अगर भूगोल के पाठ में पृथ्वी का अपनी कीली पर घूमना समझायें और बतायें कि दिन-रात किस तरह होते हैं तो यह उसको अपेक्षाकृत कठिन और जटिल बात मालूम होगी। लेकिन यदि पहिले उसको सरल बातें बतायें जो कि पहिले ही से उसके ज्ञान में हैं तो यह काम कठिन न होगा। बच्चा सुबह सूरज का निकलना और संध्या समय अस्त हो जाना जानता है। अब अगर पृथ्वी को किसी गोल गेंद से दिखलाया जाय और एक मोमबत्ती को सूरज मानकर गेंद को घुमाया जाय तो इस सरल और दिलचस्प सामान से वह दिन-रात का होना भली प्रकार समझ सकता है। ऐसे ही उदाहरण हम इतिहास के पाठ में भी दे सकते हैं। यदि अध्यापक जाति या वर्ण, बादशाह और पार्लियामेन्ट, शासन और कानून इत्यादि के विषय में बच्चों को पढ़ाने लगे तो वह भैंस के सामने बीन बजाने के समान होगा और बच्चों के पल्ले कुछ न पड़ेगा। जो चीज़ें इतिहास की अ ब स हैं वह इतिहासकार के लिए सरल हैं पर वह बच्चों के लिए अत्यन्त कठिन हैं और जटिल भी। बच्चों के लिए तो यह आवश्यक है कि इतिहास के प्रारम्भिक पाठ ऐसी कहानियों के रूप में बताये जायें कि जिनमें अत्यन्त रोचकता हो और अधिकता के साथ काम हो ताकि वह अपनी प्राकृतिक प्रवृत्ति को काम में लाकर न केवल उन ड्रामों से आनन्दित हों बल्कि इतिहास के मुख्य उद्देश्य से प्रभावित भी हों।

मनोविज्ञान और तर्क-शास्त्र की रीतियाँ—शिक्षा के विषय में एक सम्मति जो बहुत महत्ता रखती है यह है कि हमें चाहिये कि तर्क-शास्त्र की रीतियों की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक रीतियों को प्रथम स्थान दें। इसका अर्थ यह है कि बच्चे की शिक्षा में उसकी मानसिक शक्ति को सामने

रखना चाहिये। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह बच्चे के मानसिक-विकास के अनुसार उसे शिक्षा दे। वह प्रत्येक पग पर उसकी प्राकृतिक शक्तियों को, उसके अन्त: क्षोभों को, उसकी प्राकृतिक प्रवृत्तियों और स्वभाव को, उसके सोच-विचार और तर्क को अर्थात् उसकी मानसिक शक्तियों को सामने रक्खे और उनके अनुसार शिक्षा दे। ऐसा न हो कि वह बच्चे की मानसिक शक्ति पर ध्यान न दें और एकदम तर्क के अनुसार शिक्षा देने लगे चाहे बच्चा समझे या न समझे। जैसे शिक्षक एक १० साल के बच्चे को प्रकृति में कारबोनिक एसिड गैस का प्रबन्ध समझाना चाहता है तो यह सरासर नादानी होगी कि वह एकदम मनुष्य का आक्सीजन और कारबोनिक एसिड गैस के सम्बन्ध को समझाकर पौदों की खूराक पर एक विस्तृत विवेचना करने लगे और बताने लगे कि जो गैस आदमियों के लिए हानिकर है वही पौदों के लिए लाभप्रद होती है और इस तरह प्रकृति में आक्सीजन की कमी नहीं होने पाती इत्यादि। इसके प्रतिकूल मनोवैज्ञानिक रीति यह हो सकती है कि बच्चे के सामने छोटे-छोटे प्रयोग किये जायँ जिससे बच्चा स्वयं परिणाम निकाले। प्रयोगों में निरीक्षण के समय उसकी प्राकृतिक प्रवृत्ति विकसित होगी और वह अपने पाठों में बहुत ही दिलचस्पी लेना अनुभव करेगा। यही नहीं, उन्हीं प्रयोगों की बदौलत वह तर्क के उन परिणामों पर पहुँच जायेगा जिन पर अध्यापक उसको पहुँचाना चाहता है।

कुछ और आवश्यकीय सम्मति—बच्चे का ज्ञान अपेक्षाकृत "अधूरा, अस्पष्ट और भोंडा" होता है। अध्यापक का काम है कि उसे अपेक्षाकृत "पूर्ण, स्पष्ट और सुव्यवस्थित" कर दे। यह काम उसको इस तरह करना पड़ता है कि जो कुछ वह बच्चों को पढ़ाये वह बहुत ही दिलचस्प हो। इसी कारण शिक्षा-विधि का पूर्ण विश्लेषण होना आवश्यक है जिसका अर्थ यह है कि पहिले जटिल बातों के छोटे-छोटे भाग कर लिये जायँ जिसे बच्चों के मस्तिष्क तुरन्त ग्रहण कर सकें और फिर पूरे भागों की सहायता से जटिल चीजें

सरलतापूर्वक समझाई जा सकती हैं। इसी कारण शिक्षा-शास्त्रियों का यह कथन है कि हमें विश्लेषण से संश्लेषण की तरफ चलना चाहिये। इसके अतिरिक्त शिक्षा-समय में प्रकृति की समानता करना भी आवश्यक है। इसका मतलब यह है कि हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली का चुनाव बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास के अनुसार करना चाहिये। इसी कारण कुछ शिक्षा-शास्त्रियों का विचार है कि प्रारम्भिक काल में बच्चों को ऐसी शिक्षा दी जाय कि जिससे उनकी पंचेन्द्रियों का विकास हो। इसके बाद उसे कंठाग्र करने अथवा रटने की बातें बताई जायँ क्योंकि उनका विचार है कि छोटी आयु में स्मरण-शक्ति बहुत तेज होती है। बड़ी आयु में बच्चे को इस बात का मौका दिया जाय कि वह अपने विचार और तर्क को उन्नत करे। हमें यहाँ पर इस विचार की सत्यता पर तर्क-वितर्क नहीं करना है लेकिन यह अवश्य है कि बच्चे की प्रवृत्ति और उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियों का लिहाज शिक्षा समय में रखना अध्यापक के लिए अनिवार्य है।

एक और सिद्धान्त जो अध्यापकों के लिए स्थायी निर्देशन का काम देता है यह है कि "बच्चे की शिक्षा को शिक्षा-विधि और क्रमानुगति, दोनों बातों में मनुष्य के इतिहास के अनुसार होना चाहिये।" यह सिद्धान्त इस बात पर बना है कि बच्चा गर्भाधान के समय से जन्म के समय तक जिन-जिन परिवर्तनों में से होकर आता है वह सब लगभग वही हैं जिनमें जीव-विद्या के अनुसार मनुष्य बनने से पहिले जीवाणु को गुजरना पड़ा था। इसके अतिरिक्त यह भी देखने में आता है कि बच्चे की उत्पत्ति से पहिले और बाद के जीवन के भाग पशु-जगत के जीवन की श्रेष्ठ श्रेणी से समानता रखते हैं और बच्चे के विकास की प्रारम्भिक श्रेणियाँ ऊँचे दर्जे के पशुओं के जीवन से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं। इस एकता को हम एक साधारण रीति से समझा सकते हैं। जिस तरह बच्चे की बोलने की शक्ति की प्रगति अपेक्षा-

कृत आखिरी समय में प्रगट होती है इसी तरह निस्सन्देह यह शक्ति वंश में भी बाद में प्रकट होगी जब कि मनुष्य पशु की अवस्था से निकला होगा। बच्चे के मानसिक कृत्यों का प्रारम्भिक स्वरूप, जिसमें इन्द्रियों की अन्तर्बोध, शक्ति, गति और सहज शक्ति अधिक रहती है, उच्च वर्ग के पशुओं और निम्न श्रेणी के मनुष्यों से समानता करती है। एक जंगली के खिलौनों से प्रेम में, उसके शब्दों के आविष्कार में, उसके रंगों में अधिक तेज रंगों की चाह में, उसकी भड़कीले किस्म की पोशाक के शौक में, उसकी चित्रण कला में, उसके तांत्रिक बातों के सच मान लेने और उसकी डराने वाली बातों में हम उसे छोटे बच्चे से बहुत कुछ समान पाते हैं। नीति-शास्त्र के व्यास में अनिश्चित गति से अनिश्चित गतियों की ओर कदम बढ़ाना, इन्द्रियदमन पर अधिकार पाना और अपने चरित्र के वाह्य स्वरूप से आन्तरिक स्वरूप की ओर आकर्षित होना यह सब बातें वैयक्तिक और वंश की उन्नति की एकता प्रकट करती हैं।*

मतलब यह कि बच्चों को पाठ देने के सिलसिले में अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह उनकी दिलचस्पी को बनाये रक्खे। हमने जितने भी शिक्षण-सिद्धान्त प्रतिलिपि किये हैं इन सब में बच्चे की प्रवृत्ति का लिहाज रखा गया है। बच्चे की प्राकृतिक शक्तियों और अन्य मानसिक शक्तियों को सामने रक्खा गया है और उसकी व्यग्रता और प्रतिक्षण बढ़ती हुई जिज्ञासा और अनुभव करती हुई मानसिक शक्तियोंपर ध्यान दिया गया है। संसार में शिक्षा-शास्त्रियों ने जितनी भी शिक्षा-प्रणालियाँ आविष्कृत की हैं उन सब में यही सिद्धान्त निहित है; अर्थात् बच्चे की शारीरिक और मानसिक शक्तियों का सही अनुमान लगाते हुए ऐसे तरीकों से शिक्षा देना जिससे बच्चों के लिए

---

* *Raymont* : Principles of Education, P. 172.

सबसे ज्यादा दिलचस्पी और कम से कम भार हो। अतएव बच्चों की शिक्षा में "हाथ के काम" पर बहुत ज़ोर दिया गया है। स्वयं काम करने से बच्चे की सब मानसिक शक्तियाँ मानो जाग जाती हैं। वह बातें इस तरह नहीं सीखता कि शिक्षक ने उसे बता दिया और बस! वह स्वयं चीज़ों को हाथ में लेकर उनको बनाकर और बिगाड़कर और उनको मुख्य रीतियों द्वारा व्यवहार में लाकर नई बातें सीखता है और इस रीति से खेल-खेल में ही शिक्षा ग्रहण कर लेता है।

प्रश्न

१—इस वाक्य से आप क्या समझते हैं? "वास्तविकता से अवास्तविकता की ओर चलो"। उदाहरणों द्वारा समझाइये।

२—बच्चों के लिए पाठ के सिखाते समय "अधिक कार्य" की क्यों आवश्यकता है? उदाहरण देकर समझाइये।

३—उदाहरणों द्वारा समझाइये कि आप किस प्रकार की बातें बच्चों को स्वयं बतायेंगे और किस प्रकार की बातें उनको निरीक्षण द्वारा मालूम करायेंगे?

४—"दस्तकारी एक शिक्षण-विधि है, न कि अलग से एक विषय।" इस बात का मतलब संक्षेप में बताइये।

५—निम्नलिखित बातों पर अपनी सम्मति दीजिये:—

(१) श्याम-पट कक्षा की जान है।

(२) सरल से जटिल की ओर चलो।

(३) जैसा शिक्षक वैसा स्कूल।

६—"दस्तकारी द्वारा शिक्षा" के सिद्धान्तों की मनोवैज्ञानिक पहलू से व्याख्या कीजिये और यह बताइये कि बेसिक

शिक्षा हमारे बच्चों के लिए क्यों इतनी सफल सिद्ध हुई है ? (नार्मल)

७--आप "काम करने से सीखना" के सिद्धान्त को भूगोल के पाठों में किस हद तक जारी कर सकते हैं ? [सी० टी०]

८ -कुछ मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों की विवेचना कीजिये जिनका सब शिक्षाविधियों पर प्रभाव होता है। [सी० टी०]

९ --उदाहरणों द्वारा समझाइये कि आप "काम करने से सीखना" के सिद्धान्त को इतिहास पढ़ाने में किस तरह काम में ला सकते हैं। [सी० टी०]

अध्याय ७

शिक्षा के उपाय

अब तक हमने शिक्षा देने की रीतियों पर विवेचना की है; अर्थात् हमने यह बताया है कि जो कुछ बच्चे को पढ़ाना है उसको शिक्षक किन-किन विधियों से पढ़ा सकता है ताकि बच्चे का मस्तिष्क उसको ग्रहण कर ले। हमने पहिले कुछ सिद्धान्तों की चर्चा की जिन पर प्रयोग करना या सदैव दृष्टि के सामने रखना उसके लिए अनिवार्य हो जाता है। फिर हमने शिक्षा की कुछ स्थायी रीतियाँ बताईं जिनमें शिक्षा देने के सिद्धान्तों को सामने रखते हुए ऐसे शिक्षा-प्रबन्धों का चुनाव हुआ है जिनसे हमें इस कठिन काम में अधिक से अधिक सहायता मिल सके। अब हमको यह देखना है कि शिक्षक अपने पाठ के समय में कौन-कौन सी चीज़ों से सहायता ले सकता है। वह कौन-कौन हथियार हैं जिनसे सुसज्जित होकर शिक्षक अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपने पाठ पर सफलता के साथ विजय प्राप्त कर सकता है। अर्थात् उस सम्बन्ध में शिक्षक की शिक्षाविधि से तर्क करना ध्येय नहीं है। यह समझ लिया गया है कि अध्यापक बच्चों की प्रवृत्ति से, उनकी मानसिक शक्तियों से, उनके पूर्वज्ञान से, उनकी प्रतिक्षण बेचैनी और विकास की ओर बढ़ती हुई जिज्ञासा से और उनके वातावरण से पूर्ण रूप से परिचित है। इनके अतिरिक्त वह उन बातों से भी परिचित है जो कि बच्चों को शिक्षा देने की जान हैं। अब हमें उन सहायक सामग्रियों और बातों पर प्रकाश डालना अभीष्ट है जिनकी सहायता के बिना कोई शिक्षक सफलता के साथ अपने बच्चों को नहीं पढ़ा सकता चाहे वह कितना ही मनोविज्ञान का ज्ञाता हो, कितना ही

शिक्षाविद हो और कितनी ही अच्छी शिक्षा-प्रणालियाँ जानता हो, उन चीज़ों और बातों में अध्यापक की वर्णन-शैली, हाव-भाव के साथ वर्णन करना, अर्थों की व्याख्या, प्रश्न और उत्तर, श्यामपट का प्रयोग, चित्र और नक्शे आदि की सहायता, पुस्तकों, कापियों और स्लेटों का प्रयोग इत्यादि बातें सम्मिलित हैं।

"शिक्षा देने के समय शिक्षक को न केवल शिक्षा-विधि की बाबत सोचना पड़ता है बल्कि कुछ वाह्य रीतियों और नियमों की बाबत भी जिनकी उसको समय-समय पर आवश्यकता पड़ सकती है या जिनकी सहायता की आवश्यकता उसे पाठ पढ़ाने के समय हो सकती है। जैसे कि एक अवसर पर शिक्षकों से प्रश्न करना और उनको बोलने का अवसर देना अच्छा तरीका हो सकता है और किसी दूसरे अवसर पर शिक्षक के वास्ते स्वयं ज़्यादा बोलना और सीधे शिक्षा देना हितकर हो सकता हैं।"*

वर्णन—प्राय: अध्यापक बच्चों को कहानी-किस्से के रूप में पाठ पढ़ाते हैं। ऐसी दशा में इस बात की आवश्यकता है कि वह कहानी को हावभाव के साथ वर्णन करें। छोटे-छोटे बच्चे कहानियाँ सुनना बहुत पसन्द करते हैं, विशेष कर ऐसी कहानियाँ जिनमें बुराई पर सज़ा और भलाई पर इनाम मिलता है या जो परियों या देवों की कहानियाँ होती हैं। इन कहानियों में काम प्राय: कई बार दोहराये जाते हैं। बच्चे एक ही काम को बार-बार दोहराये जाते सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और अपनी कल्पना के चित्रपट में कहानियों के कृत्यों को अद्भुत और अनोखे रूप में देखते हैं। बड़े बच्चे साधारणत: ऐसी कहानियाँ पसन्द करते हैं जिनमें बहादुरी की बातें हों; उनसे बड़ी आयु के बच्चे उन कहानियों में दिलचस्पी लेते हैं जो उनकी कल्पना में हलचल

---

* *Raymont* : Principles of Education, P. 259.

मचा दें और उनको विचार और कार्यरूप में परिणत कर देने को विवश करें। सफल अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि कहानी ढूँढ़ने में और उसको वर्णन करने में अपने शिक्षार्थियों को ध्यान में रक्खे। जिस आयु के बच्चे हों उसी के अनुसार कहानियों का चुनाव करें और उसी के अनुसार वर्णन करने का तरीका ग्रहण करें। अतएव छोटे-छोटे बच्चों के लिए जो कहानियाँ चुनी जायँ उनमें प्लाट बहुत सीधा-सादा हो और दृश्य बहुत कम तथा दिलचस्प और सरल हों। हमारी भाषा में ऐसी कहानियों की कमी नहीं है। बहुत छोटे-छोटे बच्चों के लिए चिड़िये-चिड्डों की कहानी की किस्म की सैकड़ों कहानियाँ यहाँ हैं जिनको प्रत्येक घर में बच्चों के सामने दोहराया जाता है और वे उन कहानियों को बारबार सुनते हैं और पुलकते हैं। इसी तरह बड़ी आयु के बच्चों के लिए धार्मिक कहानियों के अतिरिक्त सैकड़ों बहादुरी के किस्से हमारे यहाँ मौजूद हैं जिनको बच्चा के सामने सफलतापूर्वक कहा जा सकता है।

कहानी को चुन लेने के बाद अध्यापक की यह विशेषता होनी चाहिये कि कहानी को कहने में अपना ज़ोर लगा दे। वह कहानी को अपनी कक्षा की योग्यता के अनुसार वर्णन करे। कहानी का धीरे-धीरे और साफ़-साफ़ बच्चों के सामने कहे। जहाँ तक हो सके कहानी को बिना क्रम के एकदम बच्चों को सुना दे या अगर कहानी लम्बी है तो ऐसे भागों में उसे विभक्त कर ले कि प्रत्येक भाग स्वयं पूरा हो और ऐसे शब्द प्रयुक्त करे कि जिनसे कहानी में रंग आ जाय और बच्चे यह समझने लगें कि कहानी का ड्रामा उनकी कल्पना के परदे पर खेला जा रहा है।

"बस न केवल उचित कहानियाँ ही चुनी जायँ बल्कि उनको ऐसे सीधे-सादे तरीके से साफ़-साफ़ वर्णन कर दिया जाय, जिनमें कारणों के साथ-साथ शब्दों की मितव्ययता का ध्यान रहे, जिनकी भाषा बिलकुल दर्जे के लिहाज से बनाई गई हो, जिसका मतलब यह है कि उस

भाषा से कुछ अच्छी जो बच्चे स्वयं पहिले-पहल प्रयोग करते हैं, और जिसकी वर्णन-शैली अत्यन्त चित्ताकर्षक और ऐसी हो कि उसमें गति और हाव-भाव अप्राकृतिक न मालूम हों। वह इस प्रकार मे वर्णन की गई हो कि बच्चे उनको स्वयं दोहरा सकें और अनुभवगम्य रीति से कहानी की भाषा को दोहरा सकें। या अगर वह चाहें तो उनको नाटक के रूप में आपके सामने रख सकें। प्रारम्भिक अध्यापक के लिए अच्छा तो यह है कि वह अपनी चुनी हुई कहानियों को स्वयं अपनी भाषा में लिख ले। बच्चों के सामने कहने की कोशिश के बाद उनको सही करे। उनमें से अनावश्यक बातों को छाँट दे और जो बातें साफ़ न हों उन्हें सुधार दे। उसको हर किस्म की कहानियों का संग्रह स्वयं करना चाहिये। जैसे तीन रीछों की कहानी, सिन्दबाद के किस्म की परियों की कहानी, जानवरों की कहानियाँ, उन वीर पुरुषों और स्त्रियों की कहानियाँ जो बच्चों के लिए दिलचस्प हों और दैनंदिन जीवन की नई-नई कहानियाँ इत्यादि।" *

विशद व्याख्या—छोटे-छोटे बच्चे विशद व्याख्या को नापसन्द करते हैं। उनकी मानसिक शक्तियाँ इस योग्य नहीं होतीं कि विशद व्याख्या के बोझ को सहन कर सकें। अगर आप बच्चों के लेख पर दृष्टि डालें तो आपको मालूम होगा कि उसमें या तो विशद व्याख्या बिलकुल गायब ही होगी या अगर होगी भी तो बहुत कम। लेकिन फिर भी अध्यापक अपने पाठों में विशद व्याख्या से सहायता ले सकते हैं। यदि वह कोई ऐसी बात बच्चों को बताना चाहते हैं जो उनको पहिले से मालूम नहीं है तो वह व्याख्या से सहायता लेंगे। वह उस बात को बच्चों को उनके पूर्वज्ञान का ध्यान रखते हुए बतायेंगे। और ऐसे शब्दों में उनके सामने व्याख्या करेंगे कि बच्चे उसको

---

* *Ward & Roscue* : The Approach to Teaching, p. 121.

समझ लें। वह इस बात को जानना चाहते हैं कि जिस चीज़ को हम जानते हैं यह आवश्यक नहीं है कि बच्चा भी उसको जानता हो। इसी लिए वह उसको विशद व्याख्या के साथ वर्णन करते हैं और उस वर्णन में वह बच्चे के सामान्य प्रत्यय और उसकी जानकारी को सदैव अपने सामने रखते हैं। जैसे अगर अध्यापक बच्चों को गंगा नदी के विषय में बताना चाहता है तो पहले वह नदी और गंगा नदी को स्पष्टता के साथ वर्णन करेगा। अगर बच्चे नदी नहीं जानते तो उनके पूर्वज्ञान को काम में लाकर नाला वगैरह की सहायता से नदियों का सामान्य प्रत्यय बच्चे के मस्तिष्क में उत्पन्न करेगा। फिर वह नदी के बहाव, उसके पानी, फिर उसके फैलाव इत्यादि का सामान्य प्रत्यय पैदा कराकर अपने उद्देश्य की पूर्ति करेगा।

भावार्थ—अध्यापक को अपने हर पाठ में साधारण रूप से चीज़ों को समझाने या उनके भावार्थ और व्याख्या करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। किसी चीज़ को विशद व्याख्या से वर्णन करने में और उसका भावार्थ करने में बहुत अन्तर होता है। प्रायः कुछ सज्जन दोनों बातों को एक ही मानते हैं। यह एक बड़ी गलती है। एक उदाहरण से यह अन्तर सरलता से समझा जा सकता है। कल्पना करो कि हम थर्मामीटर की विशद व्याख्या करना चाहते हैं। उसका अर्थ यह हुआ कि हम उस यंत्र को, उसके आकार-प्रकार को, उसके भागों को, उसके अन्दर के पारे को और उसके ऊपर के चिन्हों को इस प्रकार वर्णन करेंगे कि जिस व्यक्ति ने थर्मामीटर न देखा हो वह उसका चित्र अपनी कल्पना के पर्दे पर बनाने में सफल हो जाय। लेकिन अगर यह कहें कि थर्मामीटर का भावार्थ (शब्दार्थ) किया जाय तो उसका अर्थ यह होगा कि यह यंत्र क्या काम करता है और किस तरह हम इससे गर्मी और सर्दी की अवस्थाओं का पता लगाते हैं, किस तरह हम उस यंत्र के ऊपर विशेष चिह्न लगाते हैं, इत्यादि। मतलब यह है कि विशद व्याख्या और भावार्थ में बड़ा अन्तर है।

किसी बात के भावार्थ करने के अर्थ यह हैं कि हम उस बात का मतलब कहें अर्थात् उसका अर्थ बतायें। उसको इस तरह समझायें कि हमारा मतलब स्पष्ट और उचित ज्ञात हो। विद्यार्थियों की अपेक्षा शिक्षक अधिक अनुभवी होता है। इसी अनुभव के आधार पर वह जो बात दर्जे को समझाना चाहता है उसका सामान्य प्रत्यय उसके मस्तिष्क में अत्यधिक स्पष्ट होता है। यही कारण है कि जिस बात को वह स्वयं स्पष्ट और साफ़ नहीं समझा है उसको वह अपने विद्यार्थियों को भली प्रकार कदापि नहीं समझा सकता।

अध्यापक की व्याख्या और उसके मतलब बच्चे के वर्तमान ज्ञान के प्रबन्ध की ऊँचाई या निचाई पर निर्भर हैं। इसका तात्पर्य यह है कि एक ही बात को हम विभिन्न बच्चों को विभिन्न रीतियों द्वारा समझा सकते हैं। उदाहरण के रूप में इस प्रश्न के निम्नलिखित उत्तरों पर ध्यान दीजिये।

"जब मैं किताब को हाथ से छोड़ता हूँ तो वह क्यों गिर जाती है ?"

(अ) क्योंकि वह भारी है।

(ब) क्योंकि अगर चीज़ों को गिरने से न रोका जाय तो वह अवश्य गिर जाती हैं।

(स) पृथ्वी के आकर्षण से।

(द) क्योंकि संसार की सब चीज़ें एक दूसरे को अपनी तरफ एक ताकत से खींचती हैं जो कि सीधे-सीधे अपनी मात्रा के भारों के अनुपात में होती हैं और अपने बीच की दूरी के वर्ग के अनुसार उल्टे अनुपात में होती हैं।

कौन सा उत्तर ठीक है ? यह बात पूर्ण रीति से निर्भर होगी उस पर जो प्रश्न करता है और उसके संगठित प्रयोगों के ज्ञान पर। दूसरे शब्दों में उसके ज्ञान पर। पहिला उत्तर एक बहुत ही छोटे लड़के के

लिए ठीक हो सकता है। दूसरा एक ८ या ६ वर्षीय बालक के लिए और इसी प्रकार और उत्तर।

किसी बात को समझाने से पहिले आवश्यकता इस बात की है कि हम (१) बच्चों के ज्ञान और उनके प्रयोगों के संग्रह को दृष्टि के सामने रक्खें, (२) इन खजानों और संग्रह को उचित विश्लेषण व क्रमानुगत द्वारा अपनी आवश्यकतानुसार काम में लायें और (३) इस विश्लेषण और क्रमानुगत की सहायता से बच्चों को स्वयं-सिद्ध करने वाली बातों के हल या व्याख्या मालूम करने में लगायें। उदाहरण के रूप में हम वर्षा के पाठ पर विवेचना कर रहे हैं। यह आवश्यक है कि दर्जे को हवा में नमी के होने और पानी के भाप बनने और भाप के जमने के सम्बन्ध में स्पष्ट ज्ञान होना चाहिये। इस दशा में सम्भवतः बच्चों के प्रयोग उन सब बातों को स्पष्ट कर देंगे जिनकी हमें आवश्यकता है। उन्होंने उबलते हुए पानी में से भाप निकलते हुए देखा है। वह यह जानते हैं कि कपड़े क्यों कर सूखते हैं और कभी-कभी खिड़कियों में से भाप क्यों निकलने लगती है। इस तरह हम मानों बच्चों को जिरह करके वर्षा के विषय में व्याख्या करने की तरफ ले जा सकते हैं।*

निरीक्षण—सफल निरीक्षण शिक्षा का प्राण है। निरीक्षण के वास्ते ज्ञान की आवश्यकता होती है। जब तक हम उस चीज़ के विषय में जिसका हम निरीक्षण कर रहे हैं कुछ बातें पहले से न जानेंगे तब तक हम सफलता के साथ निरीक्षण नहीं कर सकते। यही कारण है कि बच्चे नई चीज़ों को या तो आँखें फाड़-फाड़कर देखते हैं या बिलकुल उसको छोड़ देते हैं। बात यह है कि उस चीज़ को पहिले से न जानने की वजह से वह उसमें दिलचस्पी नहीं लेते। इसलिए इस बात की आवश्यकता है कि हम बच्चों को निरीक्षण से पहिले ही स्पष्ट रूप से

**Ibid*, P. 551-52.

बता दें कि उनको क्या देखना है, वर्ना बिना उद्देश्य के उनका निरीक्षण निरर्थक-सा हो जायगा। आजकल शिक्षण-पाठ्य-विषय में बहुत से विषय ऐसे हैं जिनमें निरीक्षण की अत्यन्त आवश्यकता है, नहीं तो पूरा पाठ बच्चों के लिए भारस्वरूप हो जायगा। अतएव बुनियादी शिक्षा की बुनियाद 'हाथ के काम" के अतिरिक्त विज्ञान के पाठ और व्यावसायिक विषयों में निरीक्षण की बड़ी महत्ता है।

विचारों को व्यक्त करना—आजकल संसार के प्रत्येक शिक्षा-प्रबन्ध में इस बात पर अधिक ज़ोर दिया गया है कि शिक्षा के लिए बच्चों को अपने विचारों को स्वतन्त्रता के साथ प्रगट करने का अवसर दिया जाय। विचार व्यक्त करने से तात्पर्य यह है कि बच्चा अपने मस्तिष्क में, अपने सामान्य प्रत्यय में और अपने विचारों में जो कुछ जानता है और बातें स्थिर करता है उनको अत्यन्त स्वतन्त्रतापूर्वक हमारे सामने ला सके, ताकि एक तरफ़ तो हम उसके ज्ञान-भण्डार, उसकी अभिरुचियों और उसके विचारों से परिचित हो सकें, और दूसरी तरफ़ अवसर पाकर उसके भोंडे सामान्य प्रत्यय को सुन्दर, त्रुटिपूर्ण चित्रों को पूर्ण और गलत-सलत विचारों को सही कर सकें। अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री जान डेवी ने शिक्षा के विषय में ऐसे महत्वपूर्ण प्रयोगों पर बहुत ज़ोर दिया है जो बच्चों को अपने भावों को व्यक्त करने का अवसर देते हैं। अतएव अपने शिक्षा-प्रबन्ध में बच्चों को अपने हाथ से काम-काज करने की योजना, जो जिज्ञासा उत्पन्न करती है, बच्चों की भावों के व्यक्त करने की मनोवृत्ति पर ही बनाई गई है। बच्चा स्वभावतः जिज्ञासु होता है। वह बहुत-सी प्राकृतिक प्रवृत्तियों का स्वामी होता है जो सदैव प्रदर्शन के लिए उत्सुक रहती हैं। वह अपने पूर्वजों से पैतृक सम्पत्ति के रूप में बहुत सी मानसिक शक्तियाँ पाता है जो उनको विभिन्न कामों या खेलों की ओर आकर्षित करती हैं। इन सब मानसिक शक्तियों को उचित रूप से व्यवस्थित किया जा सकता है, यदि हम बच्चे को स्वतन्त्रता प्रदान करें और उसको अवसर दें

कि वह अपने विचारों को निस्संकोच और स्वतन्त्रतापूर्वक हमारे सामने रख सके।

भाव व्यक्त करने की साधारण रीतियाँ यह हैं : (१) खेलकूद द्वारा अपने विचारों को व्यक्त करना, (२) बातचीत या बोली से अपने भाव व्यक्त करना, (३) लिखकर भाव व्यक्त करना, (४) नक़शाकशी या चित्रों द्वारा विचार व्यक्त करना, (५) चीज़ों के बनाने या बिगाड़ने से अपनी मानसिक दशा को व्यक्त करना। अब हम उनमें से हर एक की समयानुसार विवेचना करेंगे।

लन्दन यूनिवर्सिटी के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री सर टी० पी० नन अपनी एक पुस्तक में लिखते हैं कि यह कहना उचित है कि शिक्षा के बहुत से प्रयोगिक कार्यों का सर्वस्व खेल की महत्ता समझ लेने में निहित है। कारण यह है कि अगर खेल को सीमित क्षेत्र में ख़ास तौर पर बच्चों का ही काम समझा जाय, तो वह उनकी रचनात्मक शक्तियों को सबसे ज्यादा साफ़, उत्साहपूर्ण और विशेष रूप में रखता है। इसलिए यह सही है कि मुख्य रचनात्मक शक्तियाँ, जैसे आर्ट और क्राफ़्ट और थोड़ी बहुत भौगोलिक खोजें और विज्ञान की खोजें खेल से एक ख़ास लगाव रखती हैं और वास्तव में व्यक्तित्व के विकास के सम्बन्ध में खेल के साथ एक स्थायी सम्बन्ध स्थापित किये हुए हैं। मनोरंजक खेल और मनोविनोद का भी ध्येय गलत समझा जाता है। अगर उनको केवल जीवन की उलझनों और परेशानियों से बचने का प्रयत्न समझा जाय, चाहे खेलनेवाला बच्चा हो या आदमी, वह अपने अन्दर की एक स्थायी इच्छा, आत्मसम्मान के स्थायी भाव को व्यक्त करता है। और यह इच्छा ऐसी है कि उसको किसी न किसी रूप में अवश्य पूर्ण किया जाये नहीं तो आत्मा मुरदा हो जायगी। शिक्षा और समाज दोनों में जितना भी प्रभावित सुधार हुआ है, उसकी मूल इच्छा यही रही है कि इस मैदान को अधिक से अधिक विस्तृत बनायें जिसमें जीवन का वह केन्द्रित कार्य आदर-

योग्य और सन्तोषप्रद होकर अभ्यसित होता रहे।"[1] यही कारण है कि खेल-कूद को सब शिक्षा प्रणालियों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। छोटे-छोटे बच्चों की पूरी शिक्षा खेलों पर ही अवलंबित है। अतएव फ्रूवेल और मान्टसोरी की शिक्षण-प्रणाली में खेलों के द्वारा शिक्षा दी जाती है जैसा कि हम पढ़ चुके हैं। बड़ी आयु के बच्चों के लिए स्कूल के खेलों और खेल के मैदानों के अतिरिक्त नाट्य-रचना, मनोरंजक सभायें, दिलचस्प स्थानों का निरीक्षण, भौगोलिक या ऐतिहासिक या प्राकृतिक स्थानों का भ्रमण यह सब शिक्षा के प्रोग्राम के विशेष अंग हैं। खेलों के अतिरिक्त बच्चों की भावना व्यक्त करने का सब से बड़ा साधन उनकी बोली है।

"ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होता जाता है त्यों-त्यों निर्विकल्पक प्रत्यक्ष भान और सामान्य प्रत्यय उसके मस्तिष्क में उत्पन्न होने आरम्भ हो जाते हैं। आदि में उसके शब्द अस्पष्ट होते हैं। इसलिए वह पानी को मम, रोटी को ओटी, दूध को दुद्दू कहता है। अपने विचारों को प्रकट करने के लिए वह पूरे वाक्य नहीं कहता, बल्कि अपना तात्पर्य दो-तीन शब्द कह कर ही प्रगट करता है। जैसे वह पानी मांगता है तो पूरा वाक्य न कह कर कहता है 'मम' जिसका तात्पर्य यह हुआ कि मां मुझे पानी पिला दो। इसी प्रकार यह भी होता है कि एक नई वस्तु को किसी ऐसी दूसरी वस्तु के समान देखकर जिसका सामान्य प्रत्यय पहिले से ही उसके मस्तिष्क में है वह उसे भी वही वस्तु समझ लेता है। जैसे वह पिन को कील समझ लेता है और पेंसिल को कलम कहने लगता है।"* मतलब बच्चा शुरू से ही अपने विचार व्यक्त करने के लिए बोली का सहारा लेता

---

1 *Nunn* : Education: Its Data & First Principles, P. 101

*शिक्षण-मनोविज्ञान, पृष्ठ १४१.

है। जब वह कोई नया शब्द सीखता है तो उसे बेहद खुशी होती है और उसे बार-बार दोहराता है। यह उसकी प्रवृत्ति है कि जिस तरह भी हो अपने विचारों को टूटे-फूटे शब्दों और अधूरे वाक्यों में व्यक्त करे। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि उसकी इस शक्ति का, इस योग्यता का गला न घोंटे; बल्कि उसको अपने पाठ के समय में इस बात का अवसर दे कि वह अपने विचारों को अपने शब्दों में व्यक्त करे। इस सिलसिले में उस को चाहिये कि बच्चों के शब्दों को सही करे और अपूर्ण वाक्यों को पूरा कराये। अगर चीज़ों के सामान्य प्रत्यय बच्चों के मस्तिष्क में सही नहीं हैं तो उनको भी उसी समय सही करे। बड़े बच्चों की शिक्षा में अध्यापक बातचीत द्वारा अपने पाठ में बहुत कुछ सहायता ले सकता है। कहानियों या घटनाओं के दोहराने में, प्रश्नों के उत्तर देने में, प्राय. किस्सों को बातचीत या नाटक के रूप में बताने में और वाक्यों और पद्यों के मतलब बताने में, पद्यों को याद करने और उनको सुनाने में। तात्पर्य बहुत से उचित अवसरों पर विद्यार्थी बोली की सहायता से अपने भावों को व्यक्त कर सकते हैं और इस तरह शिक्षक का काम हल्का कर सकते हैं।

बच्चों के भावों के व्यक्त करने की तीसरी रीति यह है कि शुरू-शुरू में बच्चा लिखने से कुछ घबरा सकता है, अगर उसको गलत तरीके से लिखना सिखाया जाय। मगर यदि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर लिखने की ओर उसकी प्रवृत्ति की जाय तो वह बहुत कुछ दिलचस्पी ले सकता है। बात यह है कि बच्चे का स्वभाव लिखने की ओर स्वभावत: बहुत जल्द झुक जाता है क्योंकि उसमें हाथ से काम करना पड़ता है। बच्चे की काम करने की प्राकृतिक प्रवृत्ति प्रतिक्षण उसको कार्य में लगाये रखना चाहती है। अतएव लिखने में यह शक्ति अपना उद्देश्य पूरा कर लेती है। क्या कभी आपने एक छोटे से बच्चे को अपने बड़े भाई की कापी और पेंसिल पर कब्ज़ा करते और तरह-तरह की टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खींचते देखा है?

वह ऐसा क्यों करता है ? कारण स्पष्ट है। उसका स्वभाव उसको ऐसा करने के लिए उकसाता है।

छोटे-छोटे बच्चों को लिखना सिखाने के लिए वर्तमान मनोविज्ञान यह कहता है कि अलग-अलग अक्षरों की अपेक्षा पूर्ण शब्द लिखना सिखाया जाना अच्छा है। इसका कारण यह है कि वह शब्दों को चीज़ों से सम्बन्धित कर लेते हैं और जिस तरह उन चीज़ों में उनको दिलचस्पी होती है उसी तरह उन शब्दों में भी।

बड़े बच्चे लिखने के साधन द्वारा अपने विचारों को एक बड़ी हद तक प्रकट कर सकते हैं। "उस समय से जब कि विद्यार्थी अच्छी तरह अभ्यस्त के रूप में कागज़ पर अपने विचारों को व्यक्त करने के योग्य हो जाता है अर्थात् प्राइमरी स्कूलों की ऊँची कक्षाओं में और मिडिल स्कूलों की सब कक्षाओं में लिखित कार्य स्कूल के काम का विशेष गुण है। कक्षा की परीक्षा की तरह उनको शिक्षा-सम्बन्ध में किसी पढ़ाये जाने वाले विषय की क्रिया के भाग "अभ्यास" की तरह समझाया जा सकता है। लेकिन उनकी किसी हद तक ज़रूरत हो सकती है। यह बात निबन्ध और बच्चे की आयु के लिहाज़ से विभिन्न हो सकती है। जैसे उनकी आवश्यकता भूमिति की शिक्षा के साथ में अपेक्षाकृत अधिक स्थायी रूप में होती है, इतिहास के पाठों की अपेक्षा कम और बड़ी आयु के बच्चे छोटी आयु के बच्चों की अपेक्षा उनको अधिक करेंगे। लेकिन लिखित अभ्यास से यह न समझना चाहिये कि यह इस बात की एक सही-सही परीक्षा है कि एक पाठ को ग्यारह-बारह वर्ष के बच्चे ने कितना समझ लिया है और मस्तिष्क में सुरक्षित कर लिया है। क्योंकि सम्भवत. उसकी बहुत सी गलतियां और त्रुटियों का उत्तरदायित्व उसकी अज्ञानता और विचारों के भोंडेपन पर इतना नहीं होता जितना कि लेख द्वारा अपने भावों को व्यक्त करने की योग्यता की कमी पर।"*

*Raymont: Op. Cit. Pp. 267-8.

अब हम बच्चों की इस प्रवृत्ति की ओर आते हैं जिसकी वजह से वह चित्र और नक़शे बना कर और चीज़ों को तोड़-फोड़ कर या नई-नई चीज़ें बना कर अपने भावों को प्रकट करते हैं। बच्चों के स्वभाव में जो शक्ति काम करती है वह रचना-शक्ति है। उसके अतिरिक्त कुछ प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ जैसे खेल और अनुकरण आदि भी काम करते हैं जिनकी वजह से बच्चे काम करने के लिए व्यग्र रहते हैं। आधुनिक काल की सब शिक्षा-प्रणालियाँ बच्चों की इन प्राकृतिक शक्तियों और प्रवृत्तियों से लाभ उठाती हैं और बच्चों को शिक्षा काल में इसका अधिक से अधिक अवसर देती हैं कि वह चीज़ों को अपने हाथों में लें, उनसे खेलें, उनको बनायें या बिगाड़ें और इस तरह शिक्षा प्राप्त करें। इस तरह उनको नई-नई चीज़ों को बनाने के भी अवसर दिये जायँ ताकि वह उनके बनाने के समय पग-पग पर अपने ज्ञान-भण्डार में वृद्धि करें। अमरीका के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री प्रोफेसर जान डेवी ने काम-काज द्वारा शिक्षा का जो प्रबन्ध किया है उसका मनोविज्ञान भी यही है। अतएव एक जगह डेवी लिखते हैं—

"अगर इच्छायें घोड़े होते तो गरीब सवारी क्या करते, लेकिन चूँकि वह घोड़े नहीं हैं, चूँकि किसी इच्छा या अभिलाषा को पूरा करने के यह अर्थ होते हैं कि हम उसकी प्राप्ति के लिए काम करें और काम करने का मतलब यह है कि हम सब रुकावटों को दूर कर दें, सामान्य से परिचित हो जायँ और सन्तोष, धीरज, संलग्नता, परिश्रम को काम में लायें; इसलिए उस इच्छा की पूर्ति के लिए अनुशासन की अर्थात् अपनी शक्ति को व्यवस्थित करने की और ज्ञान को बढ़ाने की ज़रूरत पड़ती है। एक छोटे बच्चे का उदाहरण लीजिये जो एक डिब्बा बनाना चाहता है। अगर उसकी कल्पना या इच्छा निर्बल है तो उसको अनुशासन न प्राप्त हो सकेगा। लेकिन जब वह अपनी शक्तियों का अनुमान लगाने का प्रयत्न करता है तो यह समस्या बन

जाती है। अपने विचार को प्रकट करने की, उसका एक खाका की सूरत में परिवर्तन करने की, ठीक तरह की लकड़ी लेने की, आवश्यकतानुसार भागों को नापने की और उसको सही रूप देने की, इत्यादि। फिर लकड़ी काटने के सामान की तैयारी—उसको रन्दे से बराबर करने की, रेगमाल से चिकना करने की और सब किनारों और कोनों को फिट करने की समस्या आ जाती है। इसी सिलसिले में औजारों और उनको प्रयुक्त करने के तरीकों का ज्ञान आवश्यक होता है। अगर बच्चा अपनी प्राकृतिक शक्ति का अनुमान लगा लेता है और बक्स बना लेता है तो अनुशासन और संलग्नता सीखने, रुकावटों को दूर करने के लिए कोशिश करने और बहुत काफी ज्ञान प्राप्त करने के लिए काफ़ी अवसर मिल जाते हैं।"*

हमारे प्रान्त में बुनियादी शिक्षा की इमारत भी बच्चे की इसी मनोवृत्ति पर खड़ी की गई है। बुनियादी शिक्षा में दस्तकारी को शिक्षा का केन्द्र बनाया गया है अर्थात् हाथ से काम करने को शिक्षा-प्रबन्ध का केन्द्र बनाकर शिक्षण-विषय को उसके चारों ओर घुमा दिया गया है। बच्चे को इसी केन्द्रित कला की बदौलत दिलचस्पी से शिक्षा प्राप्त करना है। कारण यह है कि वह केन्द्रित कला उसके जीवन से सम्बन्ध रखती है। वह उसमें कोई अप्राकृतिक बात नहीं देखता। वह उसको सीखने के लिए स्वयं व्यग्र रहता है और उसके सम्बन्ध में और बातों को सीखने से भी जी नहीं चुराता।

"हम दस्तकारी को उन प्रति दिन जीवन के विभिन्न दृष्टि कोणों को सामने रखने और ज्ञात करने के लिए प्रयोग में लाते हैं जिनमें बच्चा रहता है और रहेगा। प्रकृति की बड़ी पुस्तक जो हमारे चारों ओर खुली हुई है, चतुरता के साथ सिखाई जाती है......। बच्चों को यह सिखाया जाता है कि वह अपने वातावरण में बुद्धि के साथ

*Dewey: The School & Society, Pp 38-39

दिलचस्पी लें। दस्तकारी (क्राफ़्ट) को बुनियाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। ऐसे समस्या के रूप में जिसमें वह स्वयं या उसका परिवार, स्कूल से बाहर प्रयोगिक रूप में जीविकोपार्जन के साधन-स्वरूप रहता है दस्तकारी की महत्ता सीमा से आगे नहीं बढ़ती। बल्कि उसको इस तरह काम में लाया जाता है कि वह जीवन की आवश्यकताओं को सिखाने का अवसर दे। अर्थात् हमारे चारों ओर नित्यप्रति जीवन की वस्तुएँ, रुपया-पैसा, नाप-तौल, शिष्टाचार, ज्ञानभण्डार में वृद्धि और सभ्यता व सुन्दरता के प्रयोग के अवसर ले जो कि स्वभावत. दस्तकारी के सिलसिले में उत्पन्न होते हैं।"*

हाथ से काम करने में बुनियादी दस्तकारी के आर्ट भी बच्चे के विचार व्यक्त करने के सुन्दर साधन हैं। इस विषय को भी आजकल की शिक्षा में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कारण वही है जिसकी कि चर्चा की जा चुकी है। अतएव अपनी इच्छा प्रवत्ति का संतोष चित्र बनाने और बिगाड़ने में पाता है। "आजकल हमारे स्कूलों में आर्ट के शब्दों को विस्तृत स्वरूप दे दिया गया है और आर्ट में नक़शा और चित्र के अतिरिक्त पेंटिंग, मिट्टी का काम और दूसरे हाथ के काम सम्मिलित हैं; अतएव हम आर्ट को सिर्फ आर्ट के काम में नहीं लाते बल्कि उसे एक शिक्षा-साधन के रूप में या उसके प्राप्त करने के साधन के रूप में जिसमें 'काम करने से सीखना' निहित होता है।"†

एतदर्थ शिक्षा-काल में बच्चों को इस बात पर पूरा-पूरा ज्ञान देने की अत्यन्त आवश्यकता है कि वह काम करने से, चित्र और नक़शे बनाने से और मिट्टी से माडल और चीज़ें तैयार करने से अपने विचारों को प्रकट कर सकें ताकि शिक्षक उन विचारों को जान करके

**Dr. Khan*: Our Work, published by the D. . I., U. P., P. 2.

†Op. Cit. P. 5.

बच्चों की शक्तियों का पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त कर सके जो कि शिक्षा के लिए अत्यन्त लाभप्रद हैं।

प्रश्न और उत्तर--पाठ के बीच में शिक्षक अपने विद्यार्थियों से प्रश्न करता है। प्रश्नों का उद्देश्य यह होता है कि उनके द्वारा शिक्षक अपने पाठ में दर्जे के लड़कों से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करे। प्रश्न प्राय तीन अवसरों पर किये जाते हैं। (१) पाठ शुरू करने से पहिले, (२) पाठ के बीच में और (३) पाठ समाप्त करने के बाद। प्रत्येक अवसर पर प्रश्नों का उद्देश्य विभिन्न होता है। पाठ शुरू करने से पहिले शिक्षक प्रश्नों द्वारा मालूम करना चाहता है कि उसके शिक्षार्थियों का पूर्व-ज्ञान कितना है। वह नये पाठ के लिए तैयार हैं या नहीं। नये पाठ को किस तरीके से, किस सुन्दर ढंग से प्रारम्भ किया जाय कि उसको कम से कम समय में वह दिलचस्पी और ध्यान-पूर्वक सीख सकें। पाठ के बीच में जो प्रश्न होते हैं वह यह पता लगाने के लिए होते हैं कि बच्चे पाठ से लाभ उठा रहे हैं या नहीं, वह शिक्षक की बातों पर ध्यान दे रहे हैं या नहीं और शिक्षक का परिश्रम व्यर्थ जा रहा है या उससे वे लाभ प्राप्त कर रहे हैं। इसी प्रकार पाठ के अन्त में प्रश्नों का तात्पर्य यह है कि उनके द्वारा बच्चों का पूरा पाठ दोहराया जाय ताकि उनका ज्ञान फिर से ताज़ा हो जाय।

अच्छे प्रश्न---शिक्षक की योग्यता इसमें है कि वह अच्छे प्रश्न बच्चों से पूछे। अच्छे प्रश्नों की खूबियाँ यह हैं कि क्या और कब से शुरू होने वाले प्रश्नों की अपेक्षा क्यों और कैसे से शुरू होने वाले प्रश्न बच्चों से पूछे जायँ। कारण यह है कि यह प्रश्न बच्चों में सोच-विचार करने की आदत डालते हैं। अध्यापक की यह विशेषता है कि वह अपने प्रश्नों द्वारा बच्चों की सोचने और विचारने की शक्ति में गति पैदा कर दे और धीरे-धीरे प्रश्नों के सहारे उनके ज्ञान को ही काम में लाते हुए उनको अँधेरे से प्रकाश की ओर लाये। अध्यापक के प्रश्न साफ़, छोटे और अभ्रामक हों। अर्थात् ऐसे

कि उनके उत्तर दो-दो या तीन-तीन न हों। एक प्रश्न का केवल एक ही उत्तर सम्भव हो। प्रश्न ऐसा होना चाहिये कि अपना उद्देश्य भली प्रकार प्रकट करे, चाहे किसी बात पर ज़ोर देना अभीष्ट हो, चाहे विद्यार्थी का पूर्वज्ञान जानना हो या उसकी सोचने की शक्ति को गतिशील बनाना हो। अच्छा तो यह है कि पूरी कक्षा के सामने प्रश्न रक्खा जाय और फिर किसी लड़के से उसका उत्तर मांगा जाय। इस प्रकार के प्रश्नों से दूर रहना अनिवार्य है, जैसे क्या कोई लड़का यह बता सकता है कि..........। इस प्रकार के प्रश्न किसी खास लड़के से पूछने की अपेक्षा पूरी कक्षा से एकसाथ पूछे जाते हैं।

यह कक्षा में गड़बड़ी उत्पन्न करा सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक बालक बोलने का प्रयत्न करेगा। प्रश्न एक एक लड़के से पूछे जायँ और पूरी कक्षा के लड़कों पर व्यक्त किये जायँ। यह न हो कि केवल दो-तीन लड़कों से बार-बार प्रश्न किये जायँ या एक तरफ़ के लड़कों से ही प्रश्न पूछे जायँ और दूसरी तरफ़ वालों से नहीं।

बुरे प्रश्न—जिन प्रश्नों के उत्तर ऐसे हों कि उनसे बच्चों को सोचना-विचारना पड़े या जिनके उत्तर स्वयं प्रश्न ही में निहित हों वह बच्चों से न पूछे जायँ। ऐसे प्रश्न बुरे समझे जाते हैं। शिक्षा-शास्त्रियों ने इस प्रकार के प्रश्नों को कई भागों में विभक्त किया है। जो निम्नलिखित उदाहरणों से भली भांति समझ में आ जायेंगे।

क्या मानसून हवाओं से वर्षा होती है ?
मानसून हवाओं से वर्षा होती है ना ?
मानसून हवाओं से वर्षा होती है या नहीं ?
मानसून हवायें वह हवायें है जो ......?

पहिला प्रश्न उस क़िस्म के प्रश्नों में से है जिसको सीधा-सीधा (Direct) प्रश्न कहते हैं। दूसरा प्रश्न पथप्रदर्शन करने वाले (Leading) किस्म के प्रश्नों का अच्छा उदाहरण है। तीसरा प्रश्न हाँ या न में सिर्फ एक ही उत्तर हो सकता है। यह प्रश्न "एक

न एक" किस्म के (Alternating) प्रश्नों में से है। इसी प्रकार चौथा प्रश्न उस प्रकार के प्रश्नों में से है जिनको गोलमोल (Elliptic) प्रश्न कह सकते हैं। यह प्रश्न अच्छे किस्म के प्रश्न नहीं समझे जाते। उनके उत्तर या तो स्वयं प्रश्न ही में छिपे होते हैं और बच्चे अपनी सोचने-विचारने की शक्ति से अधिक काम लिये बिना उनके उत्तर दे देते हैं या बच्चे प्रश्न से ही अध्यापक का ध्येय समझ लेते हैं कि वह क्या उत्तर चाहते हैं और बिना सोचे-समझे वही उत्तर दे देते हैं। इसलिए अध्यापक को चाहिये कि वह ऐसे प्रश्न न पूछे।

उत्तर प्रश्नों के उत्तर को ग्रहण करना या उनको ठुकरा देना, उनमें सुधार कर देना या यों ही रहने देना और दूसरे प्रश्नों को पूछना, इसमें भी अध्यापक की योग्यता निहित है। एक प्रश्न का उत्तर अगर बिलकुल ठीक है तो कोई बात ही नहीं। लेकिन हो सकता है कि प्रश्न का उत्तर गलत हो या अधूरा। गलत प्रश्न को एकदम ठुकरा देना शिक्षक के लिए ठीक है। मगर अधूरे उत्तर को या ऐसे उत्तर को, जिसका कुछ भाग ठीक हो और कुछ गलत, छोड़ देना एक बड़ी गलती है। अध्यापक को चाहिये कि और छोटे प्रश्नों द्वारा अपूर्ण उत्तरों का सुधार और उत्तर के गलत भागों को सही कराये। यदि शिक्षार्थी बिलकुल ही ऊटपटांग उत्तर देता है तो अध्यापक को चाहिये कि वह न केवल पूरी तरह से उनको अस्वीकृत कर दे बल्कि कुछ घृणा का प्रदर्शन करे जिससे विद्यार्थी को अपनी भूल का अनुभव हो। "गोलमोल और अटकलपच्चू उत्तरों को न मान लेना चाहिये। अध्यापक पर कलंक आता है यदि वह अनुचित रूप से टोक दे या एक अनिश्चित ध्येय वाले शिक्षार्थी के अधूरे उत्तर पर यह कहे कि "हाँ ठीक है", "मैं समझ गया कि तुम्हारा मतलब क्या है।" जब तक एक विद्यार्थी साफ-साफ गलत रास्ते पर न हो उसको इस बात की आज्ञा प्राप्त है कि वह बिना किसी अंकुश के अपना उत्तर पूरा कर सके। विद्यार्थी को यह बात

भासित करा देना आवश्यक है कि दूसरे विद्यार्थी भी उनकी बातों को सुनें और यह कि पूरी कक्षा को संकेत करने की भी आदत डालें। अध्यापक के लिए इस मामले में विशेष रूप से योग्यता की आवश्यकता है कि वह बेतुके उत्तरों की वजह से विद्यार्थी को वास्तविक विषय से भटकने से बचाये।"*

श्यामपट--कक्षा को पढ़ाने में अध्यापक के लिए श्यामपट का प्रयोग बहुत आवश्यक है। अध्यापक को श्यामपट पर साफ़ और सुलेख अक्षरों द्वारा लिखने के अतिरिक्त चित्र या नकशों में भी काफी अभ्यास होना चाहिये। एक अच्छा अध्यापक श्यामपट के उचित प्रयोग में अच्छा अभ्यास रखता है। वह पाठ के बीच में पाठ की खास-खास बातों को संक्षेप रूप में श्यामपट पर लिखता जाता है। यही नहीं बल्कि अगर वह पाठ के किसी अश को चित्रों या संकेतों द्वारा समझाना चाहता है तो तुरन्त हाथ के दो-चार करने से एक ऐसा चित्र बच्चों के सामने श्यामपट पर बना देता है जिसके प्रत्येक भाग में गति प्रतीत होती है। इसी प्रकार जब वह भूगोल का पाठ पढ़ाता है तो तुरन्त पाठ के अनुसार श्यामपट पर नकशा बना देता है और उसे पाठ के साथ-साथ भरता रहता है और इस तरह बच्चों की दिलचस्पी को जाग्रत रखन है। गणित के पाठ में श्यामपट विशेष प्रकार से महत्त्व रखता है जि को किसी रूप में भी छोड़ा नहीं जा सकता। पाठ के पहिले श्यामपट बिलकुल साफ होना चाहिये, नहीं तो बच्चों का ध्यान बंट जायगा। श्यामपट पर जो लिखा जाय वह साफ-सुथरा और क्रम के साथ हो। इसका ध्यान रहे कि अक्षर काफी बड़े हों ताकि पूरी कक्षा सरलतापूर्वक देख सके।

चित्र और नकशा--अच्छा अध्यापक विद्यार्थियों को पढ़ाने में

**Hacnee*: Instructions in Indian Secondary Schools, P. 31.

नकशों और चित्रों से भी बड़ी सहायता लेता है। उनसे यह लाभ है कि एक तो बच्चों के मस्तिष्क में चीज़ों के सही प्रतिबिम्ब (Images) और सामान्य प्रत्यय पैदा हो जाते हैं और दूसरे उनकी दिलचस्पी और अवधान में भी जान आ जाती है। प्रायः शब्द "चित्र" से वह चित्र समझा जाता है जो किताबों वगैरह में होता है। उसका अर्थ इस उदाहरण से भी लिया जाता है कि जो किसी बात को समझाने के एक सिलसिले में वर्णन की जाती है। लेकिन अध्यापक के लिये यह शब्द विस्तृत अर्थ रखता है और वह हर तरीका जिससे विद्यार्थी को पंच-इन्द्रियों को या उसकी कल्पना शक्ति को काम में लाकर किसी विषय को वर्णन करना या तर्क पर प्रकाश डालना पड़े "नकशा और चित्र" क्षेत्र में आता है। अतएव भूगर्भ-विद्या (Geology) के अनमोल नमूने, भौतिक शास्त्र के यंत्र और रसायन और जीव-विद्या से संबंधित चीज़ों के संग्रह, श्याम-पट पर बनाये हुए नकशे आदि भी चित्र और नकशों के सिलसिले में गिने जाते हैं।

विभिन्न प्रकार के चित्र निम्नलिखित भागों में विभक्त किये जा सकते हैं —

१—वास्तविक वस्तु, जिनमें किसी चीज़ की कमी नहीं होती।

२—माडल या चीज़ों के ठोस नमूने जिनमें किसी न किसी बात की कमी रह जाती है।

३—चित्र या फोटो जिनमें अधिक बातों की कमी रह जाती है।

४—नकशे, खाके और शकलें जिनमें और अधिक बातें अधूरी रह जाती हैं।

५—ग्राफ यानी खानेदार कागज की सहायता से संख्या और गिनती का प्रकट करना।

६—मौखिक रीति से किसी दृश्य को वर्णन करना या उदाहरणों और उपमाओं द्वारा बच्चों के सामने चीज़ें रखना। इसमें सब बातें बच्चों की कल्पना के अधीन होती हैं।

"अध्यापक ऊपर लिखी हुई शिक्षा-सहायक सामग्री बच्चों की आयु और उनकी योग्यता के अनुसार प्रयोग करेगा। जैसे छोटे-छोटे बच्चों को अगर जनरल साइन्स में केंचुवे का पाठ पढ़ाया जाय तो वह उसके चित्र और श्यामपट पर बनी हुई शक्ल से सन्तोष नहीं करेगा। अतः असली पशु को बच्चों के सामने लाकर दिखाया जाय और निरीक्षण द्वारा उनको उसकी गतियों, स्वभावों और प्रवृत्तियां इत्यादि का ज्ञान कराया जायगा। बिलकुल इसी तरह भूगोल और इतिहास के पाठों में सैर और भ्रमण (Excursions) द्वारा ज्ञान प्राप्त कराया जाता है। वह भी असली चीज की सहायता से ही ज्ञान प्राप्त करने की श्रेणी में है। इसके प्रतिकूल उन विषयों की शिक्षा में अध्यापक माडलों, चित्रों और नकशों आदि की जो सहायता प्राप्त करता है उनसे बच्चों की कल्पना-शक्ति को सहायता मिलती है"।*

विभिन्न कक्षाओं के बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार के चित्रों का प्रयोग किया जाता है। किंडरगार्टन में शायद ही ऐसा कोई पाठ होता है जिसमें बच्चों को चीज़ों को हाथ में लेना न पड़े और उनकी सहायता से पाठ न पढ़ना पड़े। प्राइमरी कक्षाओं में भी बच्चे असल चीज़ की सहायता से शिक्षा प्राप्त करते हैं। लेकिन यहाँ पर बच्चे की कल्पना-शक्ति को अधिकतर काम में लाया जाता है। इससे ऊँचे दर्जों में असल चीज़ का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हो जाता है और चित्र तथा नक़शे बच्चे की कल्पना-शक्ति और वैकल्पिक प्रत्यक्ष ज्ञान को गति-विधि में लाते हैं। और ऊँचे दर्जे के लड़के केवल खाकों, साधारण शकलों और ग्राफ़ के नकशों की सहायता से ही अपनी कल्पना में वह बातें ले आते हैं जिनको अध्यापक पढ़ाना चाहता है।

चित्र न केवल किसी पाठ के पढ़ाने में सहायक होते हैं बल्कि उनको

---

* *Raymont* : Principles of Education, P. 274.

पूर्ण रूप से कुछ पाठों के पढ़ाने में सफलता के साथ प्रयोग किया जा सकता है। अतएव प्रायः निबन्ध (Composition) के पाठ में बच्चों के सामने केवल चित्र ही रखकर उनको अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दिया जा सकता है। इसी प्रकार भाषा के घण्टों में सिर्फ चित्रों द्वारा पूरी कहानी पढ़ाई जा सकती है।

चित्र बच्चों के सामने इस प्रकार रक्खे जायँ कि उनका शौक़ अधिक से अधिक हो जाय। पूरी कक्षा चित्र को भली प्रकार देख सके। अगर कोई नकशा कक्षा के सामने रखना है तो उसको एक ऊँची जगह पर लटका देना चाहिये। असल चीज़ को अपने हाथ में पकड़े रहना खराब बात है, इसलिए उसको एक ऊँची मेज़ पर कक्षा के सामने रख देना चाहिये। बच्चों के सामने एकदम बहुत सी चीज़ें रख देना भी गलत है। इससे उनके ध्यान को इधर-उधर भटकने का अवसर मिल जायगा। अच्छा तो यह है कि सिर्फ एक-आध चीज़ ही बच्चों के सामने लाई जाय और उसकी सहायता से मुख्य-मुख्य बातें सिखलाई जायँ। अन्त में इस बात को दोहरा देना अनुपयुक्त न होगा कि चित्रों की आवश्यकता उसी समय होती है जब कि कोई दिक्कत सामने आती है। इस प्रकार मौखिक वर्णन को प्रायः चित्रों की सहायता से ज़ोर देने की आवश्यकता प्रतीत होती है। किसी फूल के खाके के चित्र से बच्चे उसी समय संतोष प्राप्त करेंगे जब कि उनको एक कठिन समस्या सुलझाने की आवश्यकता प्रतीत होगी। यह याद रखना ज़रूरी है कि स्वयं चित्र और प्रयोग कोई महत्ता नहीं रखते हैं बल्कि उनका उद्देश्य बहुत ऊँचा है।

हम अध्यापक को यह भी फिर से बता दें कि चित्र के प्रयोग के यह अर्थ नहीं हैं कि मौखिक वर्णन को बिल्कुल ही समाप्त कर दिया जाय। स्कूल का कोई भी साधारण चित्र एक रेगिस्तान या घास के मैदान (फ़ेरी) के दृश्य का सही चित्र नहीं खींच सकते।

पाठ्य-पुस्तक पढ़ना—एक और चीज़ जिससे अध्यापक अपने पाठ में सहायता लेता है पाठ्य-पुस्तक (Text Book) पढ़ना है। पुस्तक पढ़ने के प्रयोग में अध्यापक को बहुत चतुरता से काम लेना चाहिये। वह समय जब कि अध्यापक हर बच्चे को अलग-अलग अपने पास बुलाकर उसको पुस्तक का पाठ देता था अब समाप्त हो चुका है। उसके बजाय अब ऐसा समय है जब कि अध्यापक पूरी कक्षा को एक साथ पढ़ाता है। पहले समय में बच्चा पाठ याद करता था और अध्यापक सुनता था; मगर अब अध्यापक को पाठ याद करना पड़ता है और बच्चे को सुनाना पड़ता है। अच्छे अध्यापक की विशेषता यह है कि वह स्वयं पुस्तक पढ़ने का आश्रित न हो बल्कि पुस्तक को अपने अधीन बना ले। अध्यापक का काम यह है कि वह जो कुछ बच्चों को पढ़ाता है उसमें स्वयं दक्ष हो। आजकल शिक्षा का दृष्टि-कोण यह है कि जहाँ तक हो सके बच्चा किताब पढ़ाने से वंचित रखा जाय। अगर उसको किताबों की आवश्यकता हो तो वह एक ही किताब में लकीर का फकीर न बन जाय बल्कि उसको इस तरह दीक्षा दी जाय कि वह विभिन्न पुस्तकों से एक ही विषय के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सके। उसको इतनी योग्यता हो कि वह अन्धाधुंध पुस्तक के प्रत्येक शब्द को बिलकुल सही न मान ले बल्कि उसको पढ़ते समय अपनी कौतूहल-शक्ति के अनुसार हर बात पर दृष्टि स्थिर रक्खे। यही कारण है कि हमारे प्रान्त में जो नया पाठ्य विषय तैयार हुआ है उसमें मातृभाषा और अङ्गरेजी भाषा में एक साथ कई-कई पुस्तकें पाठ्य-विषय में प्रचलित करने के लिए कदम उठाया गया है। इसका तात्पर्य यही है कि विद्यार्थी केवल एक ही पुस्तक पर सन्तोष न करे बल्कि वह कई पुस्तकें पढ़ने की क्षमता उत्पन्न करे। इसका यह अर्थ नहीं है कि सब बच्चों को उनकी आयु और योग्यता का बिना लिहाज किये पुस्तकें पढ़ने से वंचित कर दिया जाय बल्कि उन की आयु और योग्यतानुसार उन्हें पुस्तकें पढ़ने के लिए सौंपी जायँ और

इसी के अनुसार उनसे आशा की जाय कि वह इन पुस्तकों को काम में लायें।

पाठ्य-पुस्तक की विशेषतायें - पढ़ने की पुस्तकों का चुनाव करने में शिक्षा-विभाग बहुत सावधानी से काम लेता है। अतएव साधारण अध्यापक पुस्तकों के चुनाव करने और उनके गुणों और त्रुटियों को मालूम करने के सिलसिले में अनभिज्ञ होते हैं। यह काम शिक्षा-विभाग का है कि वह अच्छी-अच्छी पुस्तकें या तो स्वयं शिक्षा-शास्त्रियों से लिखवाये और उनको स्वयं अपने अधिकार से अपनी देख-रेख में छपवाये, जैसा कि वर्तमान काल में हमारे प्रान्त ने बुनियादी शिक्षा के सिलसिले में हिन्दी-उर्दू की बेसिक रीडरें और हिसाब की किताबें कला-विदों से लिखवा कर छपवाई हैं, या दूसरे शिक्षा-शास्त्रियों की लिखी हुई पुस्तकों पर बिना पक्षपात और निस्वार्थ भावना से विचार करे और अगर उचित समझे तो स्वीकृति दे। तात्पर्य यह कि पुस्तकों की त्रुटियों व विशेषताओं पर विचार करना वास्तव में शिक्षा विभाग का काम है। फिर भी शिक्षक के लिए आवश्यक है कि वह अच्छी और बुरी पुस्तक का निर्णय कर सके। उसके लिए यह जानना आवश्यक है कि विभाग की चुनी हुई पुस्तकों में कौन-कौन सी विशेषतायें होनी चाहिये। पुस्तक की पहिली विशेषता यह है कि वह जिस आयु और कक्षा के लिए हो उसके अनुसार मोटे या कम मोटे अक्षरों में अच्छे कागज़ पर साफ-साफ छपी हो। मज़बूत जिल्द हो। भाषा ऐसी हो कि बिना कठिनाई के विद्यार्थी की समझ में आ जाय। उसमें ऐसे चित्र हों जिनका सम्बन्ध मनोविज्ञान से हो और जो विद्यार्थी की दिलचस्पियों में वृद्धि कर सकें। इसके अतिरिक्त विज्ञान और भूगोल की पुस्तकों में इस बात से बचने का प्रयत्न किया गया है कि हर बात बच्चों को सीधे बता दी जाय। उन पुस्तकों में प्रश्न और प्रयोग इत्यादि द्वारा (जहाँ सम्भव हो सके) ऐसे अवसर प्रचुर मात्रा में होना आवश्यक है जिनमें विद्यार्थी अपनी मानसिक

शक्तियों को काम में ला सकें, सोच-विचार कर सकें, और स्वयं परिणाम पर पहुँच सकें।

जैसा कि वर्णन किया जा चुका है कि एक सुन्दर पाठ्य-पुस्तक स्वयं एक ऐसे अध्यापक की हैसियत नहीं रखती जो सब बातें एक दम बच्चों के सामने उगल दे। वह एक पथ-प्रदर्शिका है जो विद्यार्थियों को धीरे-धीरे लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायता देती है।

एक अच्छी पुस्तक में बच्चों की मानसिक और ज्ञान की योग्यता का ध्यान पग-पग पर रखा जाता है। एक पाठ के अन्त में विचारों को उभारने वाले अच्छे प्रश्न भी होते हैं जिनसे विद्यार्थियों में सोच-विचार करने की आदत के अलावा किताब को ध्यानपूर्वक पढ़ने और समझने की जिज्ञासा भी उत्पन्न होती है।

लिखित काम—बच्चों से लिखने का काम लेना भी अध्यापक की विशेषताओं की मानों परीक्षा है। एक अच्छा अध्यापक अपने विद्यार्थियों से जो लिखित कार्य कराता है उससे न केवल विद्यार्थी की योग्यता का अनुमान हो सकता है बल्कि स्वयं उसकी योग्यता का भी अनुमान हो जाता है। शुरू में बच्चों को अपने हाथ की गतिविधि पर अधिकार नहीं होता। वह हाथ हिलाने और लिखने के लिए व्यग्र अवश्य रहते हैं मगर उनके लिखने में बड़ी भोंडी-भोंडी शक्ल के शब्द हो सकते है या फिर आदमी, पेड़ और चिड़ियां के चित्र। इसी कारण से नरसरी और किंडरगार्टन स्कूलों में बच्चों के हाथ में कलम, दावात और क़ागज़ नहीं दिया जाता, बल्कि बच्चा चाक या खरिया मिट्टी की सहायता से ज़मीन पर या श्यामपट पर लिखने का अभ्यास करता है या उसे तख्ती या स्लेट दे दी जाती है जिस पर वह अपनी मानसिक भावनाओं को व्यक्त करने का अभ्यास करता है। बच्चा जब बड़ा हो जाता है तो वह अपने हाथ और बाँह की गतिविधि पर बहुत कुछ नियंत्रण प्राप्त कर लेता है। अतएव तब वह तख्ती और स्लेट के अतिरिक्त कागज़ पर भी लिखने का अभ्यास करता है। अध्यापक के लिए यह

बहुत आवश्यक बात है कि वह देखें कि बच्चा किस चीज पर लिखता है, क्या लिखता है और कैसे लिखता है। उसका यह भी कर्त्तव्य है कि वह बच्चों की लिखावट को पग-पग पर देखता रहे, उनमें सुधार करता रहे और इस तरह उन्नति की ओर अग्रसर करे।

शुरू में बच्चे को कापी पर लिखाने में अध्यापक को विशेष रूप से परिश्रम करने की आवश्यकता है। कापी को ठीक तरह सामने रखना, लिखने में सही बैठने का तरीका अपनाना, कलम को ठीक पकड़ना, कलम की नोक को सावधानी के साथ दावात में डालना ताकि स्याही आवश्यकता से अधिक न आये और फिर कापी पर सफाई से लिखना, यह सब बातें बच्चों को सिखाने की आवश्यकता है। हमारे यहाँ छोटे-छोटे बच्चे लिखने में अपने हाथ की उंगलियों को स्याही से भर लेते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि उनके मुँह में, कपड़ों में, कापी और किताबों में रोशनाई लग जाती है। इसके अतिरिक्त कलम में रोशनाई अधिक आ जाने से बच्चे बार-बार कलम को झिटकने की आवश्यकता प्रतीत करते हैं, ताकि रोशनाई कम हो जाय। इस आदत से कमरे का फर्श और मेज़-कुर्सी आदि रोशनाई से भर जाती हैं और चारों ओर गन्दगी हो जाती है। अध्यापक का कर्त्तव्य यह होना चाहिये कि वह छोटी-छोटी बातों पर ध्यान दे ताकि बच्चे लेखन-कला में सफलता प्राप्त कर सकें।

बच्चों को गणित के अतिरिक्त और दूसरे विषयों में लिखने की आवश्यकता कम पड़ती है। गणित के प्रश्न हल करने में बच्चों को यह सिखलाना चाहिये कि वह अंक किस तरह लिखते हैं। प्रश्न के हल में उसकी विभिन्न श्रेणियाँ (Steps) किस प्रकार लिखें ताकि पूरा हल एक सुव्यवस्थित और क्रम से सामने आ जाय। कच्चा काम (Rough) को कहाँ लिखे और कैसे इत्यादि। यह सब बातें अध्यापक के लिए ध्यान देने के लिए आवश्यक हैं।

पाठ के बीच में अगर अध्यापक यह आवश्यक समझता है कि

विद्यार्थी अपनी कापियों पर पाठ की कुछ मुख्य-मुख्य बातें लिखते जायँ तो आवश्यकता इस बात की है कि अध्यापक थोड़ी-थोड़ी देर के बाद रुकता जाय ताकि विद्यार्थी को लिखने का अवसर मिलता रहे। श्यामपट पर भी अध्यापक वही बातें लिख सकता है जो वह बच्चों को लिखाना चाहता है ताकि बच्चे उनको सही-सही और नियम के साथ लिख सकें। खासकर छोटी कक्षाओं में श्यामपट से नकल करना बहुत जरूरी है। हाँ ऊँचे दर्जों में विद्यार्थी अपनी बुद्धि और स्मरणशक्ति पर अधिक भरोसा कर सकता है।

अध्यापक को इस बात पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि विद्यार्थी कापियों पर उतना ही लिखे जितना वह समझता है कि सरलता पूर्वक सही किया जा सकता है। अगर पूरी कक्षा ने इतना लिखितकार्य किया है कि अध्यापक अपने अवकाश के समय उसको मन लगाकर सही नहीं कर सकता तो इतना काम देना बेकार है। अध्यापक जो कुछ सही करे वह ठीक हो, टालने के रूप में न हो, वर्ना उसका उद्देश्य निरर्थक हो जायगा। अच्छा तो यह है कि अध्यापक सब विद्यार्थियों की कापी में ही हर प्रकार की गलतियाँ नोट करता रहे। और फिर उनको सामूहिक रूप से कक्षा के सामने बता करके स्वयं विद्यार्थी की सहायता से सही करे। इस तरह विद्यार्थी अपनी गलतियों को अच्छी तरह समझ जायेंगे और अध्यापक के सुधार से लाभ उठायेंगे।

परीक्षायें—बच्चे की शिक्षा के विषय में अध्यापक उचित ढंग से परीक्षाओं से भी जिसको अंग्रेजी में (Class tests) कहते हैं सहायता ले सकता है। यह परीक्षायें उन बड़ी परीक्षाओं से बहुत कुछ भिन्न होती हैं जो कि साल के बीच या अन्त में ली जाती हैं और जिनके लिए बड़ी-बड़ी तैयारियाँ करनी पड़ती हैं अर्थात् हमारा उद्देश्य उन परीक्षाओं से है जो हर महीने अध्यापक बच्चों की योग्यता अनुमानने, उनकी मानसिक शक्ति को गतिशील करने के लिए और उनका

ध्यान पाठ की ओर लगाने के काम में लाते हैं। उन परीक्षाओं में इन बातों का ध्यान रक्खा जाता है—१. बड़ी परीक्षाओं का भय दूर हो। २. जहाँ तक हो सके कम से कम हों। ३. पहिले से विद्यार्थी को सूचना न हो कि अमुक दिन परीक्षा होगी। ४. प्रश्न ऐसे हों जो अध्यापक की शिक्षा के प्रत्येक दृष्टिकोण पर आधारित हों। ५. कुछ प्रश्न करने या न करने में विद्यार्थी की रुचि पर न छोड़ दिये जाँय। अर्थात् उनमें चुनने को गुंजाइश कम से कम हो। अगर सूक्ष्म दृष्टि से प्रत्येक दृष्टिकोण को ध्यानपूर्वक देखा जाय तो ज्ञात होगा कि जब हम उन पठित परीक्षाओं को इस उद्देश्य की पूर्ती के लिए साधन बनाना चाहते हैं कि उनके द्वारा अध्यापक अपनी शिक्षा को अधिक से अधिक प्रभावशाली बना सके, तो आवश्यकता इन्हीं बातों की है कि जिनका ऊपर उल्लेख है।

समन्वय—पाठ के बीच में एक और विशेष बात पर ध्यान देना अध्यापक के लिए बहुत आवश्यक है। अध्यापक किसी विषय को और दूसरे विषयों से बिलकुल अलग न पढ़ाये बल्कि उसके लिए यह आवश्यक है कि वह एक विषय को दूसरे विषय के सिलसिले में पढ़ाये। अर्थात् वह अपने पाठ के बीच में से ऐसी-ऐसी बातें निकाले जिससे उस विषय का सम्बन्ध दूसरे विषयों से बना रहे। अंग्रेजी में इसको (Co-relation) कहते हैं। हम उसको विषय का समन्वय कह सकते हैं। शुरू में बच्चे का पूर्व ज्ञान एक दूसरे से सम्बन्ध रखने वाली बातों का एक भण्डार होता है। लेकिन वह जब बड़ा होता है और नियमपूर्वक शिक्षा प्राप्त करता है तो उसको ज्ञान की विभिन्न शाखायें एक दूसरे से अलग अलग दिखाई देने लगती हैं। अध्यापक को चाहिये कि वह ज्ञान की इन विभिन्न शाखाओं को एक दूसरे से सम्बन्धित करे। एक का दूसरे से सम्बन्ध प्रकट करके और बजाय हर विषय को बिलकुल अलग पढ़ाने के एक दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाये; जैसे इतिहास के पाठों में इतिहास से भूगोल का सम्बन्ध स्पष्ट है। बिना भौगोलिक

ज्ञान के इतिहास के पाठ बिलकुल निष्प्राण होकर रह जायेंगे। इसी प्रकार गणित और साइन्स के सम्बन्ध इतने घनिष्ट हैं कि उन पर कुछ और कहना बेकार है। लेकिन यह तो बिलकुल साफ़-साफ़ उदाहरण है। हमारी शिक्षा के तमाम विषय हमारे जीवन से सम्बन्धित हैं। इसलिए उनको एक दूसरे के साथ समन्वित हो जाना चाहिये। हमारी बुनियादी शिक्षा इसी एकता पर जोर देती है। बुनियादी शिक्षा एक केन्द्रीय दस्तकारी पर जोर अधिक देती है और सभी विषयों को उसके साथ मानो बाँध देती है अर्थात् शिक्षा पाठ्य विषय के सभी विषय एक दूसरे के सम्बन्ध से पढ़ाये जाते हैं और यही बुनियादी शिक्षा की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

शिक्षा के अन्य उपाय—अब हम इस अध्याय की समाप्ति पर पहुँच गये हैं, मगर समाप्ति से पहिले कुछ और उन "शिक्षा के प्रयत्नों" की चर्चा कर देना आवश्यक है जो शिक्षा देने के लिए लाभप्रद हैं। स्कूल की लाइब्रेरी और अजायबघर अध्यापक के पाठों के विषय में विशेष महत्त्व रखते हैं। इसके अतिरिक्त अगर सौभाग्य से स्कूल में एक रेडियो सेट भी हो तो उससे भी बहुत कुछ लाभ हो सकता है। हम उन शिक्षा प्रयत्नों का विस्तृत वर्णन नहीं करेंगे। होनहार अध्यापक स्वयं उनके लाभों पर विचार कर सकते हैं।

प्रश्न

१—बच्चों को अज्ञात बातों से परिचित कराने में प्रश्नों को कौन सा स्थान प्राप्त है? पाठ के बीच में थोड़ी-थोड़ी देर बाद प्रश्न क्यों आवश्यक होते हैं?

२—एक अच्छे वर्णन की क्या विशेषतायें होती हैं?

३—इतिहास के पाठ में नाट्यकला का क्या महत्त्व है?

४—पाठ के बीच में शक्ल की क्या महत्ता है? एक शक्ल चित्र से क्यों अधिक लाभप्रद होती है?

५—एक अध्यापक कौन-कौन से विभिन्न प्रश्न पूछ सकता है ? उदाहरणों द्वारा समझाइये ?

६—गलत उत्तरों पर विशेष रूप से अध्यापक को क्यों ध्यान देना चाहिये ?

७—निम्नलिखित प्रश्नों से जो उत्तर मिले वह प्रश्नों के आगे लिखे हुए हैं। संक्षेप में बताइये कि उनके उत्तरों को आप किस प्रकार ठीक करेंगे ?

प्रश्न—एक गज़ में कितने फुट होते हैं ?
उत्तर—छत्तीस।
प्रश्न—वर्षा कैसे होती है ?
उत्तर—क्योंकि बादल पानी बरसाते हैं।
प्रश्न—जब हम सांस लेते हैं तो हवा कहाँ जाती है ?
उत्तर—पेट में।
प्रश्न—शाम को सूरज डूब जाता है तो कहाँ चला जाता है ?
उत्तर—ज़मीन के नीचे।

८—शिक्षार्थियों को प्रश्न पूछने में उत्साहित करना क्यों आवश्यक है ? क्या उन प्रश्नों के उत्तर अध्यापक एकदम सीधे-सीधे दे दे ? कारण बताइये।

९—बच्चों से जो प्रश्न पूछे जाते हैं उनको बनाने में आप किन-किन बातों का ध्यान रक्खेंगे ?

१०—निम्नलिखित शिक्षा उपायों पर संक्षिप्त नोट सकारण लिखिये :—

(१) व्याख्या—
(२) श्यामपट का प्रयोग—
(३) पाठ समझाने में चित्रों का प्रयोग—
(४) विद्यार्थी के लिखित कार्य की जाँच—

११—शिक्षा के कार्यों में उदाहरण और वर्णन की क्या आवश्यकता है ?

१२—पाठ पढ़ाने में प्रश्नों की क्या महत्ता है ? उदाहरण देकर समझाइये कि अध्यापक को कक्षा में किस तरह के प्रश्न पूछने चाहिये । [नार्मल]

१३—स्कूल में पुस्तकालय का होना क्यों आवश्यक है ? पुस्तकालय का उचित प्रयोग किस तरह किया जा सकता है ? उदाहरण देकर समझाइये कि मिडिल स्कूल के पुस्तकालय में किस प्रकार की किताबें होनी चाहिये ? [नार्मल]

१४—समझाइये कि व्याख्या से पहिले वर्णन को क्यों रखना चाहिये ? आप किस स्थान पर व्याख्या को काम में लायेंगे ? [सी० टी०]

१५—उन शिक्षण उपायों और सामान को जिन्हें आप ने शिक्षा के सिलसिले में प्रयोग किया हो कुछ विस्तार के साथ वर्णन कीजिये और उनकी महत्ता का क्षेत्र वर्णन कीजिये । [सी० टी०]

१६—किसी दो पर संक्षिप्त नोट लिखिये ।

(१) शिक्षा शिक्षण में रेडियो ।

(२) पाठों में स्थानीय इतिहास की जगह ।

(३) विज्ञान में लेबारेट्री का काम । [सी० टी०]

१७—भूगोल की शिक्षा में यात्रा और सैर (Excursions) की महत्ता पर विवेचना कीजिये । [सी० टी०]

१८—शिक्षा-शिक्षण की महत्ता साफ-साफ मालूम कीजिये । अपने पाठ के बीच में आपने जो उपाय प्रयोग किये हों उनमें से कोई दो चुन कर के उनकी महत्ता का अनुमान कीजिये ।

१९—"एक अध्यापक का चतुरता और योग्यता का स्पष्टीकरण किसी हद तक इस बात से होता है कि वह उत्तरों से किस तरह पेश आते हैं" ऊपर लिखित बात पर विवेचना कीजिये और अपने प्रयोगों के आधार पर उदाहरण दीजिये।

२०—छोटे बच्चों के साथ भूगोल के कामों में (१) ऐक्टिंग (Acting), माडल बनाना (माडलिंग) को कौन सा स्थान प्राप्त है ? [एल० टी०]

२१—भूगोल के पढ़ने में आप निम्नलिखित का क्या प्रयोग करेंगे ?

(१) पोस्टर (बड़े-बड़े विज्ञापन),

(२) दैनिक समाचार पत्र,

(३) एकत्र किये हुए चित्र।

अध्याय ८

बच्चों की शिक्षा की नई रीतियाँ

(१) किंडरगार्टन

किंडरगार्टन क्या है ?—किंडरगार्टन केवल एक शिक्षा-प्रणाली है जो फ्रोबेल के मस्तिष्क की उपज है और जिसको ठीक-ठीक और सफल रीति से चलाने पर बच्चों की भावी भलाई और उन्नति का अवलम्ब है। यह एक नई शिक्षा-प्रणाली है; एक नई शिक्षा-पद्धति है; जिससे खेल-कूद के द्वारा शिक्षा हो सके और बच्चों का स्वतंत्र अनुकरण और क्रिया को काम में लाया जा सके; अर्थात् यह तरीक़ा केवल शिक्षा प्राप्ति में सहायक होता है।

किंडरगार्टन एक विशेष ढंग का स्कूल है या यों कहना चाहिये कि वह एक विशेष प्रकार का बच्चों का स्कूल है। मगर वास्तव में वह है बच्चों के स्कूल और पाठशाला के बीच की एक लड़ी जो दोनों के मुख्य-मुख्य भागों पर निर्भर होती है। बच्चों का प्राकृतिक सहवास उनका वह पलना है जहाँ उनकी खुशी और मनोरंजन के सामान, स्वतन्त्रता, सहानुभूति और प्रेम द्वारा जाग्रत होते हैं और बिना इन बातों के बच्चों का उन्नति पाकर पूर्ण व्यक्ति बनना एक कठिन समस्या है। अतएव उन्हीं गुणों और विशेषताओं का पाठशाला में मौजूद होना बहुत आवश्यक है ताकि सहज रूप में उसका विकास हो सके। बच्चा उसी समय शिक्षा ग्रहण कर सकता है जब कि उसकी पाठशाला उसका पलना भी हो और शिक्षागृह भी और घर भी और विश्वविद्यालय भी। किंडरगार्टन में घर और स्कूल के इसी सम्बन्ध को जोड़ने का प्रयत्न किया गया है।

किंडरगार्टन के लाभ—इस शिक्षा-प्रणाली के लाभ शिक्षा के

प्रत्येक दृष्टिकोण में निहित हैं। सबसे पहिले मानसिक लाभ लीजिये। किंडरगार्टन से बच्चे की प्राकृतिक प्रवृत्ति को विकसित होने का अवसर मिलता है। बच्चे में सोच-विचार करने और निरीक्षण की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इसके अलावा बच्चे इस नियम से शिक्षा प्राप्त करने में आनन्द का अनुभव करते हैं। किंडरगार्टन द्वारा शिक्षा देने से बच्चे को शारीरिक लाभ यह पहुँचता है कि खेलों के द्वारा उसको अपने हाथ-पाँव हिलाने का काफी अवसर मिलता है। बच्चा काम करने के लिए बेचैन रहता है। उसकी यह बेचैनी खेलों से पूरी होती है। उसके शरीर का प्रत्येक अंग अपना काम करता है और उन्नति करता है। इनके अतिरिक्त इस शिक्षण पद्धति के लाभ का आचारिक दृष्टिकोण भी है। खेल से बच्चा बहुत सी काम की बातें सीखता है; जैसे सफाई, क्रम, ढंग, सच्चाई, आज्ञापालन, काम से प्रेम इत्यादि विशेषतायें उसमें विकसित हो जाती हैं और बच्चा बुरे भले की पहिचान भी करने लगता है।

फ्रोबेल के उपहार—फ्रोबेल ने सात उपहार बनाये थे लेकिन उसके बाद उन उपहारों में काफी वृद्धि हो चुकी है, उनकी महत्ता से कोई इन्कार नहीं कर सकता है। इन उपहारों के बनाने में जो सिद्धान्त सामने रखकर बनाया गया है वह यह है कि बच्चा विभिन्न चीज़ों को हाथ में ले; उनको देखे भाले, उनसे खेले और सुन्दर शिक्षा प्राप्त करे। इन उपहारों में रबड़ की गेंदें, लकड़ी का बेलन, क्यूब (वर्गाकार) और आयताकार और दूसरी शकलों के ठोस टुकड़े होते हैं। इन सबका लाभ वही है जिसकी चर्चा की जा चुकी है अर्थात् खेलने से अपनी मानसिक शक्ति को विकसित करना और शिक्षा प्राप्त करना। इन उपहारों के अतिरिक्त अब किंडरगार्टन में और बहुत से खेल बच्चों को दिये जाते हैं। बच्चे कागज काटते हैं, ड्राइंग का काम करते हैं, सीते पिरोते हैं, कागज मोड़ते हैं, दफ़्ती का काम करते हैं और बहुत से कामों में लगे रहते हैं। इन सब कार्यों का सिद्धान्त केवल यही है कि बच्चे की

प्राकृतिक प्रवृत्ति को विकसित होने का अवसर देना और ऐसे कामों में लगाना जिनमें उसे दिलचस्पी हो।

(२) मैडम मान्टस्योरी की शिक्षा पद्धति

मैडम मान्टस्योरी को वर्तमान काल के शिक्षा-शास्त्रियों में एक उच्च स्थान प्राप्त है। वह इटली की रहने वाली थी। शुरू में उन्होंने डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त की और इस सिलसिले में बच्चों के स्वास्थ्य के विषय में विशेष रूप में ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद उन्होंने अपना ध्यान ऐसे बच्चों की ओर आकर्षित किया जिनमें कोई न कोई त्रुटि हो। धीरे धीरे वह बच्चों की शिक्षा की ओर आकृष्ट हुईं। उनका विश्वास है कि बच्चों को शिक्षा देने के लिए हम जितना भी हाल बच्चों के विषय में मालूम करें अच्छा है। उन्होंने मनोविज्ञान का भली प्रकार मनन किया और विशेष रूप से उस ज्ञान के उस भाग का गहरा निरीक्षण किया जो कि बच्चों की मनोवृत्ति के दृष्टिकोण से सम्बन्धित है। अन्त में उन्होंने संसार के सामने अपनी शिक्षा-प्रणाली रक्खी, जिसको असाधारण रूप से सफलता प्राप्त हुई।

इस प्रणाली के सिद्धान्त—मैडम मान्टस्योरी की शिक्षा-प्रणाली, किंडरगार्टन की शिक्षा-प्रणाली से मिलती-जुलती मालूम होती है और सत्य तो यह है कि दोनों का सिद्धान्त एक ही है "बच्चों को खेल द्वारा शिक्षा देना"। लेकिन यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो दोनों में एक विशेष अन्तर दिखाई देगा और सम्भवत: अन्तर यही है कि किंडरगार्टन को मान्टस्योरी वाले "बच्चों के घर" के मुकाबिले में पीछे डाल दिया है।

मान्टस्योरी की शिक्षा-प्रणाली बच्चों की पंच इन्द्रियों को विकास देने पर जोर डालती है। बच्चे की इन्द्रियों को इस तरीके से व्यवस्थित करने की आवश्यकता है कि बच्चा स्वतन्त्रतापूर्वक काम में लगा रहे और अपने मस्तिष्क और शरीर का विकास करे। डाक्टर

मान्टस्योरी का कहना है कि "हम इन्द्रियों को व्यवस्थित करने वाले कामों से बच्चे को इस योग्य बना सकते हैं कि वह चीजों में पहिचान कर सकें और उनको क्रम से रख सकें" अर्थात् छोटे छोटे मानसिक व्यायामों के द्वारा वह ऊँची मानसिक शक्तियों को काम में लाने का अवसर देती है। उनकी शिक्षा-प्रणाली की दूसरी विशेषता यह है कि वह बच्चे की कल्पना-शक्ति पर जोर देती है। बच्चे की प्रवृत्ति में यह बात पाई जाती है कि उसकी कल्पना उड़ान भरती रहे। मैडम मान्टस्योरी कहती हैं कि नवयुवक जो चीज देखता है बस देखता है लेकिन बच्चा चीज को देखकर उसका सही रूप नहीं समझता। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे के मस्तिष्क में चीज़ों का ग़लत रूप विकास पा लेता है। स्पष्ट है कि हम उसको किसी तरह भी उचित नहीं ठहरा सकते। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि बच्चे की कल्पना-शक्ति सही रूप में काम में लाई जाय। बच्चा असली चीज़ों को देखे, उनको हाथ में ले और अपने निरीक्षण से परिणाम निकाले।

मांटस्योरी के खेल—इन समस्याओं को सामने रखते हुए मैडम मान्टस्योरी ने अपने खेल आविष्कृत किये। उन खेलों के उद्देश्य बताये जा चुके हैं। उन खेलों में से कुछ लकड़ी के ठोस बेलन, ठोस आयताकार टुकड़े, वर्गाकार इत्यादि होते हैं जिनसे वह तरह-तरह की शक्लें बनाकर चीज़ों की छोटाई-बड़ाई और उनके आयतन इत्यादि की शिक्षा प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त अपनी इन्द्रियों को शिक्षित करते हैं और शारीरिक उन्नति करते हैं। हिसाब सीखने के लिए उनको एक खास खेल दिया जाता है, जिसमें दस छड़ियाँ होती हैं। सबसे लम्बी छड़ एक मीटर लम्बी होती है और सबसे छोटी एक डेसीमीटर। प्रत्येक छड़ पर एक एक डेसीमीटर की दूरी पर लाल या नीले रंग से चिन्ह बने होते हैं। जब सब छड़ें एक दूसरे के पास पास रक्खी जाती हैं तो उनके ऊपर के चिह्न एक दूसरे से मिल जाते

हैं, सब छड़ियों को मिला दिया जाता है और बच्चा उनको क्रमानुसार रखता है, इस तरह कि सबसे लम्बी छड़ के बाद उससे छोटी छड़ रक्खी जाय और उसके बाद उससे छोटी। उन छड़ों के साथ खेलने से बच्चा एक से दस तक गिनती सीखता है और उसके मस्तिष्क में यह बात बैठ जाती है कि एक चीज़ के दस भाग कैसे किये जा सकते हैं और यह कि उन दस भागों में से एक भाग का अर्थ क्या है अर्थात् वह दशमलव से परिचित हो जाता है।

दृश्य-शक्ति की व्यवस्था के लिए भी बहुत से खेल होते हैं, जैसे रेशमी फीते के बहुत से टुकड़े बच्चों को दे दिए जाते हैं; हर टुकड़े का रंग भिन्न होता है, यही नहीं बल्कि रंग भी हल्के या तेज होते हैं। बच्चे इन रंगों को देखते हैं और उनको किसी विशेष क्रम से चुनते हैं। और इस तरह से उनके मस्तिष्क में विभिन्न रंगों के सम्बन्ध में विचार हमेशा के लिए सुरक्षित हो जाते हैं।

इनके अतिरिक्त बच्चों को और बहुत से ऐसे खेल दिये जाते हैं कि जिनसे वह अपनी सहायता आप करना सीखें। बच्चे प्रायः कपड़े पहनने, बटन लगाने वगैरह के विषय में अपने से बड़ों के आश्रित हो जाते हैं। लेकिन डाक्टर मान्टस्योरी की शिक्षा प्रणाली में उनको यह सब बातें सिखाई जाती हैं। मान्टस्योरी की शिक्षा-प्रणाली के ध्येय का यह दावा है कि मान्टस्योरी बच्चे दूसरे बच्चों की अपेक्षा शीघ्र अपने कपड़े उतार सकते हैं और पहन सकते हैं।

किंडरगार्टन और मांटस्योरी शिक्षा-प्रणाली—बाह्य-दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि दोनों प्रणालियाँ एक-सी हैं या कि मान्टस्योरी ने फ्रीबेल की शिक्षा-प्रणाली में कुछ सुधार किये हैं और बस। यह किसी रूप में ठीक है, लेकिन बिलकुल सही नहीं। दोनों प्रणालियों के सिद्धान्त एक ही हैं लेकिन फिर भी दोनों में बड़ा अन्तर है। सबसे बड़ा अन्तर यह है कि किंडरगार्टन में बच्चों को स्वतन्त्रता नहीं। शिक्षक एक ही पाठ कुल कक्षा को पढ़ाता है। अगर बच्चों के हाथ में

कोई उपहार है तो शिक्षक सब बच्चों को एक ही सा निर्देश करेगा। जैसे बच्चों को पहिले उपहार स्वरूप गेंद देते हुए अध्यापक कहता है :—

छोटे बच्चो आओ बैठो,
गेंद को लेकर हाथ में देखो।
लाल नरंगी पीली पीली,
कुछ हैं हरी कुछ नीली नीली॥

इस तरह से एक के बाद एक गेंदें सब बच्चों के हाथ में जाती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बच्चे स्वतन्त्र रहते हैं। लेकिन फिर भी अध्यापक उनको निर्देश करता है और सब बच्चे सामूहिक रूप से काम करते हैं। दूसरे शब्दों में किंडरगार्टन से बच्चे अध्यापक के नियन्त्रण में रहते हैं। वह अपनी राय के बहुत कम मालिक होते हैं। उनका व्यक्तित्व बहुत कम काम करता है। अगर किंडरगार्टन के किसी पाठ में अध्यापक किसी आने वाले अतिथि से बात-चीत करने लगे तो पूरी कक्षा में खलबली मच जायगी। बच्चे शोर करने लगेंगे। इसका कारण यही है कि वह अध्यापक की सहायता के इच्छुक होते हैं। इसके प्रतिकूल मान्टस्योरी के बच्चे सही माने में स्वतन्त्र हैं। वह अपनी सम्मति के मालिक हैं। उनको आवश्यकीय निर्देशन दिया जाता है। मगर वह बहुत कम होता है। बच्चे स्वयं खेल उठाकर लाते हैं, स्वयं जो जी में आता है करते हैं और हर तरह से उनका व्यक्तित्व स्थिर रहता है। अगर मान्टस्योरी के दर्जे में कोई अध्यापक से आकर बात करने लगता है तो बच्चों में बेचैनी नहीं होने पाती और वह उसी तन्मयता और लगन के साथ काम में लगे रहते हैं।

मान्टस्योरी के खेलों में एक बात और है। यह खेल पंच-इन्द्रियों की शिक्षा के लिए फ्रौबेल के खेलों से अधिक सुन्दर हैं। फ्रौबेल के खेल उसके ध्यानावस्थित समदृष्टि की दशाओं से प्रभावित होते हैं। वह हर खेल में ईश्वर भक्ति को पाता है। सबसे पहिले बच्चों को हाथ

में गेंद दी जाती है क्योंकि गेंद केवल एक होती है। उसमें बहुत से कोने या रेखायें नहीं होतीं। इस तरह उसके दूसरे खेलों में तर्क और योगावस्था का बहुत कुछ प्रभाव है। इसके प्रत्येक खेलों में बच्चे की प्रवृत्ति, उसकी दिलचस्पी और उसकी शिक्षा को दृष्टि के सामने रक्खा गया है।

इसके अतिरिक्त मान्टस्योरी की शिक्षा-प्रणाली बचों को लिखना-पढ़ाना सिखाता है। उसके बच्चे स्कूल में पढ़ने लिखने और गणित सीखने आते हैं। इस संक्षेप से निबन्ध में हम मान्टस्यारी के नये खेलों की चर्चा नहीं कर सकते। कुछ शब्दों में यह बता देना कि मान्टस्योरी का पाठ्य-क्रम का सिद्धान्त क्या है दिलचस्पी से खाली न होगा।

मान्टस्योरी का शिक्षण पाठ्य विषय—उसके शिक्षण पाठ्य विषय में से पहिले भूमिति या अलजबरा (बीजगणित) की शक्लें होती हैं जो लकड़ी की बनी होती हैं इन शक्लों में हैंडिल (handle) लगा होता है ताकि उनको सरलता से उठाया जा सके। इसके अतिरिक्त लकड़ी के एक ठोस टुकड़े में इन्हीं शक्लों के अनुसार खाने बने होते हैं ताकि शक्लें इन खानों में ठीक आ सकें। बच्चा इन आकारों को खानों में ठीक से रखता है और आँखें बन्द करके अपनी उँगलियाँ आकृतियों के चारों ओर फेरता है और इस तरह बता देता है कि कौन सी आकृति उसके हाथ में है। इस रीति से न तो सिर्फ वह अपनी इन्द्रियों को शिक्षा देता है बल्कि वह अपनी उँगलियों को भी गतिशील करता है, ऐसी गति जो कि उसे लिखने में सहायता देती है।

इसी के आधार पर बच्चों को लिखना सिखाया जाता है। बच्चे को कागज पर बने हुए बड़े-बड़े अक्षर दिये जाते हैं और ऐसे चित्र भी दिये जाते हैं कि जिनके पहिले अक्षर वही हो जो बच्चे के हाथ में हों। बच्चे इन अक्षरों पर अपनी उँगली इस तरह फेरते हैं कि जिस तरह से लिखने में उनको गतिशील करनी पड़ती है। पहिले वह अंगूठे के पास वाली उँगली उस पर फेरते हैं, फिर उसके बाद उसके पास वाली

उँगली को सम्मिलित कर लेते हैं और दोनों को मिलाकर अक्षरों पर फेरते हैं; अन्त में उनके हाथों में कोई लकड़ी या कलम दे दी जाती है और अब उसको अक्षरों पर फेरते हैं और इस तरह लिखने का अभ्यास करते हैं।

इस सिलसिले में सबसे अधिक दिलचस्प बात यह है कि पहिले तो अपनी उँगलियों और अपने हाथों की चालों से लगातार अक्षरों का बनाना सीखते हैं और फिर वह कोई चीज देखते हैं और उस चीज का नाम लिखा देखते हैं तो उस चीज का नाम लिखा हुआ बच्चों के मस्तिष्क में सुरक्षित रहता है। बच्चा उस नाम को लिख न सके यह दूसरी बात है लेकिन जब उसे वह लिखा हुआ दिखता है तो तुरन्त समझ लेता है कि इससे क्या मतलब है। इसी के आधार पर मैडम मान्टस्सोरी एक जगह पर लिखती हैं :

"एक दिसम्बर के महीने में सूरज चमक रहा था और सुहावनी हवा चल रही थी। मैं बच्चों को लेकर छत पर चली गई। मेरे चारों ओर बच्चे स्वतन्त्रतापूर्वक खेल रहे थे। बहुत से बच्चे मेरे चारों तरफ़ इकट्ठा थे। मैं एक चिमनी के पास बैठी थी। अचानक मैंने एक पाँच वर्षीय बालक को एक टुकड़ा चाक का देकर कहा--"इस चिमनी का चित्र बनाओ" उसने मेरे हाथ से चाक का टुकड़ा ले लिया और एक आज्ञापालक बच्चे की भाँति पास पड़े हुए एक खपरैल के टुकड़े पर चिमनी की शकल खींच दी। मैंने अपने स्वभाव के अनुसार बच्चे की बहुत प्रशंसा की। बच्चे ने मेरी तरफ़ देखा, कुछ मुस्कराया और उसकी कण की कुछ ऐसी दशा हुई कि वह अब खुशी के मारे चीखे, और उसके बाद वह चिल्ला उठा—मुझे लिखना आ गया, मुझे लिखना आ गया; और फिर झुक कर उसने फर्श पर "हाथ" शब्द लिख दिया। उसके बाद उसने उन्मत्त की भाँति दूसरे शब्द भी लिखे। जैसे--चिमनी, छत; वह लिखता जाता था और चिल्लाता जाता था मुझे लिखना आ गया, मुझे लिखना आ गया। उसके शोर से दूसरे बच्चे भी उस स्थान पर

इकट्ठा हो गये और वह सब आश्चर्यान्वित होकर उसकी ओर देखते रहे। उनमें से दो तीन बच्चों ने उत्साह में भरकर काँपते हुए मुझसे कहा--"हमें भी चाक दो, हम भी लिख सकते हैं" और सत्य है कि उन्होंने भी विभिन्न शब्द लिखना शुरू कर दिये। जैसे--मामा, हातजान, पापा।

उन बच्चों में से किसी ने भी आज तक अपने हाथ में चाक या और कोई लिखने की चीज नहीं ली थी। यह पहला अवसर था कि उन्होंने कोई पूरा शब्द अपने हाथ से लिखा था। बिलकुल इसी तरह जिस तरह बच्चे बोलते हुए पूरा शब्द एकदम मुँह से निकालते हैं।

अब तो बच्चे खुशी से फूले न समाते थे। वह हर जगह लिखते फिरते थे। मैंने देखा कि बच्चे श्यामपट के पास खड़े हुए हैं और उस पर लिख रहे है। बच्चों के पीछे दूसरे बच्चे कुर्सी पर खड़े होकर अपने आगे वाले बच्चों के शिर से ऊपर लिख रहे थे। कुछ बच्चे दरवाजों के किवाड़ों पर लिखने की कोशिश कर रहे थे। मतलब यह कि उन दिनों हम लोग चारों तरफ़ कुछ न कुछ लिखा हुआ देखते थे। हमको मालूम हुआ कि घर पर भी बच्चे लिखने में तन्मय रहते हैं। कुछ माताओं ने तो यह किया कि चीजों को बच्चे के लिखने से बचाने के लिए अपने बच्चों को क़ाग़ज़ और पेन्सिल दे दिया।"

अन्त में मैडम मान्टस्योरी लिखती हैं "कोई व्यक्ति भी इस घटना की महत्ता से इन्कार नहीं कर सकता कि बच्चे को सिखाने के लिए और उसको शिक्षा देने के लिए यही प्राकृतिक रीति है।"

अपनी पुस्तक के इस अध्याय के अन्त में वह पाँच वर्ष के बच्चे के हाथ का लिखा हुआ नमूना देती हैं। और असल बात यह है कि हमारे यहाँ के स्कूलों के सात वर्ष के बच्चे भी उतना अच्छा नहीं लिख सकते।

गणित सिखाने के लिए मैडम मान्टस्योरी ने जो खेल बनाये उनका विस्तृत वर्णन यहां विस्तार बढ़ जाने के भय से नहीं दिया जा

सकता। संक्षेप में यह निवेदन है कि गिनती सिखाने के लिए उसने लकड़ी के फ्रेमों में तागे द्वारा गोलियाँ लगाईं। इस तरह इसके अतिरिक्त उसने और बहुत सी गोलियों के खेल बनाये जिससे बच्चे न केवल गिनती ही सरलतापूर्वक सीख सकें बल्कि पहाड़े भी बिना किसी कठिनता के सरलतापूर्वक याद कर सकें।

इसके अतिरिक्त व्याकरण जैसे शुष्क विषयों के सिखाने के लिए मैडम मान्टस्योरी ने अलग खेल आविष्कृत किये हैं। भूगोल और इतिहास की भी शिक्षा देने के लिए उसने प्रबन्ध किया। मतलब कोई भी विषय क्यों न हो, जिसकी शिक्षा बच्चे के लिए आवश्यक है, उसके विषय में उसने ऐसे खेल बनाये कि बच्चे उनका खेलें और सीखें।

(३) जान डेवी की शिक्षा-प्रणाली

जानडेवी--जानडेवी अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री आधुनिक काल के शिक्षा-शास्त्रियों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके हैं। वह अमेरिका की रियासत वारमाउन्ट के कस्बे बरलिंगटन में सन् १८५६ ई० में पैदा हुए थे। अपने प्रारम्भिक काल में वह अमरीका की तीन बड़ी यूनीवर्सिटियों के प्रोफेसर रहे। सन् १६०४ ई० में शिक्षा के डाक्टर थे उन्होंने शिकागो में एक नए ढंग पर प्रयोगी स्कूल स्थापित किया; उसमें उन्हें असाधारण सफलता प्राप्त हुई। दो साल तक वह पेकिंग (चीन) में तर्क-शास्त्र-विभाग की प्रोफेसरी के पद पर रहे। ईरान वालों ने भी उनको अपने शिक्षा-विभाग को नये सिरे से ढालने के लिये निमंत्रित किया। आज कल वह कोलम्बिया यूनीवर्सिटी की सेवा कर रहे हैं और संसार के बड़े-बड़े शिक्षा-शास्त्रियों में उनकी प्रतिष्ठा सबसे अधिक है।

शिक्षा संसार में उनकी सबसे बड़ी सेवा यह है कि उन्होंने न केवल वर्तमान शिक्षा पद्धति के विरोध में आवाज उठाई बल्कि उन्होंने संसार को दिखा दिया कि इस शिक्षा-पद्धति के अपनाने से बच्चे अच्छी

शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी शिक्षा जो उनको जीवन की कठिन परिस्थितियों में से गुजरने में अच्छी रीति से सहायता दे सके।

व्यवसायिक क्रान्ति--इसके पूर्व कि हम प्रोफेसर डेवी के शिक्षा-प्रणाली के दृष्टिकोण पर तर्क करें, अच्छा होगा कि हम उस सकल बेचैनी की चर्चा करते जो सभ्य देशों में "व्यवसायिक क्रान्ति" के बाद प्रकाश में आई। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में नई-नई मशीनों के आविष्कार से और विज्ञान की इस उत्तरोत्तर सफल क्रांति से संसार की नागरिक, सामाजिक, व्यवसायी जीवनों में जबरदस्त इंकलाब आ गया। मशीनों के आविष्कार से पहले छोटे-छोटे गाँवों में जनता अपने जीवन की आवश्यकतायें स्वयं अपने हाथों से से बनाती थी। कपड़े वाला कपड़ा बुनता था। उसका छोटा-सा करघा उसका साथी होता था, वह दिन भर काम करता था। उसके स्त्री-बच्चे उसकी सहायता करते थे और हँसी-खुशी जीवन के दिन व्यतीत करते थे। इसी तरह बर्तन बनाने वाला अपने घर पर बर्तन बनाता था, लोहार लोहे की चीजें ढालता था, स्त्रियाँ चक्की से आटा पीसती थीं। मतलब सब काम हाथ से होता था। दस्तकारी की उथल-पुथल के बाद स्वाभाविक रूप से हाथ से काम करना धीरे-धीरे कम होता गया। बड़े-बड़े कारखाने खुलने लगे जहाँ पल झपकते ही अच्छा काम कम खर्च में होने लगा। गाँव की आबादी खिंचकर शहर में आ गई। शहर के लोगों ने कुछ पढ़ा-लिखा और शोर मचाना शुरू कर दिया कि उनके अधिकारों को सुरक्षित किया जाय। जहाँ इन्होंने और बातों की भलाई चाही उनकी इच्छा यह भी थी कि उनके बच्चों की शिक्षा भी उचित ढंग से हो। वह चाहते थे कि बच्चों को ऐसी शिक्षा दी जाय कि जिसकी सहायता से वह संसार में कुछ काम कर सकें। किताब पढ़ा देने से और किताब की अच्छी-अच्छी बातें उनके मस्तिष्क में ठूंस देने से वह सन्तुष्ट न थे। वह दस्तकारी की शिक्षा

के इच्छुक थे और साथ ही साथ यह भी चाहते थे कि बच्चे वर्तमान शिक्षा के प्रकाश से भी लाभ उठायें।

डेवी और शिक्षा—योरुप की अपेक्षा अमेरिका में यह शोर अधिक था। डेवी से पहले, हाल, पारकर, थार्नडाइक इत्यादि ने बच्चों को उचित ढंग पर शिक्षा देने की समस्या पर बहुत सोच विचार किया था। डेवी ने भी इस समस्या को अपने हाथ में लिया। उसके विचारों के अनुसार प्रत्येक वर्ग के जीवन के लिए शिक्षा आवश्यक है। उसका विचार है कि शिक्षा में कुछ न कुछ आत्मीयता अवश्य होती है। जिस प्रकार एक परिवार के जीवन में कुछ बातें पीढ़ी दर पीढ़ी चली आती है जो केवल उसी परिवार के व्यक्तियों में विशेष रूप में पाई जाती हैं। उसी प्रकार शिक्षा का प्रभाव भी जातियों में पीढ़ी दर पीढ़ी पाया जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि इन शिक्षा के प्रभावों को सुन्दर ढंग से प्रयोग किया जाय। डेवी शिक्षा के दो तरीके मानते हैं। पहला अपने वातावरण के द्वारा शिक्षा प्राप्त करना, दूसरा किसी पाठशाला के द्वारा। वातावरण के द्वारा शिक्षा प्राप्त करने का यह अर्थ है कि बच्चा अपने आस-पास अपने बड़ों को काम करते देखता है और उनकी बातें सीख लेता है। इस रीति से शिक्षा प्राचीन समय में होती थी। प्राचीन समय में न स्कूल थे, न पढ़ने की जगह थी, न कालेज थे। राज्य बच्चों की शिक्षा का उत्तरदायी न था। बच्चे अपने बड़ों को काम करते देखते थे। उनके स्वभाव और चलन से परिचित होते थे। वह भी अधिकतर उन्हीं के पद चिन्हों पर चलते थे। वही काम करते थे। वैसी ही आदत डालते थे। आजकल भी वातावरण के द्वारा शिक्षा दी जाती है। बच्चे की प्रारम्भिक जीवन में शिक्षा वातावरण के द्वारा प्रयोग में आती है। स्कूल में प्रवेश होने से पहले बच्चा अपने घर पर बहुत सी बातें सीख लेता है और यह बातें वही होती हैं जो उसके घर पर घटित होती हैं।

बच्चे का वातावरण—वातावरण से शिक्षा प्राप्त करने का सब

से बड़ा लाभ यह है कि बच्चे की व्यवस्था सुचारु रूप से हो जाती है। बच्चा शुरू से ही घर के काम में लग जाता है, वह अपने माता-पिता को काम में सहायता देता है, अपने बाप-दादा के पेशे से छोटी आयु में ही परिचित हो जाता है और समझने लगता है कि जीवन क्या है। और जीवन की समस्याओं का सामना करने के लिए किन किन गुणों की आवश्यकता पड़ती है। मतलब यह कि अपना जीवन एक सफल रीति से व्यतीत करने के लिए वह शुरू से ही ऐसी शिक्षा ग्रहण करता है जो न केवल दस्तकारी होती है बल्कि जो उसकी गुत्थियों को हर सम्भव रीति से सुलझा देती है।

स्कूल—बच्चे को शिक्षा देने का दूसरा साधन स्कूल है। स्कूल से बच्चा बहुत सी बातें सीखता है। ऐसी बातें जो वह घर पर नहीं सीख सकता है। डेवी का विचार है कि स्कूल का उद्देश्य यह होना चाहिये कि वह बच्चे को उसकी घरेलू या वातावरण की शिक्षा के सम्बन्ध में और शिक्षा दे। बच्चा घर पर बहुत सी बातें सीख चुका है। उसके योग्य माता-पिता उसको बातों बातों में बहुत सी बातें बता चुके हैं। प्राय: विषयों पर वाद-विवाद हो चुका है। बच्चे ने प्राय बातों पर अपने विचारों को व्यक्त किया है और उसके माता-पिता ने समय समय पर उनको सुधारा है। इसके अतिरिक्त वह घर के कामों में भाग ले चुका है और इस तरीके से परिश्रम, साहस, संलग्नता, सन्तोष, इत्यादि गुणों से मंज चुका है; तात्पर्य यह कि घर पर वह काफी शिक्षा प्राप्त कर चुका है। अब आवश्यकता इस बात की है कि इस शिक्षा को घर के क्षेत्र से बाहर किस तरह प्रचलित रक्खा जा सकता है। यहाँ पर स्कूल की आवश्यकता आ पड़ती है। स्कूल में बच्चे की घर की शिक्षा को काम में लाने की आवश्यकता है। जो बातें बच्चे ने घर पर सीखी हैं उनको एक क्रम में और नियम के साथ व्यवस्थित करने के लिए स्कूल की शिक्षा आवश्यक है। इसके अतिरिक्त घर की शिक्षा घर की परिस्थिति पर ही अवलम्बित है और यह बच्चे की

उन्नति के लिए अपूर्ण है। स्कूल में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि बच्चा घर की शिक्षा के अतिरिक्त अपने जीवन को सफल बनाने के लिए अपने चारों ओर की दुनियाँ से भी ज्ञान प्राप्त करे।

आजकल का स्कूल—आजकल स्कूल के विषय में दृष्टिकोण ही दूसरा है। स्कूल में बच्चा जाता है और शिक्षा ग्रहण करता है। उसकी आयु का सुनहरी मौका स्कूल में व्यतीत हो जाता है। वह किताबें पढ़ता है, पाठ याद करता है; लेकिन उससे कुछ लाभ नहीं होता। स्कूल की शिक्षा में और वातावरण की शिक्षा में सम्बन्ध ही नहीं रहता। बच्चा अपने घर पर कुछ सीखता है, स्कूल में उसको दूसरी बातें पढ़ाई जाती हैं; इसका परिणाम यह होता है कि स्कूल और घर के बीच में एक बहुत बड़ी खाई पड़ी है। हमारे स्कूलों में बच्चों को एक ही समय में एक ही पाठ पढ़ाया जाता है। चाहे बच्चा उसमें दिलचस्पी ले या न ले। इस तरीके से बच्चे का व्यक्तित्व बहुत कम विकसित होता है। ऐसा मालूम होता है कि वह बिलकुल ठस चीज़ है और उसके चारों ओर स्कूल की समस्यायें बिछी हुई हैं।

डेवी का सिद्धान्त—डेवी साहब कहते हैं कि हमको अपना स्कूल बदल देना चाहिये। स्कूल में बच्चे की हैसियत सूरज जैसी होनी चाहिये, जिसके चारों ओर प्रयोगिक कार्य चक्कर लगाते हैं। स्कूल और घर में एक सम्बन्ध अवश्य होना चाहिये। जो बच्चा अपने चारों ओर देखता है वही वह स्कूल में देखे। इसलिए हमको चाहिये कि अपना पाठ्य-विषय इस तरह चुनें कि स्कूल की शिक्षा में और घर की शिक्षा में कोई भी अन्तर न रहे। बच्चा स्कूलों को अपने घर की तरह देखे। वहाँ उसको वही बातें दिखाई दें जो घर पर दिखाई देती हैं। अन्तर केवल इतना हो कि स्कूल की बातें एक नियम के साथ और प्रबन्ध के रूप में हों।

डेवी की शिक्षण प्रणाली के सिद्धान्त—इस सिद्धान्त को पूरा करने के लिए डेवी अपना पाठ्य विषय बताते हैं। उनके पाठ्य

के सिद्धान्त वही हैं जिनका वर्णन किया जा चुका है; अर्थात् १. बच्चों को ऐसे प्रयोगिक कार्यों के द्वारा शिक्षा देना जो वह अपने वातावरण में होते देखते हैं। २. यह प्रयोगिक शिक्षा बच्चों का इकट्ठा काम करने में प्राप्त करना। ३. पाठ्य विषय ऐसा निर्धारित करना कि वह बच्चे को भावी जीवन में सफलता पूर्वक अस्तित्त्व रखने में स्थिर सहायक हो।

डेवी का "काम काज"--डेवी साहब का विचार है कि बच्चों को प्रयोगिक शिक्षा दी जाय। इसलिए वह अपने "काम काज" (Occupations) को स्कूलों में प्रचलित करने की सम्मति देते हैं। आवश्यकता है कि काम-काज की व्याख्या की जाय। काम-काज से यह मतलब नहीं है कि बच्चे को कोई काम करने को दिया जाय कि दंगा फसाद करने के बजाय उसमें लगा रहे बल्कि उससे मतलब यह है कि बच्चा स्कूल में ऐसे काम करे जो वह अपने वातावरण में, स्कूल से बाहर होते देखता है। प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जब बच्चे को दस्तकारी की शिक्षा ही देनी है और वह भी ऐसी शिक्षा जो उसके सहवास से प्राप्त हो सकती है तो क्या आवश्यकता है कि उसको स्कूल ही में भरती किया जाय। किसी दस्तकारी पाठशाला या किसी अध्यापक को सौंप दिया जाय और वहाँ पर बच्चा काम सीखे। डेवी साहब कहते हैं कि उसके काम काज और व्यवसायिक पेशे में अन्तर है। व्यापार के पेशे में केवल व्यापारिक चीजों को बनाना होता है और बस। लेकिन उसके काम काज न केवल चीज़ें बनाना सिखाते हैं बल्कि उनका उद्देश्य विशेष प्रकार से यह होता है के वह मस्तिष्क की शिक्षा और काम करने की जिज्ञासा में एक सम्बन्ध स्थापित रक्खे। व्यसायिक पेशे में बुद्धि की बहुत :कम आवश्यकता पड़ती है, जो कुछ भी काम किया जाता है मशीन की तरह बिना सोचे समझे; लेकिन स्कूल के काम काज इस प्रकार किये जाते हैं कि हर पग-पग पर सोचा समझा जाता है। विचार और मनन किया

जाता है। बच्चा अपने ज्ञान भण्डार में वृद्धि करता रहे और पूर्व ज्ञान का प्रयोग भी करता रहे।

डेवी के काम काज का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण भी है। उसके सम्बन्ध में हम यह विवेचना करेंगे कि डेवी के विचार मनोविज्ञान के सम्बन्ध में क्या हैं। प्राचीन समय में यह सोचा जाता था कि बच्चा अपनी शक्तियों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है; लेकिन डेवी साहब कहते हैं कि नहीं। बच्चा स्वयं काम करने के बाद शिक्षा प्राप्त करता है। उन का विचार है कि बच्चे के मस्तिष्क पर उसके पास पड़ोस का प्रभाव अवश्य होता है। इस कलात्मक प्रभाव को विकसित करने के लिए आवश्यक है कि बच्चे के वातावरण से लाभ उठाया जाय। उससे ऐसे काम कराये जाँय जो वह वास्तव में संसार में होते देखता है।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। प्राचीन समय के अध्यापक बच्चे की शक्तियो को शिक्षित करने के लिए प्रकृति-निरूपण के सिलसिले में बड़ा प्रयत्न करते थे। प्रत्येक बात को ध्यान पूर्वक देखने के लिए हर समस्या पर सोच-विचार करने के लिए वह बच्चो का निरीक्षण कराते थे। घटनाओं का कारण बताते थे और परिणाम याद कराते थे; लेकिन स्पष्ट है कि इस तरीके से असली उद्देश्य मृत हो जाता था। सब शिक्षा केवल सिर का दर्द बनकर रह जाती थी — और वह बच्चे को उसके प्रयागिक जीवन में बिलकुल सहायता न देती थी, इसके प्रतिकूल डेवी साहब अपने काम काज के द्वारा बच्चो को अवसर देते हैं कि हर बात को स्वयँ देखें, स्वय उस पर विचार करें और स्वयं परिणाम निकालें। जहाँ कहीं आवश्यकता हो, अध्यापक की सहायता ले लें। इस तरह प्रयोगिक कार्य के साथ-साथ अपने मस्तिष्क की भी ट्रेनिंग करते हैं। इस प्रणालो से डेवी का पाठ्य विषय बिलकुल वर्तमान काल के मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार है।

उदाहरण के रूप में कल्पना कीजिये कि एक बच्चे को लकड़ी का एक छोटा सा बाक्स बनाना है। अगर वह बिना सोचे समझे

बढ़ई के मूर्ख लड़के की भांति काम शुरू कर देता है तो ऐसी दशा में वह शिक्षा से बिलकुल दूर रहता है; लेकिन जब वह प्रत्येक बात के लिए सोचता है और प्रत्येक विचार को प्रयोगिक स्वरूप देना चाहता है तो यथार्थ में वह शिक्षा प्राप्त करता है। सब से पहिले वह सन्दूक का खाका बनायेगा, उचित लकड़ी पसन्द करेगा। फिर लकड़ी पर रन्दा करेगा और दूसरे औजारों का प्रयोग करेगा और उनका प्रयोग सीख लेगा। इसके अतिरिक्त वह इसी सिलसिले में सैकड़ों बातों को स्वयं सोचेगा और करेगा। उसको कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और प्रयोग से, सोच विचार से उन पर अधिकार प्राप्त करना होगा कि इस तरह उसको अवसर मिले कि वह अपनी मानसिक शक्तियों को व्यवहार में लाये और उसी के साथ-साथ अपना काम करता रहे।

डेवी का स्कूल—पाठ्य विषय में अपने काम काज सम्मिलित करके डेवी ने स्कूल का रूप भी बिलकुल बदल दिया है। अब तक स्कूल से मतलब ऐसे साधन से था जो बच्चों को पुस्तकें पढ़ा सके। उन को शिक्षा दे सके। इस शिक्षा में और बच्चों के पास-पड़ोस के निरीक्षण और प्रयोग में बहुत कम सम्बन्ध था। डेवी आजकल के स्कूलों को एक खाके की सहायता से समझाते हैं। वह कहते हैं कि वर्तमान स्कूल भिन्न-भिन्न भागों में बँटा हुआ है और इन तमाम भागों में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। हाईस्कूल की शिक्षा तो किसी हद तक बच्चा एक ही सिलसिले में प्राप्त करता है, मगर इसके बाद तो कालेज में प्रवेश करता है या कोई दस्तकारी सीखता है या नार्मल स्कूल के लिए कोशिशें करता है। मतलब यह कि वह जो भी ज्ञान प्राप्त करता है उस ज्ञान में और अन्य ज्ञान में कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इसीलिए एक पाठशाला की शिक्षा दूसरी पाठशाला की शिक्षा से बिलकुल भिन्न होती है। एक जगह कुछ सिखाया जाता है और दूसरी जगह कुछ और एक दूसरे की शिक्षा में कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

डेवी साहब एक नये शिक्षण पाठ्य विषय की दागवेल डालते हैं जिसमें स्कूल का रूप बिलकुल परिवर्तित हो जाता है। उसका विस्तृत वर्णन करना यहाँ असम्भव है। संक्षेप में इतना बता देना आवश्यक है कि इस नये स्कूल में विभिन्न प्रकार की शिक्षा का एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है ताकि एक शिक्षा दूसरी से बिलकुल भिन्न न हो बल्कि सब शिक्षाओं में एकता और सहयोग हो।

(४) प्रोजेक्ट मेथेड (Project method)

यह शिक्षा-पद्धति पहले पहल अमेरिका में डाक्टर किल्पेट्रिक (Dr. Kilpatrich) ने सन् १९१८ ई० में आविष्कृत की थी। उस समय से लेकर अब तक उसमें बहुत से सुधार हो चुके हैं; लेकिन मुख्य-मुख्य सिद्धान्त वही हैं जो सब पहिले लिखे गये थे। डाक्टर किल्पेट्रिक ने 'प्रोजेक्ट' की परिभाषा इस प्रकार की थी—"एक ऐसा उद्देश्य से परिपूर्ण कार्य जो मन लगा कर किया जाय और जो समाजी वातावरण में होता है। इसका मतलब यह हुआ कि विद्यार्थी के वातावरण में कोई काम किया जाता हो और उस काम को वह स्वयं शिक्षा के ग्रहण के लिए किसी मुख्य उद्देश्य को दृष्टि के सामने रखते हुए करे तो इस शिक्षण-पद्धति को हम प्रोजेक्ट प्रणाली कह सकते हैं। डाक्टर किल्पेट्रिक के शब्दों द्वारा परिभाषा में शिक्षा-शास्त्रियों ने बहुत कुछ सुधार किये। अतएव अब 'प्रोजेक्ट' से अर्थ यह समझे जाते हैं कि एक ऐसा कार्य जिसमें कोई समस्या और उसको उसके प्राकृतिक वातावरण में पूरा किया जाय। इसका मतलब भी लगभग वही है जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है अर्थात् प्रतिदिन जीवन में कोई बात बच्चे के सामने रखना और बच्चे को मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों से उस समस्या को हल करने की ओर आकृष्ट करना। बल्कि एक ब्योरेवार कार्यक्रमावली बनाकर धीरे-धीरे पूरा हल

निकलवा लेना। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इस शिक्षण-पद्धति में विद्यार्थी ऐसे काम में अधिक से अधिक लगा रहे जिसमें कोई उद्देश्य निहित हो। यह काम बौद्धिक या मानसिक हो सकता है या यंत्रों को बनाने और बिगाड़ने का। यह भी हो सकता है कि वह शारीरिक व्यायाम की समस्या हो या कोई व्यवसायिक समस्या। मतलब कोई काम बच्चे को सौंप दिया जाता है जिसको कि वह एक निश्चित समय के अन्दर समाप्त करता है। चाहे वह समय एक दिन का हो या एक हफ़्ते या एक माह या एक वर्ष का। इस निर्धारित समय के अन्दर-अन्दर इसी समस्या को इस तरह पूरा किया जाता है कि उसके सम्बन्ध में सब शिक्षण पाठ्य विषय की शिक्षा पूरी हो जाती है।

"प्रत्येक अध्यापक ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में शिक्षा काल में चार पड़ाव देखे हैं। जब उसको कोई पाठ पढ़ाना होता है जो कोई विशेष उद्देश्य के लिए होता है तो वह कम या अधिक विस्तार के साथ खाका तैयार करता है। इस खाके के अनुसार कार्य करता है और फिर परिणाम को परखता है या जाँचता है। प्रोजेक्ट पद्धति के द्वारा शिक्षा की विशेषता यह है कि वजाय इसके स्वयँ अध्यापक अकेले इन चारों मंजिलों को तै करे। पाठ की इन चारों मंजिलों में विद्यार्थियों का उत्तरदायित्त्व रहता है।"*

इस शिक्षा पद्धति में बच्चे अध्यापक या अध्यापकों की सहायता से अपने 'कार्य' का एक 'प्रोजेक्ट' बाँध लेते हैं या खाका तैयार कर लेते हैं। और इस तरह कोशिशों के साथ शिक्षा प्राप्त करने में लग जाते हैं। इसके जो लाभ हैं वह स्पष्ट हैं। एक ओर शिक्षार्थियों को अपने स्कूल के काम को सोचने और उसकी कार्य्यक्रमावली बनाने, उसके अनुसार काम करने और फिर परिणाम पर विचार करने का

**Macnee* : Instructions in Indian Secondary Schools. Pp. 51—52.

स्थायी रूप से भाग मिलता है और दूसरी ओर विभिन्न विषयों के बीच जो खाई है उसको पूरा करने का अवसर मिलता है। इसके अतिरिक्त लड़के मिलकर एक ही समस्या को हल करने या पूरा करने के लिए अपनी कोशिशें लगाते हैं। स्कूल के और घर के जीवन के बीच में जो दीवार आ गई है वह भी इस शिक्षा पद्धति द्वारा टूट जाती है। बच्चे पुस्तकीय ज्ञान को बिना सोचे-समझे रहने से बच जाते हैं। वह समझते हैं कि जो कुछ वह सीख रहे हैं उसका सम्बन्ध स्वयं उनकी और कौटुम्बिक के व्यक्तित्व से है। मतलब केवल उनकी प्राकृतिक प्रवृत्ति ही विकसित नहीं होती बल्कि वह दिलचस्पी के साथ शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं।

प्रोजेक्ट प्रणाली के विरोध और समर्थन में बहुत कुछ कहा जा सकता है। जैसे इस शिक्षा प्रणाली में उलझन यह हो सकती है कि बच्चों का ज्ञान अधूरा रह जाय; उन को कुछ आवश्यक प्रश्नावली करने के अवसर न मिलें। यह भी हो सकता है कि बच्चे बहुत सी अनावश्यक या शिक्षा से असम्बन्धित कार्य करने लगें या यह कि जो कुछ वह सीखें वह अधूरा, अनमेल, बेजोड़ या बेतुकी ज्ञान की शक्ल में उनके पल्ले पड़े। मतलब यह कि अध्यापक का अवधान न होने और लापरवाही की वजह से शिक्षा-प्रणाली में ऐसी सम्भावनायें हैं कि विद्यार्थी सीधी राह से भटक जाय और उसकी शिक्षा खराब हो जाय। फिर भी यह प्रणाली बहुत अच्छी मानी जाती है क्योंकि इसमें काम से सीखने के सिद्धान्त के अनुसार शिक्षा दी जाती है।

(५) डाल्टन प्लान (डाल्टन की प्रणाली)

यह शिक्षा प्रणाली भी अमेरिका में आविष्कृत हुई थी। इसका बुनियादी सिद्धान्त यह है कि शिक्षार्थी को अधिक से अधिक अवसर इस बात का दिया जाय कि वह स्वयं व्यक्तिगत रूप से काम करे। वह अपने उत्तरदायित्व को समझे, और ध्यानपूर्वक अन्य मानसिक शक्तियों को

काम में लाये और अध्यापक की सहायता से दिये हुए शिक्षा विषय के कार्यों को पूरा करे। अध्यापक प्रत्येक विषय को छोटे छोटे भागों में विभक्त कर देता है। प्रत्येक भाग को इकाई (unit) कहते हैं। इस एक इकाई काम को एक निश्चित समय के अन्दर समाप्त करना होता है। यह समय दिन या एक हफ्ता या एक माह हो सकता है। इस समय के अन्दर-अन्दर विद्यार्थी को वह काम समाप्त करना होता है। उसको अधिकार होता है कि वह किसी विषय को जितना जी चाहे समय दे मगर शर्त यह है कि वह सब विषयों को निश्चित समय के अन्दर-अन्दर समाप्त कर दे। ज्योंही वह अपना काम समाप्त कर देता है वह और दूसरे विद्यार्थियों का ख्याल किये बिना आगे बढ़ जाता है। अध्यापक हफ्ते में एक बार अपने विद्यार्थियों को इकट्ठा करता है और अपने विषय में उनकी कठिनाईयो पर वादविवाद करता है और स्वयं उनकी सहायता से उनको दूर करता है। प्रत्येक विषय के लिए एक निर्धारित कमरा होता है जिसमें आवश्यकीय पुस्तकें और दूसरी चीज़ें भी होती हैं; यहाँ विद्यार्थी अपना काम करते हैं। अध्यापक उनका निरीक्षण करता है और उन विद्यार्थियो की कठिनाई को दूर करता है जो उसके पास सहायता के लिए आते हैं।

यह शिक्षा प्रणाली बच्चे के व्यक्तित्व को उन्नत करती है। बच्चे को काम सौंप दिया जाता है तो वह उसमें दिलचस्पी लेता है और अपना उत्तरदायित्व अनुभव करता है। यदि एक बच्चा किसी विषय में कमज़ोर है तो वह केवल तेज बच्चों की वजह से पीछे नहीं रह जाता बल्कि उसको अपनी कमजोरी दूर करने का अवसर मिलता है। इसी प्रकार तेज बच्चे कमजोर बच्चों की वजह से आगे बढ़ने से रुके नहीं रह जाते; वह आगे बढ़ते जाते है। इस प्रकार हर एक बच्चे को व्यक्तिगत रूप से अपनी अपनी आवश्यकता के अनुसार काम करने और शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिल जाता है। और चूंकि हर

विषय के लिए अलग-अलग शिक्षक होते हैं, इसलिए शिक्षा बहुत अधिक प्रभावशाली हो जाती है।

लेकिन इस शिक्षा प्रणाली की बुराइयों को दृष्टि के सामने रखना अध्यापक के लिए अनिवार्य है। एक खराबी तो यह है कि अनुशासन के खराब होने का भय रहता है। दूसरे यह कि विद्यार्थी एक विषय पर समयानुकूल तो अधिकार पा लेता है लेकिन फिर अभ्यास की कमी की वजह से शीघ्र भूल जाता है। इसके अलावा बच्चे के व्यवसायिक जीवन पर भी उसका काफी प्रभाव पड़ता है और उसको अपने विचार के विकास का अवसर नहीं मिलता। इन सब खराबियों के होते हुए शिक्षा-प्रणाली को उचित ढंग से काम में लाया जाय तो परिणाम अच्छा हो सकता है; अतएव भारतवर्ष के बहुत से स्कूलों में इसी शिक्षा प्रणाली के अनुसार शिक्षा दी जाती हैं। प्राय: अवसरों पर सामूहिक शिक्षा के साथ-साथ डाल्टन प्लान अपनाया गया है और बहुत अच्छी सफलता प्राप्त की गई है।

(६) वर्धा स्कीम

वर्धा स्कीम—भारतवर्ष की शिक्षा राष्ट्रीय कॉंग्रेस की शिक्षा सम्बन्धी प्रयत्न का परिणाम है जो महात्मा गाँधी के नेतृत्त्व और डाक्टर जाकिर हुसेन की संरक्षता में सन् १९३७ ई० में चुनी गई थी। भारतवर्ष में अङ्गरेजी शिक्षा के विरुद्ध सर्व साधारण में बेचैनी फैली हुई थी। आवश्यकता इस बात की थी कि शिक्षा का एक ऐसा प्रबन्ध देश के सामने रक्खा जाय जो राष्ट्रीय शिक्षा कही जा सके और जिसके दृष्टि-कोण के द्वारा एक मुख्य आयु तक के बच्चों को सरकार अनिवार्य रूप से शिक्षा दे सके और शिक्षा-प्रवन्ध की इमारत मनोविज्ञान की बुनियादों पर निर्धारित हो और देश की अर्थशास्त्र और सामाजिक दशा के अनुसार हो। अतएव डाक्टर जाकिर हुसेन कमेटी की रिपोर्ट व्यवहार में आई जो वर्धा स्कीम के नाम से प्रसिद्ध हुई।

वर्धा स्कीम के बुनियादी सिद्धान्त—वर्धा स्कीम के मुख्य-मुख्य सिद्धान्त यह हैं—१. बच्चों को एक ऐसी शिक्षा दी जाय जो यथार्थ में राष्ट्रीय शिक्षा कही जा सके।

२. सात वर्ष तक बच्चे को अनिवार्य रूप से मुफ्त शिक्षा दी जाय।

३. सात वर्ष के कोर्स में कोई मुख्य दस्तकारी बच्चे को सिखाई जाय और सब विषय इसी एक दस्तकारी के सिलसिले में पढ़ाये जायँ।

४—स्कूलों को अपना खर्चा स्वयं उठाना चाहिये और वह इस प्रकार कि जो सामान दस्तकारी स्कूल में तैयार हो उसको सरकार स्वयं खरीदे, उसकी बिक्री का प्रबन्ध करे और उसकी आयसे स्कूल का खर्च पूरा किया जाय।

५—शिक्षा मातृभाषा में दी जाय।

वर्धास्कीम की विशेषता यह है कि उसमें शिक्षा एक केन्द्रित दस्तकारी के द्वारा दी जाती है और इस दस्तकारी के सिलसिले में सब विषय, इतिहास, भूगोल, गणित, साइन्स, खेतीबारी, कताई-बुनाई इत्यादि पढ़ाये जाते हैं। यह दस्तकारी इस सहवास के अनुसार स्कूलों में प्रचलित की जाती है। अगर किसी ज़िले में गुड़ बनता है तो दस्तकारी में गुड़ बनाना होगा। अगर कहीं बढ़ई गीरी का काम होता है तो दस्तकारी में लकड़ी का काम सम्मिलित होगा। इत्यादि इत्यादि। तात्पर्य बच्चे के वातावरण में जो काम होता है वही स्कूल में प्रचलित किया जायगा और उसी के सिलसिले में सब विषयों की शिक्षा होगी।

यहाँ तक बिलकुल ठीक है। दस्तकारी के द्वारा शिक्षा की महत्ता से कोई इन्कार नहीं कर सकता और यह कोई नया सिद्धान्त भी नहीं है। पाश्चात्य देशों के शिक्षा शास्त्रियों ने इस शिक्षा प्रणाली पर बहुत कुछ लिखा और प्रयोग किये हैं। इसके अतिरिक्त एक चीज़ यह कि शिक्षा जो मातृभाषा के द्वारा हो और एक निर्धारित आयु

के बच्चों को मुफ्त दी जाय यह भी भारतवर्ष ऐसे निर्धन और अनपढ़ देश के लिए बहुत ज़रूरी है, लेकिन वर्धा स्कीम में जो बातें आलोचना की हैं वह यह हैं कि १. दस्तकारी की शिक्षा पर बहुत जोर दिया गया है।, यहाँतक कि ५½ घण्टे प्रतिदिन की शिक्षा में ३½ घण्टे केवल केन्द्रितकला (दस्तकारी) को दिये गये हैं। इस तरह सन्देह है कि कहीं वह शिक्षा केवल दस्तकारी की शिक्षा ही होकर न रह जाय और जो आशायें इससे सम्बन्धित हैं वह समाप्त न हो जायँ। २. इस शिक्षा प्रबन्ध के अधीन शिक्षा के व्यय दस्तकारी की चीज़ों की बिक्री से सहन किये जाने पर जोर दिया गया है। यह भी अप्रयोगिक सूझ है। बच्चों की बनाई हुई चीज़ों को सरलता पूर्वक बाजार में बेचना सरल काम नहीं है। फिर भी यदि यह शुरू शुरू में सरलता पूर्वक बिक भी जायँ तो इसका क्या प्रमाण कि वह सदैव सरलता के साथ बिक जायँगी। इस तरह स्कूल के व्यय कहाँ से आयेगा और स्कीम क्यों कर सफल हो सकेगी। वर्धा स्कीम पर दो आलोचनायें और ध्यान देने योग्य हैं। वर्धा स्कीम वास्तव में देहाती शिक्षा के लिए चुनी गई है। देहाती स्कूलों में इस स्कीम के अनुसार शिक्षा दी जाय तो इस शिक्षा को साधारण हाईस्कूल की शिक्षा से किस तरह मिलाया जाय अर्थात् वर्धास्कीम के अनुसार स्कूल और अङ्गरेजी हाई स्कूलों के बीच जो खाई है उसको किस तरह पूरा करें। यह अवश्य है कि गाँव के बच्चे साधारण रूप से ऊँची शिक्षा की ओर आकृष्ट न होंगे। मगर फिर भी कुछ विद्यार्थी ऐसे अवश्य होंगे जो उच्च शिक्षा की ओर अपनी प्रवृत्ति और योग्यता को प्रदर्शित करेंगे। और उनको शिक्षा प्राप्त करने के लिए शहर के स्कूलों में जाना पड़ेगा। ऐसी अवस्था में "देहाती स्कूल" और शहरी स्कूल में किस प्रकार एकता उत्पन्न की जायगी।

४. दूसरी आलोचना यह है कि वर्धास्कीम धार्मिक शिक्षा पर जोर नहीं देती बल्कि वह ऐसे विचारों की ओर जोर देती है जिनसे तमाम

धर्मों की श्रद्धा उत्पन्न हो और बच्चों में मेल-जोल आदि सहानुभूति वाह्य मतभेद इत्यादि गुण उत्पन्न हों। यह सब अच्छी बातें हैं। लेकिन भारतवर्ष में माता-पिता को अपने धन्धों से इतना अवकाश नहीं मिलता है कि वह बच्चों को धार्मिक शिक्षा दे सकें। ऐसी अवस्था में यदि यहशिक्षा स्कूल में न प्राप्त करेंगे तो फिर कहाँ पायेंगे। इन आलोचनाओं के होते हुए भी वर्धा स्कीम अपने समय की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रणाली मानी गई है। भूतकालिक कुछ वर्षों के अन्दर देश के बहुत से प्रान्तों में इस स्कीम को आजमाया गया और उसके अनुसार बहुत से स्कूल स्थापित हुए जो वर्धास्कीम के अनुसार थे। इन स्कूलों में धार्मिक शिक्षा पर भी एक हद तक ज़ोर दिया गया था। मध्य प्रान्त, बम्बई, मद्रास, विहार इत्यादि में भी वर्धास्कीम के अनुसार नये नये स्कूल स्थापित किये गये। लेकिन जो वैभवशाली सफलता हमारे प्रान्त में इस नयी शिक्षा को प्राप्त हुई वह कहीं और प्राप्त नहीं हुई। और इसका कारण भी है। यू० पी में वर्धास्कीम की अन्धाधुन्धी पैरवी नहीं की गई बल्कि उसको अपनां लिया गया। अर्थात् इस स्कीम में उचित सुधार किये गये ? और प्रयोगिक कार्य और निरीक्षण से महत्त्वपूर्ण परिणाम निकाले गये। उनके लिहाज़ से शिक्षा पाठ्य विषय में, शिक्षा प्रणाली में, स्कूल के वातावरण में, अध्यापकों के सुधारने में और अन्य बातों में जबरदस्त परिवर्तन किये गये। ऐसे परिवर्तन जो प्रत्येक दृष्टिकोण से बच्चे की प्रवृत्ति, समाज की आवश्यकता और शिक्षा के महत्त्व के अनुसार थी। इसका अनिवार्य रूप से परिणाम यह हुआ कि हर तरह से वर्धास्कीम को सामने रखकर हमारे यहाँ शिक्षा प्रबन्ध में परिवर्तन किया गया था। मगर सात आठ वर्ष के अन्दर अन्दर लगातार अनुभवों से हम एक ऐसा शिक्षा प्रबन्ध निर्धारित करने में सफल हो गये हैं जो वर्धास्कीम से बिलकुल विभिन्न है। और जो सरलतापूर्वक एक बिलकुल ही नई शिक्षा के नाम से पुकारी जाती है। इसी शिक्षा को हम "बेसिक एजूकेशन" या बुनियादी शिक्षा कहते हैं जो खानबहादुर डाक्टर इबादुलरह-

मानखाँ प्रिंसिपल गवर्नमेन्ट ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद की संरक्षता में प्रचलित है। इस शिक्षा प्रबन्ध पर संक्षिप्त सी विवेचना हम किसी अगले अध्याय में करेंगे

प्रश्न

१—मान्टस्योरी की शिक्षा प्रणाली की विशेषताएँ वर्णन कीजिये।

२—किंडरगार्टन क्या है? यह शिक्षा प्रणाली किस आयु के बच्चों के लिए उचित है और क्यों?

३—'किन्डरगार्टन में अधिकतर खेल कूद होता है।' इस बात की विवेचना कीजिये?

४—मान्टस्योरी शिक्षा पद्धति में और किंडरगार्टन शिक्षा पद्धति के सिद्धान्तों में क्या अन्तर है?

५—डेवी की शिक्षा प्रणाली की क्या विशेषताएँ हैं?

६—डाल्टन प्लान किसे कहते हैं? आप उसे अपने स्कूल में किस हद तक प्रचलित कर सकते हैं?

७—प्रोजेक्ट मेथेड से आप क्या मतलब समझते हैं? इस शिक्षा प्रणाली में और डाल्टन प्लान में क्या अन्तर है?

८—वर्धास्कीम शिक्षा की विशेषतायें वर्णन कीजिये। इसको राष्ट्रीय शिक्षा क्यों कहा जाता है? इस पर जो आलोचनायें की गई हैं उन पर विवेचना कीजिये?

९—संक्षेप में नोट लिखिये :—

अ—बुनियादी शिक्षा

ब—मान्टस्योरी की शिक्षा प्रणाली। [सी. टी.]

१० "स्कूल को एक प्रयोगिक शाला लेबोरेट्री का रूप धारण करना चाहिये जिसमें एक दूसरे के साथ रहने के सिलसिले में जो सामाजिक समस्यायें पैदा होती हों उनपर प्रयोग

किये जाँय।" इस बात को प्रयोगिक रूप में काम में लाने के लिए डेवी की स्कीम समझाइये। [एल. टी.]

११—संक्षेप में डाल्टन प्लान के सिद्धान्तों को समझाइये। कैसे और किन विषयों में उनको अपने स्कूलों में काम में ला सकते हैं ? [एल. टी.]

१२—प्रोजेक्टमेथेड के सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप से समझाइये और अंग्रेज़ी स्कूलों में इसके प्रयोगिक रूप में आने के सन्देह पर ध्यान दीजिये।

१३—शिक्षा के विषय में डेवी के विचार क्या हैं ? उनकी बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों से तुलना और समालोचना कीजिये। [एल. टी.]

१४—(१) डेवी के विचारों के अनुसार स्कूलों के काम काज का मनोविज्ञान क्या है ?

(२) डेवी के विचार बच्चों के स्कूल के सम्बन्ध के विषय में क्या हैं ? [एल. टी.]

१५—प्रोजेक्ट मेथेड से आप क्या समझते हैं ? विस्तार से समझाइये। [एल. टी.]

अध्याय ६

शिक्षा की अन्य उपयोगी वस्तुएँ

बहुत से बच्चों को एक साथ पढ़ाने के सिलसिले में अध्यापक शिक्षा प्रणाली और शिक्षा प्रयत्न के अतिरिक्त एक और महत्त्वपूर्ण समस्या की ओर आकर्षित करना भी हमारे लिए आवश्यक है जिस को हम शिक्षा की अन्य उपयोगी वस्तुएँ कह सकते हैं। इस सम्बन्ध में स्कूल, कमरे, खेल के मैदान; कमरों के डेस्क और कुर्सियां इत्यादि चीज़ें आती हैं। इनका प्रभाव जो शिक्षा पर पड़ता है वह स्पष्ट है। बच्चों को भली प्रकार शिक्षा देने के लिए आवश्यक है कि स्कूल की इमारत स्वास्थ के सिद्धान्तों पर बनी हो। कमरे ऐसे हों कि शिक्षा पानेवाले बच्चों की निश्चित संख्या के लिए काफी बड़े हों। वह प्रकाश युक्त और वायु के आने जाने के साधनों से युक्त हों। उनमें नमी न हो और प्रत्येक ऋतु में सुख पहुँचायें। इसी तरह कमरों में बच्चों के बैठने और किताबें और कापियाँ इत्यादि रखने और पढ़ने लिखने का सामान (फरनीचर) भी आवश्यकता के अनुसार सुखकारी हो। इस अध्याय में हम इन समस्याओं पर ही संक्षिप्त विवेचना करेंगे।

स्कूल -- स्कूल की इमारत ऐसी जगह बनी होनी चाहिए जहाँ अधिकतर शोर गुल न हो ताकि बच्चों की पढ़ाई में हर्ज न हो। जो स्थान स्कूल के लिए पसन्द किया जाय वह उस आबादी से जिनके लिए वह स्कूल बना है न बहुत दूर हो न बिलकुल पास। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि आस पास से आने वाले सब बच्चों के लिए स्कूल बराबर दूरी पर पड़े। स्कूल की जगह साफ जगह पर होनी चाहिये। आस पास कूड़ा कर्कट, दलदली जमीन, गन्दा नाला वग़ैरह

न हों नहीं तो स्कूल की हवा ख़राब रहेगी। मच्छर, खटमल पिस्सू और तरह तरह के कीड़े उत्पन्न होते रहेंगे और बीमारियाँ फैलाते रहेंगे। स्कूल को किसी खुली जगह में होना चाहिये जहाँ साफ़ हवा मिलती रहे, आस पास की ज़मीन सूखी हो तो बहुत अच्छा है। अगर यह सम्भव हो तो ऐसे उपाय सोचना चाहिये कि दीवारों पर और फर्श पर सील या नमी न आने पाये।

स्कूल की इमारत की समस्या बड़ी महत्त्वपूर्ण समस्या है। हमारे प्रान्त में बहुत से ऐसे स्कूल हैं जो ज़बरदस्ती बनाये गये हैं। अर्थात् वह थे बंगले या मकान मगर उनको स्कूल के लिए खरीद लिया गया और बड़े-बड़े कमरों के बीच में सामयिक दीवारें खड़ी कर कर के या बीच में पर्दे डाल-डाल करके उन्हें छोटे-छोटे कमरों में परिवर्तित कर लिया गया और इस तरह स्कूल की आवश्यकता पूरी की गई। ऐसा प्रबन्ध कुछ दिनों के लिये अर्थात् जब तक स्कूल की इमारत न बन जाय ठीक हो सकता है मगर उसको स्थायी रूप से जारी रखना एक बहुत बड़ी गलती है।

इसी प्रकार स्कूल की इमारत इस तरह पर बनवाना कि बीच में बड़ा कमरा (हाल) हो और उसके चारों ओर छोटे-छोटे कमरे हों जिनके दरवाज़े हाल में खुलते हों अच्छा नहीं समझा जाता। इसका कारण यह है कि प्रथम तो स्वच्छ वायु के आवागमन में रुकावट पैदा हो जाती है और दूसरे उसको उपयोग में लाया जाय तो उसकी आवाज़ सब कमरों में पहुँचती है। और वैसे भी हाल कमरे की वजह से सब कमरों की आवाज़ें एक दूसरे में जाती हैं और पढ़ाने लिखाने में हर्ज होता है।

स्कूल की इमारत बनवाने से पहिले यह देख लेना चाहिये कि स्कूल की आवश्यकता क्या है। अर्थात् उसमें कितने छोटे कमरों की आवश्यकता है और कितने बड़े-बड़े कमरों की। फिर इमारत के नकशे में इन सब कमरों को नियमानुसार क्रमबद्ध किया जाय कि पूरी इमारत

बनजाय । प्रत्येक कमरा स्वयं अलग थलग हो । फिर भी पूरी इमारत का एक अंग हो । अंग्रेजी स्कूलों में प्रायः एक लड़के को १० वर्ग फ़ीट से ले कर १५ वर्ग फ़ीट तक जगह दी जाती है । इस प्रकार यदि कक्षा में ३० लड़कों का प्रबन्ध है और प्रत्येक लड़के को कम से कम जगह दी जाय तो ३०० वर्ग फ़ीट की आवश्यकता है । इस तरह २५ फ़ीट लम्बा और १८ फ़ीट चौड़ा कमरा ३० लड़कों की कक्षा के लिए काफ़ी हो सकता है । अगर हाल कमरे की आवश्यकता है तो उसको सब कमरों से अलग बनाया जा सकता है ।

नये स्कूल—नई शिक्षा या बुनियादी शिक्षा के साथ-साथ स्कूल के रूप में भी परिवर्तन हो गया है । हमें देहातों में मूल्यवान वैभवपूर्ण इमारतों की आवश्यकता नहीं है जहाँ तमाम रुपया ख़र्च किया गया हो; बल्कि हमें ऐसे स्कूलों की आवश्यकता है जो गाँवों की शिक्षा के लिहाज से अच्छे और साफ स्वास्थ्यप्रद स्थानों पर बनाये गये हों, जिनके बनाने में न बहुमूल्य सामान लगाया गया हो न बड़े बड़े इंजीनियर और कारीगर लगाये गये हों बल्कि जहाँ कम से कम खर्च में गाँव में मौजूद सामान इमारत में लगाकर एक सुन्दर हल्की सलकी इमारत बना दी गई हो । ऐसी इमारत के कमरों में अधिक से अधिक प्रकाश और वायु रहती है । इसके प्रबन्ध और वार्षिक मरम्मत में बहुत कम रुपया और परिश्रम खर्च किया जा सकता है।

बुनियादी शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ बेसिक स्कूलों की संख्या भी हमारे प्रान्त में बराबर बढ़ रही है । सामने पृष्ठ पर एक उदाहरण बेसिक स्कूल के चित्र का दिया गया है । यह स्कूल बेसिक ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद से सन् १९३९ ई० में डाक्टर इबादुर्रहमान खां साहब की संरक्षता और सूझ-बूझ के अनुसार बनाया गया था और बहुत सफल प्रमाणित हुआ । इस स्कूल में ४ कमरे हैं और एक बहुत बड़ा हाल । हाल कमरा ४० फीट लम्बा और २० फीट चौड़ा है । इस कमरे को स्टोर रूम के रूप में प्रयोग किया जाता है और इसमें रात को स्कूल का

सामान ताले में बन्दकर रख दिया जाता है। पूरी इमारत को बनवाने में लगभग २५०) खर्च हुए। देहातों में ऐसी इमारत बनाने में इससे भी कम खर्च हो सकता है। स्कूल के चारों ओर विस्तृत मैदान और बागीचे हैं; बड़े-बड़े पेड़ भी हैं जिनके नीचे खुली हवा में स्कूल लगते हैं। एक पेड़ ऐसा भी है जिसके चारों ओर एक कमरा बनाया गया है। यह कमरे ऐसे हैं कि वर्षा में पानी की एक बूंद भी अन्दर नहीं जा सकती। गर्मियों में लू और धूप से बचने के लिए कमरों के दरवाजों पर चिकें या परदे डाल दिये जाते हैं। इस स्कूल के कमरों के फर्श कच्चे हैं। इन पर हफ़्ते में एक बार गोबरी की जाती है। यह काम बच्चे स्वयं करते हैं। प्रत्येक कक्षा में दो मानीटर होते हैं जो प्रत्येक दिन सुबह यह देखते हैं कि कमरे में कहीं दीमक तो नहीं है। इस तरह से दीमक से बचाव का काम भी बच्चों के हाथ में रहता है।

स्कूल के कमरे—स्कूल की इमारत के सिलसिले में कमरों की भी चर्चा की जा चुकी है। कमरों में हवा के आने जाने का काफ़ी प्रबन्ध होना चाहिये। इसके अतिरिक्त रोशनदान भी हों। कमरे बच्चों की संख्या के अनुसार छोटे या बड़े हों। इनमें सील या नमी बिलकुल न हो। धूप, लू और सर्दी से बचने का भी प्रबन्ध होना आवश्यक है। उसकी दीवारें ऐसी हों जिनका धरातल बराबर हो ताकि नकशे और चित्रों के बनाने में सरलता रहे।

बच्चों के बैठने की सामग्री—अंग्रेज़ी स्कूलों में डेस्कों और स्टूलों की प्रथा है। कुछ देहाती स्कूलों में भी इनकी प्रथा हो गई है। डेस्क और स्टूलों के प्रयोग के विषय में शिक्षाशास्त्रियों की रायें भिन्न-भिन्न हैं। कुछ तो यह कहते हैं कि यह बच्चों की उग्र प्रवृत्ति के कामों में रुकावट डालती हैं और उनको ठस बना देती हैं। कुछ की राय है कि मेज, कुर्सी, डेस्क और स्टूल बच्चों के लिए आवश्यक हैं क्योंकि यह उनकी गतिविधि पर अधिकार रखते हैं और उनके शारीरिक अंगों को विकृत बनाने से बचाते हैं तथा प्रयोगिक शिक्षा के कार्यों में सहायता देते हैं

एतदर्थ इससे किसी को इन्कार नहीं कि यदि बच्चों को स्थायी रूप पर बहुत बहुत देरतक के लिए न बैठना पड़े तो डेस्क और स्टूल उनके लिए बहुत कुछ लाभप्रद हो सकते हैं।

स्टूलों और डेस्कों के प्रयोग में अध्यापक को बड़ी सतर्कता की अवश्यकता है। यदि डेस्क ऊँचा है तो बच्चे को खड़ा हो कर उस:पर कापी रखकर लिखना पड़ेगा या वह अपने मोंढों को ऊपर चढ़ायेगा और इस प्रकार उसके शारीरिक अंग खराब हो जायेंगे। यदि डेस्क नीचा है तो उसको बहुत झुकना पड़ेगा और रीढ़ की हड्डी में कुछ खराबी हो जायगी। इसके अतिरिक्त उसको आँखों पर बहुत ज़ोर पड़ेगा। इसलिए डेस्क को बच्चों की उँचाई निचाई के लिहाज से ऊँचा या नीचा छोटा या बड़ा होना चाहिये, वर्ना उससे बहुत बड़ी हानि पहुँचेगी।

विलायत में और भारतवर्ष के बहुत से स्कूलों में एक विशेष प्रकार के डेस्क प्रयोग किये जाते हैं जिनको अवश्यकता के अनुसार ऊँचा या नीचा किया जा सकता है। इस काम के लिए डेस्क के निचले भाग में पेंच लगे होते हैं जिनको इधर उधर घुमाने से डेस्क का ऊपरी भाग ऊँचा या नीचा हो सकता है।

कुछ स्कूलों में ऐसे डेस्क प्रयोग किये जाते हैं कि जिनमें दो दो डेस्क साथ साथ जुड़े होते हैं और कुछ में लम्बे लम्बे डेस्क और लम्बी लम्बी तिपाइयां प्रयोग की जाती हैं जिनमें कई कई बच्चे बैठ सकते हैं। जहाँ तक स्थान के बचाने का सम्बन्ध है वहाँ तक उन डेस्कों के प्रयोग में कोई आपत्ति नहीं। लेकिन बच्चे की अच्छी शिक्षा के लिए यह डेस्क बहुत ही अनुपयुक्त हैं और इसका कारण स्पष्टता, सरलता से समझ में आ सकता है। हम इसकी आवश्यकता नहीं समझते कि उसकी यहाँ पर विशद व्याख्या की जाय।

बेसिक स्कूलों में बैठने की सामग्री की समस्या पर भी सफलता के साथ विचार किया जा चुका है। बेसिक क्राफ्ट और आर्ट का काम डेस्कों पर भली प्रकार नहीं किया जा सकता। इसलिए बच्चे इन कामों

को फर्श पर बैठ कर कर सकते हैं। हाँ उनके सामने ६ इंच से १ फुट तक ऊँची तिपाइयाँ या लम्बी चौड़ी मेंजे रक्खी हों तो बहुत ही अच्छा है। इस तरह वह अपने शारीरिक अंगों पर व्यर्थ जोर डालने और उनको विकृत बनाने से बच जायेंगे। और उनकी आँखों पर भी अधिक जोर न पड़ेगा। इसके अतिरिक्त वह स्वतन्त्रतापूर्वक और मन लगाकर अपना काम भी कर सकेंगे।

वर्तमान शिक्षा में "खुली हवा में शिक्षा" पर बहुत ज़ोर दिया गया है। इन कक्षाओं में तो मेज कुर्सी का प्रयोग बहुत ही कठिन है। इसलिए और भी चटाइयों या फर्श पर निचली मेजों को सामने रख कर बैठना आवश्यक है। 'जामयमिलिया इस्लामियाँ' में सब कक्षायें इसी पर बैठती हैं। वहाँ के अध्यापक भी फर्श पर बैठते हैं और छोटे-छोटे डेस्क अपने सामने रखते हैं। हाँ, बच्चों की अपेक्षा ऊँचा रहने के लिए वह अपना आसन किसी चौकी या तख्त पर बिछाते हैं।

बच्चे मेज कुर्सी पर बैठें या डेस्क और स्टूल प्रयोग करें या फर्श और नीची मेजें काम में लायें। कुछ भी हो अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह उनके (१) बैठने की शिष्टता पर, (२) लिखने की रीतियों पर, (३) पढ़ने के नियमों पर और (४) बातें व पाठ सुनने के अन्दाज पर ध्यान दें, वर्ना बच्चे के शारीरिक अङ्गों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा।

प्रश्न

१—'स्कूल की परिस्थिति से उसकी शिक्षा की हालत पर बहुत प्रभाव पड़ता है।' इस बात की संक्षेप में विवेचना कीजिये।

२—बुनियादी शिक्षा के साथ साथ स्कूल के वातावरण में भी परिवर्तन उत्पन्न हो गया है। क्यों, और कैसे? विस्तार से समझाइये।

३—"बच्चों के बैठने की सामग्री ऐसी हो जिन पर बैठकर वह काम कर सकें न कि चुपचाप बैठे रहें" आप बुनियादी स्कूलों में किस प्रकार के बैठने का सामाग्री निर्धारित करेंगे और क्यों ?

४—एक प्राइमरी या माडल स्कूल के एक कक्षा का खाका बनाइये जिसकी लम्बाई चौड़ाई भी लिखी हो। उसमें डेस्कों, या बैठकों, खिड़कियों और दरवाज़ों की जगहें भी दिखाई जावें। आप किस प्रकार का फर्नीचर और सजावट का सामान प्रयोग करेंगे। [एल० टी०]

५—एक बेसिक स्कूल के लिए कम खर्च इमारत का नकशा बनाइये। इस स्कूल में आप को किस किस्म के फर्नीचर और सामान की आवश्यकता होगी ?

[एल० टी०]

अध्याय १०

पाठ की तैयारी

अब तक हमने शिक्षा के सिद्धान्तों पर विवेचना की है और हम उस परिणाम पर पहुँच गये हैं कि अध्यापक की सफलता जिन बातों पर निर्भर है वह यह हैं—१. वह बच्चों की मनोवृत्ति से पूर्ण रूप से परिचित हो, २. वह शिक्षा देने की प्रत्येक प्रणालियों से भली प्रकार जानकारी रखता हो, ३. वह शिक्षा प्रबन्ध से पूर्णतय: परिचित हो, ४. वह शिक्षा देने में काम आने वाली सामग्री से पूरी तरह जानकारी रखता हो और ५. उसको किसी ट्रेनिंग स्कूल में बच्चों को पढ़ाने के अभ्यास का अवसर मिल गया हो। अन्त में इस सिलसिले में यह आवश्यक है कि हम एक बहुत ही आवश्यक विषय पर प्रकाश डालें जो अब तक हमारी चर्चा से वंचित रह गया है। वह विषय पाठ की तैयारी से सम्बन्धित है।

पाठ की तैयारी की महत्ता--एक अध्यापक शिक्षा पद्धति और मनोविज्ञान के विषय में पूरी पूरी जानकारी रखते हुए भी सफल अध्यापक नहीं कहलाया जा सकता अगर वह बच्चों को "बेतुकेपन" से पाठ देता है। बेतुकेपन से मतलब यह है कि न तो पाठ का सर और पैर है न शिक्षक के सामने कोई उद्देश्य है। न अध्यापक ने इस बात पर पहिले से विचार किया है कि वह क्या पढ़ायेगा और किस तरह पढ़ायेगा। इसको या तो उन बातों की महत्ता का अनुभव ही नहीं है या यह कि ध्यान होते हुए भी वह अपने कर्त्तव्यों के निभाने से बचता रहता है। ऐसी अवस्था में पाठ कदापि सफल नहीं हो सकता है। वह केवल समय टालने का एक बहाना मात्र होगा।

यदि अध्यापक यह चाहता है कि उसका पाठ बच्चों के लिए लाभप्रद हो तो उसके लिए आवश्यक है कि वह पहिले से पाठ तैयार कर ले, पाठ की तैयारी का यह अर्थ नहीं है कि वह पाठ के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करे। किसी हद तक यह सही हो भी सकता है, वर्ना वह तो पहिले ही से अपने विषय पर पूरा अधिकार रखता है। बल्कि इसका अर्थ यह है कि वह उन बातों पर विचार करे कि उसको क्या पढ़ाना है, किसको पढ़ाना है और कितनी देर तक पढ़ाना है। इसके अतिरिक्त उसको यह भी सोचने की आवश्यकता है कि उसके विद्यार्थी का ज्ञान इस पाठ की सहायता के लिए कहाँ तक है। वह कौन सी शिक्षा विधि अपनाये कि सरलता और दिलचस्पी के साथ पाठ पढ़ा सके। वह कौन-कौन से उपाय अपने पाठ के बीच में प्रयोग करे कि बच्चे पाठ में अत्यन्त दिलचस्पी और अवधान से काम लें और वह यह कैसे मालूम करे कि उसका उद्देश्य पूरा हो गया या नहीं। इन सब बातों में से कोई सी बात छोड़ भी नहीं सकते। यह सब गोया एक ही सिलसिले की कड़ियाँ हैं। आप एक कड़ी को अपने स्थान से हटा देंगे तो पूरा क्रमही अस्त-व्यस्त हो जायगा।

पाठ की तैयारी में—१. पाठ का उद्देश्य, २. विद्यार्थी की आयु और उनका पूर्व ज्ञान और ३. समय का ध्यान बहुत आवश्यक है। एक ही पाठ विभिन्न आयु के बच्चों को विभिन्न रीतियों से देना पड़ेगा। कारण यह है कि छोटी आयु के बच्चों का पूर्व ज्ञान और ज्ञान भण्डार कम होता है। इसके विपरीत बड़ी आयु के बच्चों का पूर्वज्ञान भी अधिक होता है और उनका ज्ञान भण्डार भी विस्तृत होता है। इसलिए दोनों दशाओं में शिक्षा विधियों का विभिन्न होना आवश्यक बात है। इसी प्रकार समय के विचार से भी पाठ की तैयारियों में विभिन्नता होतीहै। अगर हमको एक पाठ ३० मिनट के अन्दर अन्दर समाप्त करना है तो वह उतना विस्तृत नहीं हो सकता जितना कि वही पाठ एक घण्टे में पूरा करने से हो सकता है।

प्रत्येक पाठ में उसकी शिक्षा विधि अलग अलग होती है। यह कहना ग़लत है कि एक पाठ को सब अध्यापक एक ही तरह पढ़ा सकते हैं। जितने अध्यापक उतनी ही शिक्षा विधियाँ यह कहना बिलकुल सत्य है। कारण यह है कि सब अध्यापक न केवल अपनी अपनी योग्यता के अनुसार अपनी अपनी शिक्षा की रीति अपनायेंगे, बल्कि वह अपने शिक्षार्थियों की योग्यता के अनुमानों में भी विभिन्नता रक्खेंगे और इस तरह अपनी शिक्षा विधि बदल देंगे।

अध्यापक जो कोई भी पाठ अपने विद्यार्थियों को देगा वह निम्नलिखित रूप में से एक न एक रूप में अवश्य होगा।

१—अध्यापक कोई बात समझा देगा [ज्ञान प्राप्त करने की रीति]।

२—विद्यार्थी किसी विषय पर प्रयोग व निरीक्षण करेंगे [प्रयोगिक क्षिक्षा]।

३—विद्यार्थी अपने अपने विचार को व्यक्त करेंगे [विचार प्रकट करने की रीति]।

४—विद्यार्थी किसी प्राप्त ज्ञान पर अभ्यास करेंगे [हाथ से काम करने की रीति]।

५—विद्यार्थी स्वयं पुस्तकें पढ़ेंगे [प्राइवेट स्टेडी]।

६—पिछले काम को दोहराया जायगा [पिछले काम को दोहराना]।

७—मन बहलाने के काम किये जायँ [उत्साह पैदा करने के पाठ]।

यह सूची पूरी नहीं है फिर भी हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि हर पाठ उपरोक्त लिखित बातों ही में से हो सकता है। सदैव यह सब स्वरूप एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं फिर भी इनमें कुछ सम्मिलित विशेषताएँ हैं अर्थात् हर एक रूप में पाठ का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होगा और प्रत्येक पाठ किसी न किसी तरह शुरू जरूर किया जायगा। किसी न किसी तरह प्रयोग में अवश्य आयेगा और किसी न किसी तरह समाप्त अवश्य होगा। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक पाठ में प्रारम्भ, मध्य और अन्त अवश्य होगा। इसके अतिरिक्त

प्रत्येक पाठ में यह बातें भी होंगी-- १.हम किस तरह चलें, २.किस तरह मुख्य पाठ पर पहुँचे और फिर ३.—किस तरह पाठ की विभिन्न कड़ियों को मिलाकर एक क्रम में ले आयें। यही बातें पाठ की नियमानुसार तैयारी के संकेत हैं।

पाठ के संकेत--पाठ की तैयारी का पहला अंश यह है कि विद्यार्थी के मस्तिष्क को नया ज्ञान ग्रहण करने के लिए तैयार करना चाहिये। पाठ के इस भाग को हम प्रस्तावना कह सकते हैं। कुछ सज्जन इसी को 'तैयारी' भी कहते हैं। मगर हम समझते हैं कि पहला नाम अच्छा है। प्रस्तावना का अर्थ यह है कि वह बच्चे के वर्तमान विचार के भण्डार के उस भाग को साफ साफ निस्सन्देहात्मक रीति से और एक नियम के रूप में सामने ले आये जिसकी सहायता से वह नया पाठ सरलता से प्राप्त करेगा। दूसरे शब्दों में इसके अर्थ यह हुए कि बच्चे के मस्तिष्क की तर्क शक्ति सकारण के साथ सचेत भाग में आ जाये। इस तरह शिक्षक का काम यह है कि वह बच्चे के पूर्व ज्ञान को नये पाठ के प्रकाश में बच्चों के सामने रक्खे ताकि उसका उद्देश्य पूरा हो जाय। स्पष्ट है कि इस पाठ के भाग में लगभग सब काम बच्चे को करना पड़ता है। इस अवसर पर अध्यापक का काम केवल यह है कि वह संशयात्मक प्रश्नों के द्वारा बच्चे के पूर्व ज्ञान को अपने लक्ष्य की ओर ले आये। बच्चे को अवसर दिया जाता है कि वह जो कुछ जानता है स्वतंत्रता के साथ बताये। हाँ! बच्चे के पूर्व ज्ञान को उसको देना, यह काम अध्यापक का है। अतएव प्रस्तावना के अन्त में अध्यापक बच्चों के पूर्व ज्ञान में आवश्यकीय कड़ियों को मिलाकर सिलसिले (क्रम) में ले आता है और अब अपना मुख्य पाठ शुरू कर देता है।

जो अध्यापक अपना पाठ किसी प्रस्तावना के बिना ही शुरू कर देते हैं वह एक बहुत बड़ी गलती के भागी हो जाते हैं। उनको यह नहीं मालूम होता कि उनके विद्यार्थी क्या जानते हैं और क्या नहीं। इस कारण से पाठ के बीच में ही उनको बड़ी बड़ी कठिनाइयों का

सामना करना पड़ता है। कभी-कभी तो उनके बेतुकेपन से पिछली पढ़ी हुई बातों को दोहराने की आवश्यकता आ जाती है जिससे व्यर्थ समय नष्ट हो जाता है और बच्चों के लिए भी पाठ एक भारस्वरूप बन जाता है।

चूँकि पाठ के प्रस्तावना भाग में बच्चे को नये पाठ के लिए तैयार किया जाता है और उसके पूर्व ज्ञान को सामने लाया जाता है, इसलिए अनुमानत: उसका सम्बन्ध उसी विषय के पिछली दो एक बातों से होता है जिसमें बच्चों ने वह ज्ञान प्राप्त किया था जो अध्यापक सामने लाना चाहता है। इस तरह जो प्रश्न पाठ के इस भाग में होते हैं उनका सम्बन्ध सीधे पिछले पाठों से होता है।

अब प्रश्न यह होता है कि प्रस्तावना में कितना समय खर्च होना चाहिये। उसका कोई नियम निर्धारित नहीं है। अगर आप बच्चे के ज्ञान से पूर्ण परिचित हैं और आपको उसका विश्वास है कि आप उस जानकारी को काम में लाते हुए एक दम बच्चे को नये पाठ पर ले आयें तो हो सकता है कि आप प्रस्तावना को बिलकुल ही गायब कर दें। हालाँकि बिलकुल ही गायब कर देना सरासर गलती है। इस दशा में भी दो चार प्रस्तावना के प्रश्नों की आवश्यकता अवश्य ही पड़ेगी। इसके अतिरिक्त अगर बच्चे कम आयु के हैं और पाठ ऐसा है जिससे मस्तिष्क पर अधिक जोर पड़ेगा तो ऐसी अवस्था में पाठ की सफलता पूरी-पूरी प्रस्तावना पर निर्भर होती है। ऐसी अवस्था में यदि समय अधिक भी लग जाय तो कोई हर्ज की बात नहीं है; क्योंकि इससे जो लाभ होगा वह मान्य होगा। तात्पर्य यह है कि प्रस्तावना का समय निर्भर होगा बच्चों की आयु और पाठ के ऊपर।

पाठ का उद्देश्य--पाठ के प्रस्तावना के बाद अध्यापक को चाहिये कि बच्चों को पाठ का उद्देश्य बता दे। कारण यह है कि अध्यापक और विद्यार्थी दोनों एक ही उद्देश्य के लिए तर्क वितर्क करते हैं। बच्चों को यदि मालूम हो जाय कि क्या ज्ञात करना है तो

वह और संलग्नता से अपने काम में लग जायेंगे वर्ना उन के लिए पाठ अंधेरे में टटोलने के समान होगा। प्रायः सज्जन इस पर यह एतराज करते हैं कि अगर विद्यार्थी को पाठ का उद्देश्य बता दिया जाय तो उनकी दिलचस्पी कम हो जायगी, यह एतराज ठीक नहीं है। बच्चों को यदि यह बात मालूम हो जाय कि उनको क्या करना है तो उससे पूरे पाठ पर कुछ प्रकाश नहीं पड़ सकता बल्कि ज्ञान अपूर्ण रह जाने के कारण उनकी दिलचस्पी और बढ़ जायेगी। यह बात दूसरी है कि छोटे छोटे बच्चों को जो काम और खेल में विभेद नहीं जान सकता पाठ का उद्देश्य बता देना बिलकुल बेकार बात है। वह खेल खेल में पाठ सीखते हैं और उनको मालूम भी नहीं होता कि उन्होंने कौन सी बात सीख ली हैं और किस तरह।

पाठ का दूसरा अंग—अब अध्यापक को पाठ के दूसरे भाग की ओर आकृष्ट होना चाहिये जिसको हम समन्वय कह सकते हैं। यह भाग वास्तव में पूरे पाठ की जान है। इसमें अध्यापक प्रतिदिन के वास्तविक और असली उदाहरणों के द्वारा धीरे-धीरे पाठ की ओर आता है। पाठ के इस भाग में अध्यापक को बड़ी सावधानी की आवश्यकता है कि यदि कहीं भी तर्क का क्रम टूट जायगा तो पूरे पाठ का प्रबन्ध अस्तव्यस्त हो जाने का डर होगा। अच्छा तो यह है कि उस भाग को और छोटे-छोटे भागों में बाँट लिया जाय ताकि प्रत्येक पहले भाग का सम्बन्ध बाद वाले भाग से हो। अध्यापक एक एक भाग को अलग अलग ले और उसको बच्चों से निकलवाकर दूसरे भागों से सम्बन्धित कर दे। मान लीजिये "भूमिका" के तीन भाग अ, ब, स किये गये हैं। यदि ब भाग को पढ़ाया जाय तो पहिले उसे सब भागों से अलग अलग पढ़ाना आवश्यक है और फिर भाग अ के सम्बन्ध से। अब भाग स को भी इसी नियम से पढ़ाना चाहिए। इसी प्रकार पहिले तो विषय का ज्ञान हो जायगा और फिर उस पर सोच विचार करने का अवसर

मिल जायगा और उस पर दूसरी बातों के सम्बन्ध से दृष्टि डाली जा सकेगी।

तीसरा अंग-तुलना और क्रम बद्धता—अध्यापक बच्चों के सामने पाठ रखता है। अब आवश्यकता इस बात की है कि उस पाठ की सहायता से किसी मुख्य परिणाम या निष्कर्ष पर पहुँचा जाय। इस बात की भी आवश्यकता है कि उस परिणाम की तुलना हम पिछले किसी पाठ के परिणाम से या बच्चों के पूर्वज्ञान से करें। पाठ के इसी भाग का नाम हमने "तुलना और क्रमबद्धता" रक्खा है और जिसको शिक्षा भी कहते हैं। कुछ सज्जन इस भाग को एक अलग भाग मानने से इन्कार करते हैं। वह कहते हैं कि यह कोई मुख्य भाग नहीं है बल्कि दूसरे भाग का ही एक भाग है। हमारा विचार यह है कि उसको एक भाग मानना ही ठीक है। आपने भूगोल का एक पाठ पढ़ाया है। अब आप यह कर सकते हैं कि इसी किस्म की बातों से जो बच्चे ने पहले से पढ़ी हैं, उसकी तुलना कर सकते हैं। और इस तरह बच्चों को वही बात अधिक विस्तृत रूप से समझा देंगे। इस के अतिरिक्त उनकी प्राकृतिक और मानसिक शक्तियो को शक्ति प्रदान करदें। अब मुख्य-मुख्य परिणामो पर पहुँचना और भी सरल बात हो जायगी।

पाठ का अन्तिम भाग यह है कि जो कुछ पढ़ाया गया है उसको दोहरा दिया जाय और उसे प्रतिदिन के जीवन की बातो पर लगाया जाय।

चौथा भाग—पाठ का अभ्यास और दोहराना

बच्चों के ज्ञान भण्डार को भार से लाद देना एक बेकार बात है। जब तक उसको यह न बताया जाय कि इन खराबियों की बहुत सी परिभाषाये याद हों, बहुत से सिद्धान्त मालूम हों। बहुत से नियमो से परिचित हों तो यह सब उस समय तक बेकार है जब तक कि उनको अपने जीवन में सफलता के साथ प्रयोग न कर सकें। आवश्यकता इस बात की है कि यदि कोई भाववाचक बात बच्चों को बताई गई है

तो उसका अभ्यास प्रतिदिन के सच्चे जीवन के उदाहरणों पर किया जाय। यदि बच्चों ने गणित का कोई नियम सीखा है तो उनको प्रतिदिन जीवन के प्रश्नों पर उनको व्यवहार करना चाहिये। इसी प्रकार उन्होंने भूगोल का पाठ लिया है तो उस ज्ञान को किसी काल्पनिक भूगोल की यात्रा का हाल वर्णन करने में लगा सकता है। अगर उसने साइन्स में कोई फल निकाला है तो प्रतिदिन जीवन में पचासों उदाहरणों में उसको देख सकता है। मतलब कोई बात भी बच्चा सीखे आवश्यकता इस बात की है कि वह उसको प्रयोगिक रूप में काम में लाये और अपने ज्ञान को मजबूत कर दे।

इस अध्याय को समाप्त करने से पहिले अच्छा होगा कि हम होनहार अध्यापक को एक आवश्यक सूचना दे दें। पाठ के यह चारों भाग जो हमने वर्णन किये हैं अर्थात् (१) प्रस्तावना, (२) परिचय, (३) तुलना, क्रमवद्धता, (४) अभ्यास और दोहराना। यह सब देखने में एक दूसरे से अलग-अलग अवश्य हैं मगर सब एक ही ठोस और सम्पूर्ण वस्तु के विभिन्न अंग हैं जो एक दूसरे से विभिन्न होते हुए भी एक पूरी वस्तु के आकार-प्राकार बनाने में अनिवार्य रूप से भाग लेते हैं। एक भाग पाठ की सफलता पर दूसरे भाग को सफ़लता निर्भर होती है। अध्यापक को अपने पाठ की तैयारी में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि न तो किसी भाग पर आवश्यकता से अधिक जोर दे और न किसी पर कम। उसको कोई विशेष शिक्षा-प्रणाली अपनाने के लिए बाध्य न होना चाहिये। हम बारम्बार निवेदन कर चुके हैं कि जो शिक्षा-प्रणाली उसको किसी पाठ में प्रयोग करनी पड़ेगी वह कई बातों पर निर्भर होगी जिन में ध्यान देने योग्य पाठ का विषय और बच्चे का पूर्व ज्ञान है।

लिखित संकेत—अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि पाठ पढ़ाने से पहिले वह पाठ की अच्छी तरह तैयारी कर ले और जो कुछ उसे पढ़ाना है उसे पहिले से लिख ले। पाठ को तैयार करके लिख

लेने को ही हम लिखित संकेत (Notes of Lessons) कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि अध्यापक को पूरा पाठ किस तरह शुरू करना है, किस प्रकार के प्रश्न करना है, किस तरह अभीष्ट विषय पर आना है, किस प्रकार परिणाम निकालना है, और किस तरह प्राप्त ज्ञान को प्रयोग में लाना है। यह सब बातें लिखित रूप में लाने को हम लिखित संकेत के नाम से पुकारते हैं। इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि अध्यापक पूरे पाठ को लिखकर रट ले और उसे बच्चों के सामने उगल दे। यह बहुत ज़बरदस्त ग़लती है। पाठ का खाका कोई बेजान चीज़ नहीं है जिसमें सुधार सम्भव न हो। बल्कि वह एक जीवित सी वस्तु है जो प्रतिपल बदल सकती है। लेकिन उनके परिवर्तन पाठ के बीच में उत्पन्न होते रहते हैं जब कि अध्यापक अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बच्चों की दिलचस्पी को, उनके पूर्व ज्ञान को और उनके प्रश्नों को दृष्टि के सामने रखता है। अध्यापक अपने पाठ का खाका पहले से अवश्य तैयार कर सकता है। वह यह सोच सकता है कि वह इस किस्म के प्रश्न बच्चों से करेगा। वह शिक्षा-प्रणाली पर भी विचार कर सकता है बल्कि एक विशेष प्रणाली भी अपना सकता है और वह पाठ के अन्तिम उद्देश्य पर भी ध्यान दे सकता है। लेकिन यह कहना सरासर ज़्यादती है कि वह विश्वस्तरूप से वही प्रश्न बच्चों से पूछेगा जो वह लिखकर ले गया है और यदि आवश्यकता पड़ेगी भी तो वह अपने लिखित संकेतों से एक इंच इधर-उधर न कर सकेगा।

पाठ लिखित संकेत तैयार करने में होनहार अध्यापक एक कापी व्यवहार में लाता है जिसपर वह एक विशेष क्रम से पूरे पाठ का खाका संकेत में लिख लेता है। यह खाका पाठ के उन भागों पर निर्भर होता है जिन पर उस अध्याय पर विवेचना की गई है। स्मरण रखने के लिए वह खाका के शुरू में पाठ-कक्षा बच्चों की आयु की तारीख़ इत्यादि भी लिख लेता है। इसके अतिरिक्त वह अपने पाठ

तारीख़	समय... कक्षा... बच्चों की औसत आयु....................................
विषय	
पाठ का उद्देश्य	....
पूर्वज्ञान	....
प्रस्तावना	....
शिक्षा-विधि	....
परिणाम और	....
अभ्यास	....

नार्मल स्कूलों में इस खाका के सामने का पृष्ठ खाली छोड़ दिया जाता है ताकि पाठ की जाँच करने वाले अध्यापक या प्रोफेसर साहब इस पर होनहार अध्यापक की कमी और त्रुटियों की ओर अपना निर्देशन कर सकें।

को कई भागों में विभक्त कर लेता है और हर भाग के लिये लिखित संकेत लिख लेता है। अतएव प्रायः पाठ का खाका निम्नांकित रूप से अंकित कर लिया जाता है।

पाठ के खाके में अध्यापक श्यामपट या दूसरी शिक्षा सम्बन्धी चीज़ों के प्रयोग पर भी संकेत अंकित करेगा कि उसने उन चीज़ों से कहाँ कहाँ और किस तरह से किस हद तक सहायता ली है। यदि वह कोई श्यामपट पर संक्षेप भी लिखता है तो वह संक्षेप भी पाठ के खाके में अंकित होगा। इस तरह उसके पाठ की जाँच करने वाला अध्यापक पाठ के खाके पर दृष्टि फेरते ही पाठ की खूबियों से या बुराइयों से परिचित हो जायगा और अपनी सम्मति सरलता से दे सकेगा।

प्रश्न

१—निम्नलिखित विषय में से किसी एक को लेकर यह बताइये कि उसे किस कक्षा में पढ़ाओगे और उसके कितने और कौन-कौन से पाठ होंगे। किसी एक पाठ का संकेत तैयार कीजिये।

अ—पलासी की लड़ाई।

ब—अशोक।

स—गुफ़ा में रहनेवाला मनुष्य। (नार्मल)

२—निम्नलिखित विषय में से किसी एक को लेकर यह बताइये कि उसे किस कक्षा में पढ़ाओगे और उसके कितने और कौन-कौन से पाठ होंगे। किसी एक पाठ का संकेत तैयार कीजिये।

अ—स्कीमो लड़के के जीवन की कहानी।

ब—दिन रात का होना।

स—गंगा नदी की घाटी। (नार्मल)

३—निम्नलिखित में से किसी एक पर किसी पाठ का संकेत लिखिये :—

अ—बंगाल का वर्तमान अकाल।

ब—प्लेग (ताऊन)।

स—अपने स्कूल फार्म पर उगाई हुई कोई फसल। (नार्मल)

४—निम्नलिखित विषय में से किसी एक पर पाठ का संकेत तैयार कीजिये :—

अ—ध्रुव तारा से दिशायें मालूम करना (कक्षा १ के लिये)

ब—कोलम्बस की यात्रा (कक्षा ४ के लिये)

स—दक्षिणी अफ्रीका का जलवायु (कक्षा ७ के लिये)। (नार्मल)

५—पाठ का खाका तैयार करने से आप क्या मतलब समझते हैं? हरबर्ट के बताये हुये कौन-कौन से सिद्धांत हैं और उनमें वर्तमान समय के अनुसार कितना सुधार किया जा सकता है? (सी० टी०)

६—एक फूल पर पाठ का संकेत तैयार कीजिये। कक्षा या विद्यार्थी की आयु अंकित कीजिये। (सी० टी०)

७—निम्नलिखित में से किसी एक पाठ का संकेत तैयार कीजिये और कक्षा अथवा आयु की चर्चा कीजिये :—

१—बीजों का उगना।

२—शहद की मक्खी।

३—एक फूल (एल० टी०)

अध्याय ११

विभिन्न प्रकार की शिक्षाएँ

शिक्षा को हम निम्नलिखित प्रकार में विभक्त कर सकते हैं :—

१—प्रारम्भिक शिक्षा (प्राइमरी)।

२—सेकेन्ड्री शिक्षा।

३—उच्च शिक्षा (यूनीवर्सिटी)।

४—दस्तकारी (कला) की शिक्षा।

५—धार्मिक शिक्षा।

६—शारीरिक शिक्षा।

इनके अतिरिक्त "दस्तकारी" की शिक्षा या "जीविकोपार्जन" कला की शिक्षा भी शिक्षा की ही एक क़िस्म है। मगर चूँकि उसमें जीविका निर्वाह के लिए दस्तकारियाँ या हुनर (कला) सिखाई जाती है और एक सर्वसाधारण शिक्षा का उद्देश्य नष्ट हो जाता है इसलिए वह हमारे शिक्षा-प्रबन्ध से बाहर की चीज़ हो जाती है। यही कारण है कि हमारे यहाँ इस शिक्षा को शिक्षा विभाग से कुछ मतलब नहीं है बल्कि वह व्यवसाय विभाग (Industries Department) के अधीन है। अतएव हमारे प्रान्त के इसी व्यवसायिक विभाग ने कहीं-कहीं पर ऐसे स्कूल स्थापित किये हैं जहाँ मुख्य-मुख्य दस्तकारियों या पेशों की शिक्षा दी जाती है ताकि वहाँ से निवृत्त होने पर विद्यार्थी पेशों के द्वारा अपनी जीविका कमा सकें। ऐसे स्कूलों में धातु के काम सीखने, चमड़े रंगने, शक्कर बनाने, जूते इत्यादि बनाने, लकड़ी का काम सीखने और मशीनों आदि के कल पुर्जों से जानकारी प्राप्त करने इत्यादि के स्कूल हैं। इन स्कूलों को हम (Vocational

Institutions) "दस्तकारी की पाठशालायें" कह सकते हैं जो वास्तव में शिक्षा विभाग के ही अंग हैं मगर चूँकि उनका उद्देश्य जीविका कमाना है इसलिए वह परोक्ष रूप से शिक्षा प्रबन्ध के अधीन नहीं आते। इन स्कूलों में जो विद्यार्थी भरती होते हैं प्रायः उनकी शिक्षा अधूरी होती है। शक्कर बनाने और बड़ी-बड़ी मशीनों से परिचित होने की शिक्षा के अतिरिक्त और नीचे पेशों की शिक्षा में किसी विशेष शिक्षा निर्माण की आवश्यकता नहीं होती। अधिकतर ऐसे विद्यार्थी उन पाठशालाओं में शिक्षा पाते हैं जो साधारण रूप से पढ़े-लिखे होते हैं।

प्रारम्भिक शिक्षा--हमारी राष्ट्रीय जीवन की बुनियादें वास्तव में इसी शिक्षा पर खड़ी की जाती हैं। इसी शिक्षा की उन्नति या अवनति पर राष्ट्र की उन्नति या अवनति निर्भर होती है। कारण यह है कि प्रारम्भिक शिक्षा में बच्चे शिक्षा के प्रारम्भिक सीढ़ियों को ते कर लेते हैं और इस तरह वह लिखने-पढ़ने और हिसाब लगाने में एक हद तक अभ्यास कर लेत हैं। यही तीनों बातें प्रतिदिन जीवन में बेहद काम में आती हैं। प्राइमरी शिक्षा के बाद अगर बच्चा अपनी शिक्षा को समाप्त कर दे तो वह अपना जीवन भली प्रकार व्यतीत कर सकता है और अपने बाप-दादा के पेशे में सफलता प्राप्त कर सकता है लेकिन इस शिक्षा से वंचित रहने में वह अनपढ़ रह जाता है और राष्ट्र और जाति क्या स्वयं अपने लिए भी तमाम कठिनाइयों से जीविका निर्वाह के सिवा और कुछ नहीं कर सकता।

सेकेन्ड्री शिक्षा--सेकेन्ड्री शिक्षा को शिक्षा प्रबन्ध का ढाँचा समझना चाहिए। प्रायः १६ वर्ष की आयु तक यह शिक्षा समाप्त हो जाती है। इस आयु में विद्यार्थी हाई स्कूल पास हो जाता है। वह शिक्षा के विभिन्न भागों से परिचित हो जाता है। वह इतिहास-भूगोल, खेती-बाड़ी, साइन्स (विज्ञान) हिसाब इत्यादि से जानकारी प्राप्त कर लेता है। उसमें यह योग्यता उत्पन्न हो जाती है कि वह संसार की बातों को

समझ सके और अपने जीवन के प्रकाश और अंधकारमय पहलुओं पर विचार कर सके। अब वह अपनी प्राकृतिक प्रवृत्तियों को समझ सकता है और अपने बड़ों की सहायता से यह निर्णय कर सकता है कि सेकेन्ड्री शिक्षा के बाद उसको क्या करना चाहिए कि वह सफल जीवन बिता सके। वह शिक्षा समाप्त करने का निर्णय करता है या आगे शिक्षा जारी रखने की इच्छा करता है। दोनों दशा में वह सफलता की ओर अग्रसर होता है। कारण यह है कि सेकेन्ड्री शिक्षा स्वयं एक पूरी शिक्षा मानी जाती है और एक अच्छी सेकेन्ड्री शिक्षा उन विशेषताओं की देन है कि एक मनुष्य की गणना पढ़े लिखों में हो सके।

उच्च शिक्षा—शिक्षा प्रबन्ध का यह भाग शिक्षा की इमारत का सर्वोपरि भाग है। यह शिक्षा की जान है। शिक्षा की सुन्दर विशेषताओं का तत्त्व है। यह पूर्ण शिक्षा है जिसे प्राप्त करने के बाद मनुष्य पूर्ण शिक्षित माना जाता है और वह संसार के बहुत बड़े-बड़े कामों में दिलचस्पी लेने और अपनी राय देने और स्वयं कोई महत्वपूर्ण कार्य करने पर अधिकार रखता है। यूनीवर्सिटी की शिक्षा में व्यवहारिक शिक्षा के अतिरिक्त ऊँचे प्रकार की कलात्मक शिक्षा, जैसे बच्चों को पढ़ाने, डाक्टरी में नियुक्त करने, इंजीनियरिंग और जंगलात का काम सीखने इत्यादि की शिक्षा भी सम्मिलित है। यह शिक्षा मनुष्य की प्रवृत्ति को और उसकी योग्यता और शक्तियों को निखार कर सामने ले आती है। मनुष्य में यह विशेषता उत्पन्न हो जाती है कि वह अपने ज्ञान को उचित रूप से नवीनतम खोजों में प्रयोग कर सके या उसको व्यवहारिक कार्यों में प्रयोग कर सके। यूनीवर्सिटी की उच्च शिक्षा के बाद राष्ट्र में बड़े-बड़े लीडर, डाक्टर, प्रोफेसर और इंजीनियर पैदा हो सकते हैं। इसी शिक्षा को प्राप्त करने से देश का व्यवसाय और कला-कौशल में बड़ी उन्नति हो सकती है। इसी शिक्षा की बदौलत सरकार को उच्च पदों के लिए अच्छे मस्तिष्क वाले अफ़सर मिल सकते हैं और यही शिक्षा

पाने के बाद देश में विज्ञान और ज्ञान की खोज के द्वार खुल सकते हैं और जन्मभूमि के पुत्र संसार भर में प्रसिद्धता प्राप्त कर सकते हैं। मतलब यह कि अगर सेकेन्ड्री शिक्षा, शिक्षा-प्रबन्ध का ढाँचा है तो यूनीवर्सिटी की शिक्षा पूरी इमारत है। जिसकी बदौलत एक मनुष्य समाज में एक आदरणीय स्थान प्राप्त कर सकता है।

दस्तकारी की शिक्षा—हमारे देश में दस्तकारी शिक्षा की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। कारण यह बताया जाता है कि भारत वर्ष एक कृषि-प्रधान देश है। यहाँ विभिन्न दस्तकारियों को उन्नति प्रदान करने के साधन अपेक्षाकृत कम हैं। सम्भव है यह कारण कुछ समय पहिले सही समझा जाता मगर अब तो समय ने बता दिया है कि हमारे देश में दस्तकारी की शिक्षा से अनभिज्ञ रहना एक बहुत बड़ी गलती है। संसार के दूसरे महायुद्ध ने जो कि अभी समाप्त हुआ है, यह बता दिया है कि भारतवर्ष में नवयुवकों को विभिन्न प्रकार की दस्तकारी की शिक्षा देने की अत्यन्त आवश्यकता है। कोई देश संसार के दूसरे देशों की समता नहीं कर सकता यदि वह कला-कौशल में पीछे है। इसी महायुद्ध के समय में सरकार ने नवयुवकों को अपने ख़र्चे से विभिन्न प्रकार की दस्तकारी की शिक्षा दिलवाई। जिन लोगों ने यह शिक्षा प्राप्त की वह आज-कल समाज में बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। केवल यही नहीं, बल्कि वह देश के लिए भी गौरव की वस्तु हैं। इन नवयुवकों के हाथ में भारतवर्ष की दस्तकारी की उन्नति की बागडोर है। महायुद्ध के बाद सरकार दस्तकारी की शिक्षा की समस्या को बड़े ज़ोर-शोर से हाथ में ले रही है। महायुद्ध के बाद अब युद्ध के दस्तकारी प्रोग्राम में दस्तकारी शिक्षा को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है। उसका सम्बन्ध सीधा शिक्षा-प्रबन्ध से कर दिया गया है। अर्थात् हमारे शिक्षा-प्रबन्ध में ऐसे अवसर हैं जहाँ विद्यार्थी को इसका अवसर दिया गया है कि वह अपनी प्राइमरी, या सेकेंड्री शिक्षा को समाप्त करने के बाद दस्तकारी शिक्षा की ओर

आकृष्ट हो जायँ जो कि शिक्षा-प्रबन्ध का ही एक भाग है इसमें कलाकौशल पर कक्षानुसार अत्यन्त ज़ोर दिया गया है। अतएव नये शिक्षा प्रोग्राम (कार्यक्रम) में जूनियर बेसिक स्कूलों, सीनियर बेसिक स्कूलों और हायर सेकेंड्री स्कूलों में प्रत्येक स्कूलों की शिक्षा के बाद विद्यार्थी को अवसर मिला है कि वह दस्तकारी शिक्षा की ओर अग्रसर हो सके।

धार्मिक शिक्षा—आजकल हमारे शिक्षा-प्रबन्ध में धार्मिक शिक्षा का स्थान बहुत कम है। पब्लिक स्कूलों में अर्थात् उन स्कूलों में जो सीधे-सीधे सरकार के आधीन हैं धार्मिक शिक्षा बिलकुल ही छोड़ दी गयी है। उन स्कूलों में जिनमें चूँकि सरकार का सीधा-सीधा अधिकार नहीं है बल्कि सरकार उनको सहायता देती है और उनका प्रबन्ध किसी जाति या वर्ग के आधीन है धार्मिक शिक्षा दी जाती है अर्थात् मिशन स्कूलों में इसाई धर्म की शिक्षा दी जाती है। इस्लामियाँ स्कूलों में इस्लाम की और डी० ए० वी० स्कूलों और कालेजों में वैदिक धर्म की शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त देश में जगह-जगह ऐसी राष्ट्रीय संस्थायें भी हैं जिनमें विशेष रूप से धार्मिक शिक्षा दी जाती है। यह शिक्षा-संस्थायें साधारण सरकारी सहायता नहीं पातीं या अगर पाती भी हैं तो बहुत कम।

शारीरिक शिक्षा—शारीरिक शिक्षा आजकल की शिक्षा में कोई अलग स्थान नहीं रखती। बल्कि उसको शिक्षा पाठ्य विषय का एक अंग समझा जाता है। हाल ही में हमारे प्रान्त ने इस ओर भी विशेष ध्यान दिया है। अतएव प्रत्येक स्कूलों में यह प्रबन्ध किया जा रहा है कि शारीरिक शिक्षा ऐसे अध्यापकों के हाथ में सौंपी जाय जो इस कला का ज्ञाता और ट्रेंड (Trained) हो। सरकार ने अभी हाल ही में इलाहाबाद में एक "कालेज आफ फिजिकल एजूकेशन" स्थापित किया है, जहाँ पर शारीरिक शिक्षा में अध्यापकों को दक्ष किया जाता है। यह अध्यापक विभिन्न स्कूलों में पहुँच कर बच्चों को शारी-

रिक शिक्षा देंगे और उनके स्वास्थ्य को सुन्दर बनाने के लिए उपाय करेंगे।

प्रश्न

१—प्रारम्भिक शिक्षा से आप क्या मतलब समझते हैं? यह भी किस आयु के बच्चों के लिए है? इस शिक्षा की विशेषतायें वर्णन कीजिये।

२—शिक्षा के स्कूलों और दस्तकारी स्कूलों में क्या अन्तर है? विस्तारपूर्वक समझाइये।

३—"सर्वसाधारण स्कूलों में धार्मिक शिक्षा देना एक कठिन कार्य है" इस बात की यथार्थता में आप क्या तर्कना दे सकते हैं।

४—आजकल की शिक्षा को हम किन किस्मों में बाँट सकते हैं? उदाहरण देकर समझाइये।

५—निम्नलिखित शिक्षायें शिक्षा की कौन-कौन सी किस्मों से सम्बन्ध रखती हैं:—

१—बढ़ईगीरी का काम।
२—डाक्टरी की शिक्षा।
३—एम० ए० की शिक्षा।
४—बच्चे की प्रारम्भिक शिक्षा।
५—उर्दू मिडिल की शिक्षा।
६—रंगसाजी का काम।

६—"शारीरिक शिक्षा वास्तव में एक किस्म की शिक्षा है" इस बात की विवेचना संक्षेप में कीजिये।

*

अध्याय १२

भारतवर्ष में देहाती शिक्षा

भारतवर्ष में भूतकाल से शिक्षा में लोगों को दिलचस्पी रही है। यह अवश्य है कि इन दिनों आजकल की तरह एक नियमानुसार स्थायी शिक्षा-प्रबन्ध नहीं था फिर भी उस समय की शिक्षा जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार होती थी। आजकल की तरह परीक्षायें पास करने, सार्टीफिकेट और डिग्रियाँ प्राप्त करने की उत्कण्ठा भी लोगों के मन में न थी। बल्कि शिक्षा केवल ज्ञान के लिए प्राप्त की जाती थी। धर्म और शिक्षा में एक घनिष्ठ सम्बन्ध समझा जाता था। अतएव जितनी भी शिक्षा की कोशिशें होती थीं उनमें धार्मिक शिक्षा की छाप रहती थी। शिक्षा का खर्च स्वयं दयालु और उत्साही जनों के द्वारा पूरा होता था। हाँ कभी-कभी सरकार की भी शिक्षा संस्थाओं को संरक्षता प्राप्त हो जाती थी। हिन्दू और मुसलमान बादशाहों के शासन-काल में शिक्षा सर्वसाधारण में पर्याप्त मात्रा में फैली हुई थी जिसके कारण देहातों में पढ़े-लिखे लोगों की संख्या बहुत काफ़ी होती थी।

भारतवर्ष में अंग्रेज़ी राज्य के पहिले अर्थात् ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्थापित होने से पहिले भारतवर्ष में जो शिक्षा की दशा थी इसका ठीक-ठीक अनुमान हमको नहीं है। यह वह समय था जब पूरे देश में अशान्ति फैली हुई थी। छोटी-छोटी रियासतें एक दूसरे से झगड़ती रहती थीं और अंग्रेज़ तथा अन्य दूसरी योरोपियन जातियों ने भारतवर्ष में व्यापार के साथ-साथ यहाँ के राजनीतिक समस्याओं में और आपस के झगड़ों में दख़ल देना शुरू कर दिया था। ऐसी दशा में शिक्षा की ओर से बेपरवाह होना आवश्यक बात थी मगर इसके यह

अर्थ नहीं कि इस समय में शिक्षा को बिलकुल ही पीछे डाल दिया गया था ।

हमारे पास कोई विशेष संख्या अथवा आँकड़े ऐसे नहीं हैं जिनसे यह मालूम हो सके कि इस काल में भारतवर्ष में कुल कितने स्कूल थे और कितने बच्चे शिक्षा पाते थे। "मेक्समुलर के लेखानुसार केरहारडी ने यह राय प्रकट की है कि अंग्रेजों से पहिले अकेले बंगाल मे ही लगभग अस्सी हजार स्कूल (मकतब और पाठशाला) थे जिससे चार सौ आदमियों के लिए एक स्कूल में औसत आता था और यह कि अधिकतर गाँवों में लोगों की अधिक संख्या पढ़ लिख सकती थी। प्राचीन शिक्षा-प्रबन्ध के समाप्त होने के साथ देहाती स्कूल भी धीरे-धीरे समाप्त हो गये और निरक्षरता ने तेज़ी के साथ देहाती जीवन पर अधिकार कर लिया।"* इस वर्णन से यह पता लगता है कि इस समय में भी भारतवर्ष के देहात में शिक्षा का काफ़ी प्रचार था। अंग्रेज़ी शासन में शिक्षा की सरगर्मी समाप्त हो गई।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन-काल में शिक्षा की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया। कारण यह था कि कम्पनी के डायरेक्ट्रों को इस बात का डर था कि शिक्षा से भारतवासियों में कहीं राजनीतिक उथल-पुथल न हो जाय और अमेरिका की नई बस्तियों की तरह यह देश भी हमारे हाथ से न निकल जाय। लेकिन इंगलैन्ड में ऐसे पुरुष उत्पन्न होते रहे जो कम्पनी को इस कर्त्तव्य की ओर ध्यान दिलाते रहे कि भारतवासियों को शिक्षा दी जाय। पहिले-पहल कम्पनी ने इस ओर ध्यान न दिया लेकिन जब लार्ड मेकाले ऐसे बुद्धिमान और राजनीतिज्ञ पुरुष ने भारतवासियों की शिक्षा की समस्या को हाथ में लिया तो कम्पनी को इस ओर ध्यान देना पड़ा। मतलब यह कि कुछ तो समय की

---

*K. G. Saiyadain in the Educational System, (O.U.P.), Pp. 4-5.

पुकार से और कुछ कम्पनी की आवश्यकता की वजह से भारतवर्ष की शिक्षा समस्या अंधकार से प्रकाश की ओर आ गई। १८१३ ई० के बजट में शिक्षा प्रसार के लिए एक लाख रुपये की शानदार स्वीकृति हुई। यह धन भी जो भारतवर्ष ऐसे विस्तृत देश के लिए जलते तवे पर पानी के बूँदों के बराबर था पूरा ख़र्च न किया गया और दस-बारह बरस और इसी दशा में व्यतीत हो गये। सन् १८२४ ई० में शासन ने दो-तीन लाख रुपये वार्षिक तक ख़र्च किया और फिर सन् १८५४ ई० में शिक्षा की समस्या को नये सिरे से बड़े उत्साह से हाथ में लिया। इस समय भारतवर्ष में सर सैयद अहमद खाँ जैसी योग्यता के लोग मौजूद थे। और बहुत सोच-विचार के बाद तय हुआ कि पहले उच्च वर्ग के लोगों को शिक्षा दी जाय ताकि वह प्राकृतिक रूप से सर्वसाधारण को शिक्षा देने के साधन एकत्र कर सकें। यह बात बिलकुल ऐसी ही थी जैसे कि किसी चीज़ को इस तरह खड़ा कर देना कि भारी भाग ऊपर रहे और हल्का भाग नीचे। यदि ऊँचे घराने के लोग और निम्नवर्ग के लोगों में मेल-जोल और भाई चारा होता। सम्भव है कि यह रीति लाभप्रद भी प्रमाणित होती लेकिन इस रूप में उसका असफल रहना प्रगट है।

कदाचित यही दशा सन् १९०४ ई० तक रही। अब लार्ड कर्जन भारत के वायसराय ने शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया और तय किया कि प्राइमरी शिक्षा का प्रसार शासन का महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है। अतएव शिक्षा-व्यय ४० से ८० लाख तक बढ़ा दिये गये। यह धन भी देश की आवश्यकता के अनुसार अब भी बहुत थोड़ा था लेकिन सन् १८१३ ई० की एक लाख रुपये वार्षिक की सहायता की अपेक्षा काफी थी। एतदर्थ कुछ न कुछ शिक्षा देश में होती रही। सन् १९१३ ई० में स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले ने शासन का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहा कि देश में प्राइमरी शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय लेकिन गोखलेजी की यह सम्मति पीछे डाल दी गई। इसके पश्चात् सन् १९१४

ई० का महायुद्ध छिड़ गया। युद्ध की समाप्ति पर भारतवर्ष में सन् १९१९ ई० का गवर्नमेन्ट आफ़ इण्डिया ऐक्ट पास हुआ। इस पर शिक्षा की समस्या पर भी क़ानून था। इसके नियमानुसार म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को अधिकार दिया गया था कि वह अगर चाहें तो राज्य से आज्ञा लेने के बाद अपने-अपने क्षेत्र में ६ साल से १० साल की आयु तक के लड़कों के लिए अनिवार्य शिक्षा प्रचलित कर दें। बहुत से प्रान्त में यह अनिवार्य शिक्षा मुफ्त देने का प्रबन्ध हुआ। लेकिन बंगाल के विषय में यह लिखा था कि यह शिक्षा कदाचित् मुफ़्त न होगी। तात्पर्य यह कि अब भी प्रारम्भिक शिक्षा खींचातानी के रूप में रह गई।

वर्तमान दशा—अब वर्तमान दशा यह है कि देश में और विशेषकर हमारे प्रान्त के देहातों में शिक्षा का एक जाल-सा बिछा हुआ है। मगर ऐसा कि कमजोर और अपर्याप्त। कुछ गाँवों में कोई स्कूल नहीं है। किसी में कोई प्रारम्भिक पाठशाला है और किसी में इस्लामिया मकतब। किसी में प्राइमरी स्कूल है और किसी में मिडिल स्कूल। साधारण रूप से चार-चार और पाँच-पाँच गाँवों के लिए एक मिडिल स्कूल है और दो-तीन गाँव के लिए एक प्राइमरी स्कूल है। इन स्कूलों की दशा अब तक बहुत बुरी रही है। टूटी-फूटी इमारतें, बेकार फर्नीचर, अपवित्र वातावरण वही पुराने ढर्रे का पाठ्य-विषय, कम शिक्षित अध्यापक, मतलब प्रत्येक रूप से यह स्कूल एतराज़ के योग्य है। इसी कारण से न बच्चों में शिक्षा के प्रति शौक है न उनके माता-पिता में। न यह स्कूल विशेष सेवायें कर सके न उनमें इसकी योग्यता थी। परिणाम यह हुआ कि शिक्षा की समस्या ज्यों की त्यों रही। जो बच्चे कक्षा १ में नाम लिखाते थे इनमें से बहुत से दर्जा २ से भाग जाते थे और जो कक्षा २ से निकलते थे उनमें से प्रायः कक्षा ३ में उपस्थित न होते थे और कक्षा ३ पास करने के बाद कक्षा ४ में और भी कम बच्चे दाख़िल होते थे। इस

प्रकार से बहुत पर्याप्त शिक्षा का प्रयत्न बेकार जाता था। लेकिन बुनियादी शिक्षा के प्रचलित होने के साथ-साथ यह दशा अब बदल रही है। स्कूल में दिलचस्पी, उसके वातावरण में रुचि और घरेलू वातावरण के अनुसार शिक्षा पाठ्य-विषय जीवित और शिक्षा विधि चेतन स्वरूप धारण कर चुकी है। देहातों में स्कूलों की संख्या अब भी बहुत कम है लेकिन हमें आशा है कि संख्या बहुत अधिक हो जायगी; और ७ साल से लेकर १४ साल तक की आयु के बच्चों को अनिवार्य रूप से शिक्षा दी जायगी।

देहात में शिक्षा की दशा—भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के निवासी अधिकतर देहातों में बसे हैं और निर्धन कृषक हैं। यह अपने बच्चों को पैसा खर्च करके शिक्षा नहीं दिला सकते। यदि स्कूल किसी गाँव से दूर है तो गाँव के बच्चे स्कूल में जाने से भी आना-कानी करते हैं। परिणाम यह है कि अनिवार्य शिक्षा के न होने से देहात के बच्चे जहाँ तक हो सकता है शिक्षा से बचने का प्रयत्न करते हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि एक निर्धारित आयु तक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय। यह शिक्षा मुफ़्त हो। उसके घरेलू शिक्षा से सम्बन्ध हों। शिक्षा पाठ्य-विषय बच्चों की प्रवृत्ति के अनुसार लाभप्रद और दिलचस्प हो और शिक्षा विधि मनोविज्ञान के अनुसार काम आने वाली हो। भारतवर्षीय राष्ट्रीय शिक्षा या वर्धा स्कीम उन्हीं सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर निर्धारित की गई थी जैसा कि पिछले किसी अध्याय में वर्णित किया जा चुका है।

प्रश्न

१—"भारतवर्ष की शिक्षा की समस्या वास्तव में यहाँ की देहाती शिक्षा की समस्या है।" इस सिद्धान्त पर संक्षेप में विवेचना कीजिये।

२—देहात में शिक्षा के सिलसिले में कौन-कौन सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ? तुम उन पर कैसे अधिकार पा सकोगे ?

३—हमारे यहाँ देहाती शिक्षा में अब तक क्या खराबियाँ रही हैं ? उनको किस तरह दूर किया गया है ?

४—भारतवर्ष में देहाती शिक्षा पर एक संक्षिप्त परन्तु तर्कपूर्ण नोट लिखिये।

———

अध्याय १३

बुनियादी शिक्षा

ऐतिहासिक प्रस्तावना—सन् १९३८ ई० में यू० पी० के शासन ने एक कमेटी नियुक्त की जिसका काम यह था कि प्रान्त में प्राइमरी और सिकेन्ड्री शिक्षा की अवस्था पर सोच-विचार करने के बाद एक प्रयोगिक सिद्धान्त निर्माण करे। इस कमेटी के सिक्रेट्री खान बहादुर डाक्टर इबादुल रहमान खाँ साहब थे। इस कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार सरकार ने तै किया कि कुछ चुने हुए प्राइमरी स्कूलों में बेसिक एजूकेशन या बुनियादी शिक्षा प्रचलित कर दी जाय। अतएव खाँ साहब की संरक्षता में हमारे प्रान्त के अन्दर बुनियादी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ।

बुनियादी शिक्षा क्या है?—बुनियादी शिक्षा उस शिक्षा का नाम है जिसमें शिक्षा दीक्षा किसी खास बुनियादी (बेसिक) दस्तकारी (क्राफ्ट) के सिलसिले में दी जाय। शिक्षण विधियों में यह शिक्षा प्रणाली एक नई प्रणाली है। पश्चिमी देशों में कुछ इसी किस्म की रीतियों से शिक्षा समस्याओं को हल किया गया है। लेकिन हमारे देश में सबसे पहिले शायद गांधीजी ने इसका प्रचार किया और वर्धा-स्कीम के नाम से उसको हमारे सामने रक्खा। बेसिक एजूकेशन वर्धा स्कीम से कई बातों में बाजी ले गई है। शुरू-शुरू में बेसिक ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद में प्रयोग और निरीक्षण किये गये जिन के आधार पर वर्धा-स्कीम शिक्षा में उचित सुधार करने के बाद एक नई शिक्षा-प्रणाली निर्माण की गई जो बुनियादी शिक्षा के नाम से पुकारी गई।

बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त—बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक बुनियादों के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक बुनियादों पर बनी है। बच्चा एक जीता जागता प्रतिपल बढ़ता हुआ और उन्नति करता हुआ समाज का अंग है। वह बहुत सी प्राकृतिक बातों का मालिक है। बहुत सी बातें उसको सीखनी हैं और उनसे अपने मानसिक शक्ति को विकसित करना होगा। इसके अतिरिक्त उसे अपने स्वास्थ्य और अपने व्यवहार को भी सँवारना है। अपने पूर्वजों के कार्यों को उसे सीखना है और इस प्रकार सीखना है कि उनकी सहायता से वह अपना जीवन सफलतापूर्वक निर्वाह कर सके और स्वयं समाज का एक लाभप्रद अंग बन सके। बुनियादी शिक्षा में बच्चों की आवश्यकता को, उनकी योग्यता को, उनकी विशेषताओं को और उनकी मानसिक शक्तियों को दृष्टि में रक्खा गया है। यह ऐसी शिक्षा विधि निर्माण करती है जिससे बच्चों का सुन्दर जौहर सामने आ जाये। बच्चों की मानसिक शक्तियाँ सुन्दर रीति से विकसित हो जायँ और मनुष्य के भूतकालिक कार्यों का ज्ञान उन्हें एक दिलचस्प मनोवैज्ञानिक रीति से हो जाय। इस शिक्षा-प्रणाली का उद्देश्य यह है कि स्कूल बच्चों के लिए एक मुसीबत न बन जाय बल्कि वह खुशी की दिलचस्पियों का भण्डार हो जिसमें वह एक छोटे से परिवार के एक व्यक्ति का रूप रखता हो और अपने विचारों को विभिन्न रीतियों के द्वारा व्यक्त करता हो। अब तक पाठ्य-विषय के विभिन्न विषय एक दूसरे से अलग-अलग रहे हैं। बुनियादी शिक्षा ने इस बात की सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न किया है कि विषयों के आपस के यह विभेद समाप्त हो जायँ और अध्यापक पाठ्य-विषय को ज्ञान का भण्डार न समझे बल्कि समस्यायें और विचार व्यक्त करने का साधन निर्धारित करें। इस तरह इस शिक्षा में बच्चों को स्वतन्त्रतापूर्वक विचार व्यक्त करने का अवसर दिया जाता है। शिक्षा काल में बच्चों के पास-पड़ोस की दस्तकारियों को स्कूल और घर की एकता के लिए काम में लाया

जाता है। इस तरह भारतवर्ष में स्कूल और घर के बीच में जो खाई हो गई थी उसको पाटने के लिए प्रयत्न किया गया है। बच्चा काम करता है और ज्ञान प्राप्त करता है। वह स्वयं सोचता है और काम करता है। बुनियादी दस्तकारी के सिलसिले में वह विभिन्न ज्ञान से परिचित हो जाता है और इस तरह प्रयोग तथा निरीक्षण तथा प्रयोगिक समस्याओं से वह दिलचस्पी के साथ ज्ञान प्राप्त करता है। तात्पर्य यह कि बेसिक शिक्षा का उद्देश्य यह है कि ऐसे स्कूलों की दागबेल डालें जिनमें बच्चों के मस्तिष्क और शरीर के प्रत्येक पहलुओं के विकास को दृष्टि में रक्खा जाय। बेसिक स्कूलों में बच्चों को यह सिखाया जाता है कि वह कला-कौशल विशेष कर आर्ट और संगीत से आनन्द प्राप्त कर सकें ताकि स्वभावतः वह स्वतन्त्रता के साथ अपने अन्तः क्षोभ और विचारों को व्यक्त कर सकें।

बुनियादी शिक्षा का क्षेत्र—बुनियादी शिक्षा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। पहिले-पहल उसको केवल कक्षा १ और २ में आजमाया गया था। प्रयोगों से परिणाम आशा के अनुकूल बहुत ही सन्तोषप्रद प्रमाणित हुए तो उसको और ऊँचे दर्जों में भी आजमाया गया। यही नहीं बल्कि उसे अंग्रेज़ी स्कूलों में भी जारी किया गया। जो परिणाम मिले वह बहुत ही सुन्दर थे। अतएव आजकल वर्नाक्यूलर और एंग्लोवर्नाक्यूलर स्कूलों के पाठ्य-विषय बेसिक शिक्षा के अनुसार ही निर्माण किये गये हैं। और इस तरह वह खाईं जो देहाती और शहरी स्कूलों के बीच थी अब समाप्त हो गई है।

बुनियादी शिक्षा की जिन विषयों में शिक्षा दी जाती है उनकी विवेचना पहिले की जा चुकी है। उनको यहाँ दोहराना उचित नहीं है। इन सब विषयों में आर्ट और क्राफ्ट को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कारण यह है कि यही विषय वास्तव में पूरे पाठ्य विषय शिक्षा की जान है। शेष सब विषय इसी एक विषय के सिलसिले में पढ़ाये जाते हैं। इसी विषय की सहायता से बच्चे अपने विचारों को स्वतन्त्रता के

साथ प्रकट कर सकते हैं। इसी की उन्नति पर स्कूल की उन्नति निर्भर है। यही स्कूल को और कक्षाओं को सुन्दर दिलचस्प और काम में आने वाली बना सकता है। इसी में दिलचस्पी लेने से विद्यार्थी सफलता के साथ विद्या प्राप्त करते हैं।

अंग्रेज़ी को अब वह स्थान नहीं दिया गया जो पिछले समय था। इसके प्रतिकूल मातृभाषा को बहुत बड़ी महत्ता प्रदान की गई है। कारण यह कि मातृभाषा की शिक्षा पर ही राष्ट्रीय उन्नति निर्भर होती है। बच्चों को शुरू से ही सही पढ़ने, समझने और लिखने के अवसर न मिलेंगे तो उनकी शिक्षा अधूरी रह जायगी। बेसिक एजूकेशन इस दृष्टिकोण को समझता है और इसीलिए मातृभाषा पर ही ज़ोर देता है।

पाठ्य-विषय के दूसरे विषयों पर विचार करने से मालूम होगा कि यह सब विषय बच्चों की दिलचस्पी को सामने रखते हुए निर्धारित किये गये हैं। आर्थिक विषय बच्चों को अर्थ की समस्याओं से परिचित होने में सहायता देते हैं। जनरल साइन्स उनकी प्राकृतिक बातों को समझने के लिए और उनका कारण ज्ञात करने में सहायक होती है। गणित से प्रतिदिन के हिसाब-किताब की बातें सीखते हैं और शारीरिक शिक्षा के द्वारा अपने स्वास्थ्य की निगरानी करते हैं। इन विषयों में जो अन्य विषय नियुक्त किये गये हैं, वह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बच्चों के लिए दिलचस्प हैं और सीधे उनके नित्यप्रति के जीवन से सम्बन्ध रखते हैं।

संगीत को पाठ्य-विषय में इसलिए सम्मिलित किया गया है कि बच्चों को सुन्दर गीत सिखाये जायँ और याद कराये जायँ और अच्छे गानों को समझने की योग्यता उत्पन्न की जाय। ताली बजाने से या चलने में, ताली की थाप बताई जा सकती है। इस सिलसिले में इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि वही गीत बच्चों को सिखाये जायँ जो उनको अच्छे कामों और अच्छाइओं की ओर आकृष्ट करते हैं।

अंग्रेज़ी स्कूलों के लिए हिन्दी उर्दू में साहित्य की पुस्तकों में

बुनियादी शिक्षा ने एक नया और अनोखा पग बढ़ाया है। यह शिक्षा दोनों भाषाओं को एक ही श्रेणी में रखती है। उसकी धारणा है कि हिन्दोस्तानी भाषा जिसका प्रचार वर्धा-स्कीम ने किया है स्वयं भविष्य में उत्पन्न हो जायगी। हमारा काम यह नहीं है कि दोनों भाषाओं को तोड़-मरोड़ कर एक नई भाषा गढ़ें। हाँ यह सम्भव है कि दोनों भाषाओं की शिक्षा हम सब बच्चों को दें ताकि वह दोनों भाषाओं से कुछ न कुछ परिचित हो जायँ और यही जानकारी आगे चलकर एक नई हिन्दोस्तानी भाषा के जन्म का कारण हो। अतएव नई पुस्तकों में यह सिद्धान्त सामने रखा गया है कि तीन चौथाई भाग भाषा (जैसे हिन्दी) का है तो एक चौथाई दूसरी भाषा (उर्दू) का है। इस तरह एक ही पुस्तक में दोनों भाषायें होंगी और बच्चों को दोनों भाषाओं से प्रेम और समानता उत्पन्न हो जायगी। देहाती स्कूलों में हिन्दी और उर्दू में सिर्फ एक ही भाषा पढ़ने पर ज़ोर दिया गया है और दूसरी भाषा को एच्छिक विषय का स्थान दे दिया गया है।

नई पुस्तकें—बेसिक एजूकेशन के संस्थापकों ने उचित पाठ्य पुस्तकों की तैयारी में भी बहुत काम किया है। अतएव समय-समय पर शिक्षा विभाग ने बेसिक ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद के प्रिंसपल के द्वारा निरीक्षण में शिक्षाविदों से विभिन्न विषयों पर सुन्दर-सुन्दर पुस्तकें तैयार कराईं और उनको प्रकाशित कराया। यह पुस्तकें पुरानी पुस्तकों से भिन्न हैं। इनमें अच्छे-अच्छे दिलचस्प विषय हैं। सुन्दर चित्र हैं। विचार योग्य प्रश्न और निर्देश हैं। तात्पर्य यह कि इनमें "जान" है और इस तरह पुरानी बेजान पुस्तकों से बिलकुल ही भिन्न हैं। इन पुस्तकों के नमूनों पर ही विभाग दूसरे लेखकों से विभिन्न विषयों पर पुस्तकें माँग करके पाठ्य-विषय में सम्मिलित करता रहता है।

बुनियादी शिक्षा और वर्धा-स्कीम में अन्तर—प्रश्न यह होता है कि बुनियादी शिक्षा में और वर्धा स्कीम में क्या अन्तर है। वाह्य दृष्टि से दोनों एक ही चीज़ के दो रूप मालूम होते हैं लेकिन ऐसा

नहीं है। हम कुछ मोटी-मोटी बातें यहाँ लिखते हैं। (१) वर्धा-स्कीम में केन्द्रित कला पर बहुत ज़ोर दिया गया है यहाँ तक कि दिन भर की शिक्षा में आधे से अधिक समय इस पर ख़र्च हो जाता है। इससे यह डर है कि शिक्षा का उद्देश्य भ मृत हो जाय और एक सर्वसाधारण शिक्षा के बजाय केवल दस्तकारी की शिक्षा ही बच्चों के पल्ले न पड़े। बुनियादी शिक्षा में इस ओर ध्यान दिया गया है और आर्ट क्राफ्ट को शिक्षा का उद्देश्य नहीं बनाया है बल्कि उसे शिक्षा का साधन बनाया है। इस तरह इसने पाठ्य-विषय की महत्ता को तो बढ़ा दिया मगर उस पर जो अनुचित भार था वह समाप्त कर दिया।

(२) वर्धा-स्कीम में आर्ट कोई मुख्य विषय नहीं है बल्कि उसकी अपेक्षा ड्राइंग को पाठ्य-विषय में सम्मिलित किया है। आर्ट; ड्राइंग की अपेक्षा अधिक विस्तृत और संक्षिप्त विषय है। इसमें ड्राइंग, पेंटिंग, मिट्टी का काम और लकड़ी का काम इत्यादि चीज़ें आ जाती हैं। इस प्रकार आर्ट का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और बच्चों के विचार व्यक्त करने के लिए इस विस्तृत क्षेत्र में बहुत अधिक फैला हुआ है।

(३) वर्धा-स्कीम में यह सम्मति है कि शिक्षा का खर्च स्वयं स्कूल सहन करें। बुनियादी शिक्षा इसको मानने से इन्कार करती है। भारत-वर्षीय सभ्यता इस बात के विरुद्ध है कि स्वयं स्कूल अपने ख़र्चे का भोक्ता बने; अतः बुनियादी शिक्षा यह कहती है कि शिक्षा के ख़र्च जहाँ तक हो सकें कम से कम हों ताकि शासन या दूसरी शिक्षा संस्थाओं पर अधिक बोझ न पड़े। इसीलिए वह कहती है कि स्कूल नये किस्म के हों। जो छप्पर, फूस, खपरैल इत्यादि के बने हुए हों। खुली जगह पर हों। स्वास्थ्यप्रद जलवायु में हों। पौदों, गमलों और फूलों से ढके हुए हों, ताकि बच्चे उसमें दिलचस्पी ले सकें। शिक्षा के विषय में सामान पर भी बुनियादी शिक्षा इस बात पर ज़ोर देती है कि जहाँ तक हो सके बच्चों और अध्यापकों का तैयार किया हुआ सामान ही स्कूल

में प्रयोग हो। उनके बनाये हुए टाट प्रयोग किये जायँ। उनकी बनाई हुई रोशनाई से लिखा जाय। उनके तैयार किये हुए देशी रंगों से चित्र इत्यादि में भी रँग भरे जायँ। उन्हीं के बनाये हुए मिट्टी के माडल पाठों में प्रयोग किये जायँ। इत्यादि इत्यादि। बच्चे अपनी क्यारियों में तरकारियाँ इत्यादि बो सकें जो स्वयं उनके काम आ सकती हैं। इस प्रकार ख़र्च में बहुत कुछ कमी हो सकती है।

(४) वर्धा-स्कीम हिन्दोस्तानी भाषा के प्रचार पर बहुत ज़ोर देती है। वह चाहती है कि हिन्दी और उर्दू का भेद भाव समाप्त हो जाय और ऐसी भाषा का निर्माण हो कि जो न पाण्डित्यपूर्ण हिन्दी हो न आलिम फाजिल उर्दू। बुनियादी शिक्षा ने हिन्दी उर्दू के अन्तर को समाप्त कर देने के लिए कोई महत्त्वपूर्ण पग नहीं उठाया और दोनों भाषायें अपनी अपनी जगह पर उन्नति कर रही हैं।

(५) वर्धा-स्कीम ने देहाती और अंग्रेजी स्कूलों के बीच जो बड़ी खाईं है उसको पूरा करने के लिए कोई प्रयोगिक रीति नहीं अपनाई मगर बेसिक एजूकेशन ने इस खाईं को पूरा कर दिया और देहाती और शहरी स्कूलों में समानता उत्पन्न कर दी।

बुनियादी शिक्षा आजकल के ज़माने की महान् प्रयोगिक शिक्षा है। इसकी सफलता का गर्व हमारे प्रान्त के योग्य शिक्षा शास्त्री डाक्टर इबादुर्रहमान साहब को प्राप्त है। वास्तव में इस शिक्षा प्रबन्ध को यह सफलता प्राप्त न होती यदि उसको डाक्टर साहब ऐसे योग्य व्यक्ति न मिल जाते। डाक्टर साहब के मस्तिष्क की उपज ने पहिले ही बुनियादी शिक्षा की व्यापकता और लाभों का अनुमान लगा लिया था। और वह धीरे-धीरे एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा पर प्रयोग-करते रहे जिससे साधारणतः प्रान्त के और विशेषकर भारतवर्ष में शिक्षा की अवस्था में एक बहुत बड़ा इन्क़लाब होने की सम्भावना है। बुनियादी शिक्षा अब प्रयोग के क्षेत्र से निकल चुकी है। बल्कि यह कला निर्माण की अवस्था को पहुँच चुकी है और अब तो मंसूर के

अन्तिम पत्रों की तरह बुनियादी शिक्षा का भव्यभवन पर कुछ चित्र और निखारने की आवश्यकता रह गई है जो कि उसके रूप को और भी आकर्षक बना देगी।

प्रश्न

१—वर्तमान बेसिक स्कूलों और प्राचीन प्राइमरी स्कूलों में क्या अन्तर है? शिक्षा सिद्धान्त के किन नियमों पर अधिक ध्यान देने के कारण बेसिक स्कूल अन्य स्कूलों की अपेक्षा अच्छे समझे जाते हैं? [नार्मल]

२—समझाइये कि निम्नलिखित से आप क्या समझते हैं?
१—बुनियादी शिक्षा २—मान्टस्योरी की प्रणाली।
[सी० टी०]

३—आपके विचार में हमारे प्रान्त में बुनियादी शिक्षा की धीमी चाल का कारण क्या है? बुनियादी शिक्षा के प्रसार के लिए आप क्या करेंगे? [एल० टी०]

४—बुनियादी शिक्षा के मुख्य-मुख्य सिद्धान्त कहाँ-कहाँ से लिए गये हैं? [एल० टी०]

५—संयुक्तप्रान्त में बुनियादी शिक्षा के विकास में जो समस्यायें हल करनी पड़ीं उनको वर्णन कीजिये। [एल० टी०]

६—बेसिक स्कूलों के पाठ्य-विषय में सामाजिक विषय को जो स्थान दिया गया है उसकी विवेचना कीजिये। उनसे कौन सा उद्देश्य प्राप्त होगा? [एल० टी०]

७—बुनियादी शिक्षा में आर्ट क्यों सम्मिलित किया गया है?
[एल० टी०]

८—आप क्राफ्ट से क्या मतलब समझते हैं? एक बेसिक स्कूल में आप कौन से क्राफ्ट पढ़ायेंगे? और क्यों? इन दस्त-

कारियों को सिखाने के लिए किन-किन सामानों की आवश्यकता होगी ? [एल० टी०]

९—वर्तमान बुनियादी शिक्षा वर्धा-स्कीम से किन बातों में विभिन्न है ? उन सिद्धान्तों पर विवेचना कीजिये जिनके आधार पर हमारे प्रान्त की स्कीम में परिवर्तन किया गया है ? [एल० टी०]

१०—नये पाठ्य-विषय में ड्राइंग के बजाय आर्ट सम्मिलित किया गया है। इस परिवर्तन से जो विभिन्न लाभ प्राप्त किये जा सके हैं उन पर विवेचना कीजिये। [एल० टी०]

अध्याय १४

अध्यापक और स्वास्थ्य विज्ञान

अध्यापक को स्वास्थ्य विज्ञान, प्रारम्भिक सहायता और रोगी की सेवा के विषय में भी पूरी-पूरी जानकारी होना आवश्यक है ताकि वह अपने विद्यार्थियों को न केवल शारीरिक स्वच्छता और प्रारम्भिक सहायता इत्यादि पर पाठ पढ़ाये बल्कि कक्षा में विद्यार्थी के स्वास्थ्य पर भी ध्यान दे सके। इसके अतिरिक्त यह आवश्यक है कि वह यह मालूम करे कि कौन-कौन से बच्चे किन-किन शारीरिक खराबियों में फँसे हैं। किन बच्चों की दृष्टि कमज़ोर है। कौन कम या ऊँचा सुनते हैं। किन का स्वास्थ्य ख़राब रहता है और क्यों? कौन से बच्चों को कम खाने को मिलता है जिसके कारण वह कमज़ोर और दुबले-पतले रहते हैं और उनको उचित भोजन एकत्र करने के लिए क्या प्रबन्ध करना चाहिये। इन बातों के अतिरिक्त अध्यापक को स्कूल की सफ़ाई और उसकी हवा का भी विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है। स्कूल की इमारत उचित वायु-पानी के लिहाज़ से उचित स्थान पर बनाना तो स्कूल स्थापित करने वालों का काम है मगर जब एक इमारत में स्कूल स्थापित हो गया तो यह अध्यापक का काम है कि वह उसकी सफाई का ध्यान रखे। पानी की निकासी का उचित प्रबन्ध करे। नालियों, पेशाबखानों और पाखानों की सफ़ाई पर विशेष ध्यान दे और स्कूल को छूत की बीमारियों से बचाये रक्खे। इस सिलसिले में अध्यापक को क्या करना है? अब हम इसी विषय पर संक्षेप में विवेचन करेंगे।

शारीरिक विज्ञान की आवश्यकता—अध्यापक को शारीरिक विज्ञान से पूरी-पूरी जानकारी होना आवश्यक है। शरीर के भाग, उनके

काम, शरीर के आन्तरिक अंग और उनके कार्य, शारीरिक ढाँचा, पुट्ठे, नसों का काम, भोजन का पचना, रक्त और उसका दौरा। मस्तिष्क और उसके कार्य। तात्पर्य सब बातें अध्यापक को भली प्रकार मालूम होनी चाहिये। अध्यापक को शरीर के भागों का चित्र श्यामपट पर बनाने का अभ्यास होना भी आवश्यक है ताकि वह स्वास्थ्य विज्ञान पर पाठ देते समय उनको बिला झिझक बच्चों के सामने बना सकें। शरीर विज्ञान के विषय में पूर्ण ज्ञान किसी अच्छी पुस्तक से मालूम किया जा सकता है।*

बच्चों का शारीरिक विकास—अध्यापक को यह मालूम होना चाहिये कि साधारणत: शारीरिक विकास का अर्थ क्या है, ताकि उसकी सहायता से वह ज्ञात कर सके कि उसके विद्यार्थी उस ओर प्रगति कर रहे हैं अथवा नहीं। सम्भव है कुछ दशाओं में अध्यापक बच्चों के शरीर की ख़राबी दूर करने की योग्यता न रखता हो। मगर कम से कम उसको यह तो मालूम हो ही जायगा कि कौन सा बच्चा किस कारण से उन्नति करने से विवश है। यह जानकारी बहुत लाभप्रद है क्योंकि इस जानकारी से परिचित हो जाने के बाद बच्चों पर अनुचित भार नहीं पड़ता और न उनको आवश्यक बातों और निराशा से भागना पड़ता है। एक कमज़ोर बच्चे से उसके साहस से अधिक काम करने की आशा रखना और उस पर सख़्ती करना अन्याय है। उसकी निश्चित शक्ति यह चाहती है कि उसके साथ विशेष प्रकार से व्यवहार किया जाय और उसको जहाँ तक सम्भव हो स्वतंत्रता दी जाय। शारीरिक व्यायाम कराते समय इसको देखना चाहिये कि प्रत्येक बालक चोट खाये हुए उससे लाभ उठाता है या नहीं। कुछ दशाओं में आराम करना व्यायाम करने से अधिक लाभप्रद प्रमाणित हुआ है।

---

*लेखक की पुस्तक स्वास्थ्य मन्दाकिनी भाग १-४ सहायता के लिए अच्छी किताब प्रमाणित हो सकती है।

इसके अतिरिक्त अध्यापक को साधारण विकास की क्रमशः विशेषताओं से परिचित होना चाहिये और यह अनुमान करना चाहिये कि वह स्कूल का कितना काम भली प्रकार से कर सकता है ताकि उसी हिसाब से उस पर बोझ रखा जाय। बच्चों से जो काम लिया जाय वह उनकी आयु, उनके स्वास्थ्य और शारीरिक अंगों के स्वास्थ्य के लिहाज़ से लिया जाय वर्ना शिक्षा का उद्देश्य मृतप्राय हो जायगा।

पंच इन्द्रियाँ—इन्द्रियों में आँख, कान, नाक जीभ और त्वचा सम्मिलित हैं। उनकी शिक्षा अध्यापक के लिए बहुत ज़रूरी है। क्योंकि बच्चा बचपन से ही अपने ज्ञान को इन इन्द्रियों के द्वारा ही प्राप्त करता है। इन अंगों में आँख बड़ी महत्त्वपूर्ण है और शिक्षा समस्या में सबसे अधिक लाभप्रद प्रमाणित होती है। आँख के द्वारा सबसे अधिक काम होता है। मगर सबसे जल्दी उसी को हानि पहुँच जाने का सन्देह रहता है। प्रत्येक अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह आँख के सम्बन्ध में कुछ न कुछ ज्ञान से अवश्य परिचित हो। उसको मालूम होना चाहिये कि आँख से क्या काम लिया जाता है, उसको कैसे प्रकाश की आवश्यकता है और असाधारण परिश्रम से उसको किन-किन ख़तरों का सामना करना पड़ता है। यह बातें देखने में बहुत साधारण मालूम होती हैं लेकिन उनकी महत्ता से किसी को इन्कार नहीं हो सकता। उनके विषय में विस्तारपूर्वक बातें तो शारीरिक विज्ञान की पुस्तकों से मालूम की जा सकती हैं।

बच्चों के कान की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उसकी विशेषता और बनावट बचपन में भी लगभग वैसी ही होती है जैसी कि जवानी में। हाथ अध्यापक के लिए विशेष दिलचस्पी और महत्ता रखते हैं क्योंकि वह स्पर्श शक्ति और गति शक्ति का निर्माता है। इसीलिए हमारी बुनियादी शिक्षा में हाथ से काम करने पर ज़ोर दिया गया है।

अध्यापक का कर्त्तव्य—प्रकृति यह चाहती है कि प्रारम्भिक

आयु में बच्चा शारीरिक विकास पाये। इसलिए हमें यह देखना चाहिये कि स्कूल का प्रबन्ध इस प्राकृतिक कार्य-क्रम में तो रुकावट नहीं डालता। इसलिए अध्यापक के लिए आवश्यक है कि बच्चा जिस समय स्कूल में प्रवेश करे उसके शरीर की नाप करे। अर्थात् हम उसकी लम्बाई; उसकी छाती का घेरा और उसका वज़न नोट करें और साल में दो-तीन बार उसको कर लिया करें ताकि तुलना हो सके। इसके द्वारा हम मालूम कर सकते हैं कि बच्चा इतनी उन्नति कर रहा है जितनी उसे प्राप्त करनी चाहिये या नहीं। यदि हमको कोई त्रुटि मालूम हो तो आवश्यक है कि उसका कारण मालूम करने की कोशिश करें और पता लगायें कि स्कूल का जलवायु उसका उत्तरदायी है अथवा घर का वातावरण। सफल अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह उनको दूर करने का प्रयत्न करे क्योंकि इस समय यदि उसके शरीर की देख भाल न हो सकी तो भविष्य में वह फिर कभी न हो सकेगी। शिक्षा की न्यूनता तो जीवन में कभी न कभी किसी हद तक दूर की जा सकती है मगर शारीरिक निर्बलता और दुर्बलता का कोई इलाज नहीं।

शारीरिक स्वच्छता—अध्यापक को चाहिये कि बच्चों को शारीरिक स्वच्छता की ओर ध्यान दिलाये और उसकी महत्ता उन पर व्यक्त कर दे। बच्चे यदि सफ़ाई का स्वभाव बचपन में डालेंगे तो सदैव स्वच्छताप्रिय रहेंगे और इस तरह इन बीमारियों से बचे रहेंगे जो अस्वच्छता से उत्पन्न होती हैं। इस सिलसिले में यह बात याद रखनी चाहिये कि बच्चों पर अपरोक्षरूप से अपने अध्यापक का प्रभाव बहुत पड़ता है और वह उनकी आदतें शीघ्र ही अपना लेते हैं। इसलिए यदि अध्यापक स्वच्छताप्रिय होंगे तो उनके विद्यार्थी भी स्वच्छताप्रिय होंगे। इसी प्रकार यदि अध्यापक की आदतें अच्छी हैं, वह तम्बाकू और सिगरेट से बचता है तो उसके विद्यार्थी भी वैसी ही आदतें अपना लेंगे।

बच्चों को मुँह हाथ धोने और नहाने के लाभ बताने से पहिले खाल और पसीना पर एक संक्षिप्त मगर सारगर्भित पाठ देने से लाभ हो सकता है। बच्चे यह समझ लेंगे कि पसीना किस तरह छिद्रों में से निकलता है और किस तरह खाल पर मैल की परत जम जाती है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकर होती है। इसी सिलसिले में वह नहाने के नियमों से परिचित हो सकते हैं और यह भी जान सकते हैं कि किस ऋतु में कहाँ और कैसे पानी से नहाना चाहिये।

आजकल प्राय: स्कूलों के विद्यार्थी कब्ज़ की शिकायतों में फँसे हुए दिखाई देते हैं। उनको पाखाना साफ़ नहीं होता या दो बार की अपेक्षा एक बार होता है या कम होता है। इससे तबियत सुस्त रहती है। सिर में दर्द हो जाता है और काम करने को जी नहीं चाहता। कब्ज़ दूसरी बीमारियाँ भी पैदा करता है। इसलिए उसको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। प्राय: व्यायाम की कमी, पर्याप्त और उचित भोजन न मिलने, सिगरेट या बीड़ी पीने और समय पर पाखाना न जाने से यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इसलिये बच्चों को यह बताने की अत्यन्त आवश्यकता है कि प्रात:काल उठते ही इस क्रिया से निवृत्त हो जाना चाहिये और उसकी आदत डालनी चाहिये। प्राय: दो बार पाखाना जाना अच्छा होता है।

कब्ज़ दूर करने के लिए व्यायाम करना आवश्यक है। विशेषकर ऐसा व्यायाम करना चाहिये कि जिससे पेट के अंगों पर ज़ोर पड़े। ऐसे व्यायाम को अंग्रेजी में (Abdominal Exercises) कहते हैं। भोजन में दूध, फल, हरी तरकारियाँ जैसे पालक, सलाद, बन्दगोभी, मूली इत्यादि की अधिकता रहनी चाहिये। आलू, अरबी, चुकन्दर इत्यादि कब्ज़ बढ़ाने वाली तरकारियाँ होती हैं। फलों में अंजीर, मुनक्का, सेव, खजूर कब्ज़ के लिए लाभप्रद होते हैं। सुबह पाखाने जाने से पहले एक गिलास ठंडा पानी पीना भी लाभप्रद है।

शारीरिक स्वच्छता के सिलसिले में मुँह और दाँतों की सफ़ाई पर

भी जोर देना चाहिये। मुँह साफ रखना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। मुँह साफ़ न रहने से उसमें से बदबू आने लगती है और पायरिया की बीमारी पैदा हो जाती है जो एक अत्यन्त भयानक रोग है।

अध्यापक को चाहिये कि वह बच्चों में दातून करने की आदत डाले, उनको नाखून, बाल, कान, नाक और आँख की सफाई की तरफ़ आकर्षित करे। विशेषकर आँख की सफ़ाई पर बहुत अधिक ध्यान देना अनिवार्य है।

जैसा कि पहिले वर्णन किया जा चुका है, आँख मनुष्य के शरीर का अत्यन्त नाज़ुक और आवश्यक अंग है। हमारे स्कूलों के बच्चों की एक बहुत बड़ी संख्या आँख के रोगियों की दिखाई देती है। कुछ बच्चे पिछली पंक्ति से श्यामपट नहीं देख सकते। कुछ अगली पंक्ति से श्यामपट भली प्रकार नहीं देख सकते। कुछ बच्चों की आँखें लाल-लाल रहती हैं, कुछ की आँखों से पानी निकलता रहता है। कुछ बच्चों की आँखों में खुजली रहती है और कुछ के पयोटे सूजे रहते हैं। अध्यापक को चाहिये कि स्कूल के डाक्टर की सहायता से बच्चों की आँखों का निरीक्षण कभी-कभी करता रहे और यह मालूम करता रहे कि जिन बच्चों की आँखें ख़राब हैं वह क्यों ख़राब हैं और उनको अच्छा करने का क्या उपाय किया जा सकता है।

आँखों की बीमारियाँ प्रायः धूल आदि के पड़ जाने और दूसरे रोगियों के रोग के कीटाणु आँखों में पहुँचने के कारण पैदा होती हैं। इस प्रकार रोहे, डबडबी आँखें पलकों या पयोटों की सूजन इत्यादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। कम प्रकाश या अँधेरे में पढ़ने लिखने से या सीने-पिरोने से आँखें कमज़ोर हो जाती हैं। बहुत से विद्यार्थियों को दूर की चीज़ की रोशनी देखने के लिए चश्मा लगाना पड़ता है। इसका कारण यह है कि बहुत कम प्रकाश में पढ़ने या बहुत बारीक अक्षरों की पुस्तकें पढ़ने से दृष्टि कमज़ोर हो जाती है।

पढ़ने के लिए न तो प्रकाश बहुत तेज़ हो और न बहुत हल्का। प्राय वह प्रकाश अच्छा समझा जाता है जिसमें पुस्तक को ११ इंच की दूरी पर रखने से उसको पढ़ने में तनिक भी ज़ोर न पड़े। अध्यापक को चाहिए कि बच्चों को यह बताये कि वह किस तरह बैठें और प्रकाश किस ओर रक्खें कि आँख पर ज़ोर न पड़े। पढ़ते समय सीधे पीछे की ओर तन कर बैठना चाहिये जिससे सिर ऊपर की ओर रहे। आगे की ओर झुक कर बैठना ठीक नहीं है। लैम्प को बायें हाथ की ओर इस प्रकार रखना चाहिये कि प्रकाश पुस्तक या कापी पर तो पड़े मगर आँख पर न पड़े। आँखों और किताबों के बीच १८ इंच की दूरी होनी चाहिये।

अगर किसी बच्चे को डाक्टर निरीक्षण करने के बाद चश्मा खरीदने का आदेश दे तो उसे चश्मा तुरन्त खरीद लेना चाहिये। चश्मा लगाने से आँखों की दृष्टि अच्छी होने लगती है मगर चश्मा न लगाने से दृष्टि कम होती जाती है।

आँखों को धूल आदि से बहुत हानि पहुँचती है। इसलिए बच्चों को यह सिखाने की आवश्यकता है कि आँखे किस तरह साफ रक्खी जायँ, कैसे धूल और धूप से बचाई जायँ। प्रतिदिन प्रातःकाल आँखों को ठंडे पानी से धोना पर्याप्त है। यदि आँखे मैली हों, उनमें लाली हो या कीचड़ आता हो तो अर्क गुलाब या पानी में फिटकरी घोल कर उससे धोना चाहिये। आधी छटाँक पानी में ५ रत्ती फिटकरी काफी है। त्रिफला (हर, बहेड़ा, आँवला) का पानी भी बहुत लाभप्रद होता है। आँखों में कोई रोग हो तो अच्छा यह है कि आँखों के किसी योग्य डाक्टर से सम्मति ले ली जाय।

व्यायाम--बच्चों की शारीरिक उन्नति के लिए शीघ्र पचने वाला भोजन, ताज़ी हवा, उचित गर्मी और साफ़ पानी बहुत आवश्यक चीज़ें हैं। इसके अतिरिक्त व्यायाम की भी आवश्यकता होती है। व्यायाम

करने से शरीर के सब पुट्ठों का कार्य होता रहता है। वह सिकुड़ते और फैलते हैं जिसकी वजह से ख़ून का चक्कर ख़ूब होता रहता है और वह मज़बूत हो जाते हैं। यही नहीं, बल्कि व्यायाम करने से शरीर के सब अंग अपना-अपना काम जल्दी-जल्दी करने से शक्तिशाली हो जाते हैं।

इसी सिलसिले में अध्यापक को चाहिये कि वह प्रत्येक बच्चे को उसके साहस और शक्ति के लिहाज़ से व्यायाम कराये। यदि बच्चा अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम करेगा तो वह उसके लिए हानिकर होगी। सब बच्चों के लिए व्यायाम का एक ही पैमाना निर्धारित कर देना एक बहुत बड़ी ग़लती है जिससे अध्यापक को बचना चाहिये।

स्कूल की सफ़ाई--स्कूल की सफाई के लिए प्रायः स्कूल में एक फर्राश होता है और एक मेहतर। फर्राश प्रतिदिन स्कूल प्रारम्भ होने से पहिले कमरे खोलता है। डेस्कों और बेंचों को साफ करता है और फर्श की सफाई करा देता है। मेहतर स्कल के आँगन को, पाखानों, पेशाबखानों और नालियों को साफ करता है और फिनायल से धो देता है। मगर इतने प्रबन्ध पर भी यह हो सकता है कि स्कूल में सफाई अधूरी हो। स्कूल के विद्यार्थी स्कूल की सफाई पर ध्यान नहीं देंगे तो हर तरफ गन्दगी दिखाई दे सकती है। प्रायः बच्चों को थूकने की आदत होती है कि जहाँ जी चाहा थूक दिया। यह बड़ा गन्दा स्वभाव है। अध्यापक को चाहिये कि वह इसकी रोक थाम करे। इसी प्रकार बेकार काग़ज़ों को और क़लम या पेंसिल बनाकर उसकी छीलन को इधर-उधर डाल देना बुरी आदत है। स्कूल में स्थान-स्थान पर कूड़े के बर्तन रखना चाहिये और बच्चों को आदत डालनी चाहिये कि वह जब कोई चीज़ फेंकें तो उसी बर्तन में फेकें।

प्रायः बच्चे कक्षा के फर्श को रोशनाई के छींटों से खराब कर देते हैं या दीवारों पर पेंसिल से लिखते हैं। कुछ बच्चे किसी नोकदार चीज़ से दीवार को, फर्श को, श्यामपट को, बेंच को या डेस्क को खुरच

डालते हैं; यह भी बुरी आदत है। इन सब की रोक थाम अध्यापक के लिए आवश्यक है।

प्राय: स्कूलों में हेडमास्टर और अध्यापक कुछ ऐसे लड़के नियुक्त कर देते हैं जो स्वास्थ्य के सिद्धान्तों पर सख़्ती के साथ चलते हैं। उनको अंग्रेज़ी में प्राय: Health Prefects कहते हैं। यह विद्यार्थी अपनी-अपनी कक्षाओं के साथियों को स्कूल व उसके कमरे साफ रखने का निर्देश करते रहते हैं; और गन्दगी फैलाने से रोकते हैं। कुछ स्कूलों में स्वास्थ्य सप्ताह भी मनाया जाता है जिसमें स्कूल के सब विद्यार्थी स्कूल की सफाई में लगते हैं। फ़र्श और फर्नीचर धोते हैं। किवाड़ों और शीशों को साफ़ करते हैं। दीवारों और छतों पर से मकड़ी के जाले हटाते हैं। विद्यार्थी और अध्यापक सभा में स्वास्थ्य विज्ञान पर भाषण देते हैं और निबन्ध पढ़ते हैं। प्राय: स्वास्थ्य की प्रदर्शनी भी लगाते हैं। तात्पर्य यह कि पूरे सप्ताह तक स्वास्थ्य के विषय पर चर्चा रहती है जिससे बच्चों में अपनी शारीरिक स्वच्छता के अतिरिक्त स्कूल की सफाई के विषय में भी पूरी पूरी जानकारी हो जाती है और उनको प्रयोगिक रूप में सफाई के काम करने के अवसर मिल जाते हैं।

प्रारम्भिक चिकित्सा और सेवा—गुरु को प्रारम्भिक चिकित्सा और रोगी की सेवा के विषय में भी पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। प्राय: ऐसा होता है कि बच्चों को खेल कूद में चोट लग जाती है। कोई हड्डी टूट जाती है या कहीं से खून निकलने लगता है। कभी-कभी कोई बेहोश हो जाता है। गर्मी के दिनों में जब बहुत लू चलती है तो किसी को लू लग जाती है, या आग में कोई जल जाता है। ऐसे अवसरों पर हमें इस बात की आवश्यकता होती है कि हम रोगी को कोई न कोई सहायता पहुँचायें। यदि किसी मनुष्य के शरीर से ख़ून निकल रहा है तो हमें ऐसा उपाय करना चाहिये कि ख़ून तुरन्त बन्द हो जाय। यदि किसी के हाथ की या पैर की हड्डी टूट जाय तो

डाक्टर के आने तक हमें ऐसे उपाय प्रयोग में लाने चाहिये कि रोगी को कष्ट से बचायें। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य बेहोश हो जाता है तो उस अवस्था में हमारा कर्तव्य है कि हम उस मनुष्य को होश में लाने का प्रयत्न करें और यदि वह होश में नहीं आता है तो ऐसे उपाय करें कि डाक्टर साहब के आने तक रोगी को अधिक कष्ट न हो।

डाक्टर साहब के आने से पहिले या डाक्टरी सहायता से पहिले किसी रोगी की जो कुछ भी सहायता हम कर सकते हैं उसको "प्रारम्भिक चिकित्सा" (First Aid) कहते हैं। गुरु को प्रारम्भिक चिकित्सा के विषय में इतना अभ्यास होना चाहिये कि इधर कोई बात हुई और उधर उसने प्रारम्भिक सहायता पहुँचाई। कभी कभी ऐसा होता है कि रोगी को तुरन्त सहायता न पहुँची तो वह डाक्टर के आने से पहिले मर जाता है। इससे तुम अनुमान लगा सकते हो कि प्रारम्भिक सहायता कितनी आवश्यक है। प्रारम्भिक चिकित्सा में प्राय. पट्टियाँ बाँधने की आवश्यकता पड़ जाती है। इसलिए पट्टियों के विषय में बातें जानना आवश्यक है।

पट्टियाँ—पट्टी बांधने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि--

१—यदि घाव पर कोई दवा लगी है या गद्दी और रुई रक्खी है तो वह अपने स्थान से हटने न पाये और स्थिर रहे।

२--जिस स्थान पर पट्टी बंधी है वहाँ ठेस न लगने पाये और रोगी को कष्ट न होने पाये।

३—घाव के अन्दर बाहर धूल न पड़े, कीटाणु न घुसें।

४--रोगी के दर्द में कमी हो।

दो प्रकार की पट्टियाँ—पट्टियाँ दो प्रकार की होती हैं—

१—लम्बी पट्टी (Roller Bandage) जो जख़्म के चारों ओर लपेट कर बाँधी जाती है।

२—तिकोनी पट्टी (Triangular Bandage) जिसे मोड़ कर शरीर के विभिन्न भागों पर बाँधते हैं।

लम्बी पट्टी--लम्बी पट्टी के बाँधने के सम्बन्ध में तुमको कई बातों का ध्यान रखना चाहिये।

१--पट्टी बाँधने से पहिले जख़्मी भाग को ठीक ढंग से रख लो। जैसे यदि हाथ की पट्टी बाँधना है तो बाजू को इस तरह मोड़ लो कि कोहिनी पर समकोण बन जाये। हथेली छाती की ओर रहे और अंगूठा ऊपर की ओर।

२--पट्टी बाँधना आरम्भ करो तो रोगी के सामने से पट्टी बाँधना आरम्भ करो।

३—पट्टी जख़्मी भाग से चिपकी रहनी चाहिये। न तो इतनी कस कर बाँधो कि ख़ून का चलना बन्द हो जाय और न इतनी ढीली ही कि शीघ्र ही खुल जाय।

४—गाँठ या तो ऊपर की ओर रहे या बाहर की ओर, नहीं तो शरीर में चुभेगी।

५--यदि तुमको हाथ या पैर में पट्टियाँ बाँधनी हैं तो कलाई और टखने से प्रारम्भ करके ऊपर की ओर लपेटो। पहली लपेट के ऊपर दूसरी लपेट इस प्रकार लपेटो कि पहिली लपेट दूसरी से लगभग दो तिहाई ढक जाये।

६--अंग के जोड़ों पर अंग्रेज़ी के 8 के अंक की तरह पट्टी बाँधो।

७--प्रत्येक लपेट को बराबर कसना चाहिये।

८—पट्टी की आखिरी लपेट के सिरे को पिन लगाकर पिछली लपेट से बाँध दो।

तिकोनी पट्टी—प्रारम्भिक चिकित्सा के लिए सब से अच्छी पट्टी तिकोनी पट्टी होती है। लगभग प्रत्येक अवसरों पर काम आ सकती है। किसी साफ़ कपड़े का ३८ वर्ग इंच टुकड़े कर उसको बीच में से
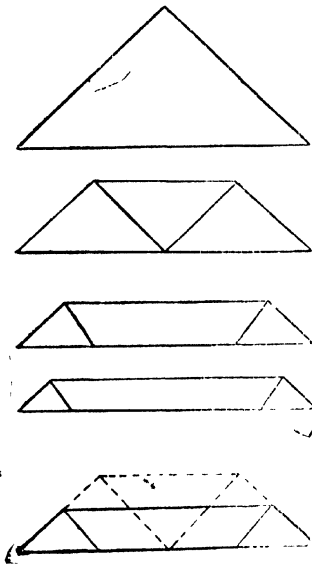
आड़ा काट लो। तुम्हारे पास दो तिकोनी पट्टियाँ हो जायँगी। त्रिभुजाकार पट्टी के दो बराबर वाले किनारे लम्बाई में ३८, ३८ इंच होंगे। यह पट्टी जवान आदमी के शरीर के प्रत्येक भाग पर ठीक से बाँधी जा सकती है। तिकोनी पट्टी की कई विशेषतायें होती हैं। इसको आवश्यकता के अनुसार चौड़ी या पतली बना सकते हैं इसके अतिरिक्त इसको बीच में लपेटने से यह मोटी और गद्देदार बन सकती है। उसको लपेटने से उसके किनारे पर अधिक तहें नहीं होतीं इस लिये गाँठ लगाने में बड़ी सरलता होती है।

गाँठ लगाना—गाँठ दो प्रकार की होती हैं। एक रीफनाट और दूसरी ग्रेनीनाट। पट्टी बाँधने में रीफनाट को काम में लाना चाहिये क्योंकि ग्रेनीनाट शरीर में चुभने लगती है। पट्टी को इस रीति से रखना चाहिये कि जहाँ गाँठ लगाई जाये वह स्थान चोट या जख़्म से दूर हो।
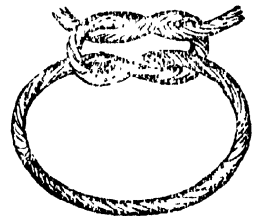
झोली या स्लिंग—जब कभी हाथ या बाँह में चोट लगती है तो उसके लटके रहने से कन्धे पर बोझ पड़ता है। जिस भाग में चोट लगती है उसको आराम नहीं मिलता। इसलिए जिस हाथ में चोट लगी है उसको एक झोली के आकार की पट्टी में लटका दिया जाता

है। इस पट्टी को झोली या स्लिंग कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है। एक बड़ी झोली दूसरी छोटी। बड़ी झोली पूरे हाथ को सीधे रखने के लिए काम में लाई जाती है और छोटी झोली केवल हाथ के अगले भाग को साधने के लिए काम में लाई जाती है।

बड़ी झोली--इसके बाँधने का नियम यह है कि तिकोनी पट्टी को पूरा खोल लो। एक सिरा उस कन्धे पर रक्खो जिसकी ओर का हाथ जख़्मी नहीं है। अब उसको गर्दन के पीछे से इस तरह ले जाओ कि टूटे हुए हाथ के कन्धे पर आवे। दूसरा सिरा छाती पर लटका रहने दो। अब जख़्मी हाथ को उठाकर पट्टी के ऊपर से रोगी के पेट पर इस प्रकार लगाओ कि पूरा बाज़ू पेट पर रहे और अंगूठा ठुड्डी की ओर। इसके बाद पट्टी का लटका हुआ सिरा हाथ पर ले आओ और ज़ख्मी हाथ के कन्धे पर ले जाओ; फिर हाथ को झोली में लटका कर गाँठ लगा दो। अब पट्टी की नोकको कोहनी पर से मोड़कर ऊपर से काँटा या आलपीन लगा दो।

छोटी झोली--इस झोली में पट्टी दोहरी होती है। इसको भी बड़ी झोली की तरह बाँधते हैं। यह हाथ के अगले भाग को साधती

है। इनमें पट्टी की नोक को मोड़ने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह पहिले ही से पट्टी में मुड़ जाती है।

इन बातों के अतिरिक्त अध्यापक को पट्टियाँ बाँधने की रीतियाँ मालूम होनी चाहिये जो किसी अच्छी प्रारम्भिक चिकित्सा की पुस्तक से मालूम हो सकती हैं।

रोगी की सेवा—एक और विषय जो अध्यापक के लिए सीखना अत्यन्त आवश्यक है रोगी की सेवा है। रोगी को इस बात की आवश्यकता होती है कि कोई उसकी देख भाल करे। कोई उसे समय पर दवा पिलाये, उचित स्थान पर लिटाये। डाक्टर की आज्ञानुसार भोजन दे और दूसरी सेवायें भी करे। रोगी की इस देख भाल को हम "रोगी की सेवा" कहते हैं। जिस प्रकार हम किसी रोगी को तुरन्त प्रारम्भिक चिकित्सा या फर्स्ट एड न पहुँचायें तो इस बात का डर रहता है कि कहीं रोगी का कष्ट और न बढ़ जाय, ख़ून अधिक न निकल जाय या टूटी हुई हड्डी पर अधिक सूजन न हो जाय न बेहोशी में रोगी का अन्त ही हो जाये; उसी प्रकार हमें इस बात की आवश्यकता है कि यदि हमारे घर में कोई रोगी है जिसे बुखार है, या चेचक निकली हैं, या मोतीझाला है या और कोई रोग है तो हम उसकी उचित सेवा करें ताकि उसका रोग बढ़ने न पाये।

रोगी का कमरा—रोगी के लिए सब से पहिले उचित कमरे की आवश्यकता पड़ती है जहाँ कि उसे लिटाया जाय। रोगी का कमरा काफी बड़ा होना चाहिये ताकि उसे स्वच्छ वायु भली प्रकार मिल सके। यह कमरा सड़क से दूर हो। यदि सड़क के पास होगा तो आने जाने वाली गाड़ियों और लोगों के शोर गुल से, उनके चलने से जो धूल उड़ती है उससे, रोगी को बहुत कष्ट होगा। सड़क की नालियों के कीटाणु भी कमरे के अन्दर आ जायेंगे और कमरे की हवा को गन्दा कर देंगे।
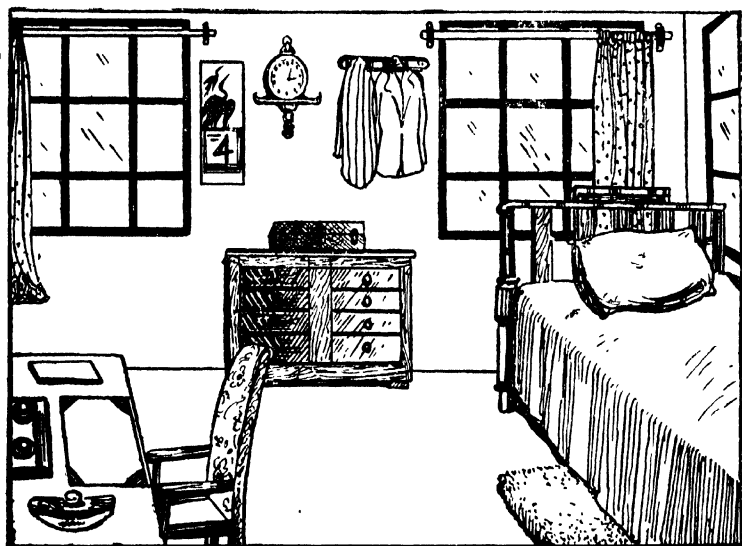
रोगी के कमरे में नमी बिलकुल न होनी चाहिये। सीलन में कीटाणुओं की उत्पत्ति अधिक होती है। यदि कमरा सूखा होगा तो उसकी वायु स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छी होगी। इन बातों के अतिरिक्त रोगी का कमरा ऐसा होना चाहिये कि उसमें सूर्य का प्रकाश खूब आये। उसे साफ भी होना चाहिये। वह ऐसे भाग में हो जहाँ पर सर्दी गर्मी की अधिकता न हो।

रोगी की चारपाई—रोगीकी चारपाई ऐसी होनी चाहिये कि वह ढीली, गन्दी, खटमल वाली न हो और सरलतापूर्वक धोई जा सके। अस्पतालों में लोहे की स्प्रिङ्गदार तारों वाली चारपाई होती है जिसके पायों में पहिये भी लगे होते हैं। इस चारपाई को जिधर चाहें सरलता से ले जा सकते हैं और रोगी को कष्ट नहीं होता।

रोगी का बिस्तर—रोगी के बिस्तर के विषय में तुम पढ़ चुके हो कि कैसा होना चाहिये। रोगी का बिस्तर कोमल, गुदगुदा और मोटा होना चाहिये। ऊपर साफ चादर रहती है। सिर के नीचे का

तकिया ऐसा होना चाहिये जो बहुत मोटा न हो। ओढ़ने के लिए उचित चादर या कम्बल होना चाहिये। बिस्तर की चादर और तकिया का गिलाफ़ मैला होने पर तुरन्त बदल देना चाहिये नहीं तो उसमें से दुर्गन्ध आने लगती है।

रोगी के कमरे का दूसरा सामान—रोगी के कमरे में निम्न-लिखित सामान की आवश्यकता है।

(१) **दो मेजें**—एक रोगी के पास रक्खी हो ताकि रोगी का तौलिया उस पर रक्खा रहे या रोगी अपने खाने पीने की चीज़ों को उस पर रख कर खाये और पिये। दूसरी मेज़ एक ओर ज़रा दूर रक्खी हो, उस पर रोगी की दवाइयों की शीशियाँ इत्यादि रक्खी हों। थर्मामीटर भी उसी मेज़ पर रक्खा जा सकता है।

(२) **दो एक कुर्सियाँ**—ये कुर्सियाँ सेवा करने वाले के लिए या रोगी के देखने वालों के लिए हैं। जहाँ तक हो सके रोगी के पास अधिक मनुष्य इकत्र न हों। लोग रोगी के पलंग पर भी न बैठें, नहीं तो रोगी को कष्ट होगा और स्वयं उनके भी रोग पकड़ने का डर होगा।

(३) **आराम कुर्सी**—रोगी जब अच्छा होने लगता है तो वह आराम कुर्सी पर बैठना पसन्द करता है; इसलिए कमरे में आराम कुर्सी हो तो अच्छा है।

(४) **साधारण अलमारी या जालीदार अलमारी**—दवा की शीशियाँ इत्यादि रखने के लिए या खाने पीने की वस्तुयें रखने के लिए ऐसी अलमारी का होना अत्यन्त आवश्यक है।

(५) **मच्छरदानी**—मच्छर और मक्खियों से रोगी को बचाने के लिए और उसको अच्छी नींद सुलाने के लिए रोगी के कमरे में मच्छरदानी या मसहरी होनी चाहिये।

(६) इनके अतिरिक्त उगलदान, अनीमा (पाखाना कराने का),

बर्फ का थैला, पाखाने-पेशाब के बर्तन, रोगी के सेंक के लिए रबड़ का थैला, तौलिया, दरवाजे के परदे या चिकें इत्यादि भी रोगी के कमरे के लिए आवश्यक हैं।

रोगी के बिस्तर की देख भाल—आप जानते हैं कि रोगी का बिस्तर कैसा होना चाहिये और क्यों? रोगी के बिस्तर के ऊपर की चादर ऐसी हो कि नीचे बहुत न लटकी रहे और उस पर कोई शिकन या सिकुड़न न हो; नहीं तो रोगी के बदन पर चुभेगी। रोगी की रजाई या कम्बल के चारों ओर एक सूती गिलाफ हो तो अच्छा है ताकि जब मैला हो जाये तो तुरन्त धुला दिया जाय।

इस बात का ध्यान रहे कि रोगी को भारी और गरम कपड़ों की अपेक्षा हल्के और गरम कपड़ों में अधिक आराम मिलता है। रोगी के कपड़ों को यदि हो सके तो थोड़ी देर में सुखा देना चाहिये।

रोगी के बिस्तर और चादर को बदलना--यदि रोगी उठ सकता है तो उसके बिस्तर को या चादर को बदलना सरल है। परन्तु जब रोगी के शरीर में स्वयं उठने की शक्ति न हो तो निम्नलिखित उपाय काम में लाना चाहिये।

रोगी को धीरे से बिस्तर के एक ओर कर दो। अब बिस्तर की जो जगह खाली रह गई है उस तरफ चादर की लम्बाई को लगभग ११ फुट लपेट दो। ऐसा करने से बिस्तर की लम्बाई में उतनी ही जगह खाली हो जायगी। अब धुली हुई चादर जिसको मैली चादर की जगह बिछानी है और जो पहिले से लम्बाई में लपेटी रक्खी है, बिस्तर में इस प्रकार रक्खो कि लपेट बीच में रोगी की तरफ़ रहे। इस लपेट को बिस्तर की खाली जगह पर खोल दो और रोगी को उस खुली हुई चादर पर हाथों के सहारे लिटा दो। मैली चादर को हटा दो और नई चादर की लपेट पूरे बिस्तर पर फैला दो।

रोगी का भोजन—रोगी को खाना खिलाने में बड़ी चतुरता की

आवश्यकता है। रोगी का स्वभाव कभी कभी चिड़चिड़ा हो जाता है। वह बहुत कमज़ोर हो जाता है। प्रायः उठा तक नहीं जाता। साधारण स्वस्थ मनुष्य का भोजन उसको अहितकर होता है। उसे डाक्टर की बताई हुई चीज़ें देनी पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त समय का बड़ा ध्यान रखना पड़ता है। इन्हीं कारणों से इस बात की आवश्यकता है कि रोगी को खाना खिलाने में बड़ी चतुरता बरतनी चाहिये।

रोगी के सामने वही खाद्य पदार्थ लाना चाहिये जो डाक्टर या हकीम ने बताया हो और जो भली प्रकार पका हो। गन्दे बर्तनों में खाना कदापि न बनाया गया हो और न ऐसे बर्तनों में खाना डाल कर रोगी के सामने लाओ। जो कुछ भी रोगी को खिलाओ वह ताज़ी पकी हुई चीज़ हो। बासी चीज़ रोगी के सामने कदापि मत लाओ।

रोगी के सामने जो चीज़ें ले जाई जाँय उनको सुन्दरता से थाली में सजा कर ले जाया जाय। हर एक चीज़ अलग अलग प्यालियों या तश्तरियों में रक्खो। फिर उनको सफाई से एक साफ धुले हुए कपड़े से ढक दो। रोगी के सामने थाली से निकालकर एक एक चीज़ रक्खो। बहुत सी चीज़ों को एक दम से सामने रखने से रोगी घबड़ा जायेगा। खा चुकने के बाद प्याले और तश्तरियों को सामने से उठाते जाना चाहिए।

रोगी का भोजन, दूध आदि डाक्टर की आज्ञानुसार ठंडा या गरम होना चाहिये।

रोगी को सोते से जगाकर खाना मत खिलाओ। हाँ, यदि डाक्टर ने विशेष रूप से ऐसा करने का आदेश दिया है तो कोई हर्ज नहीं है। रोगी को दिन में या रात में जब आवश्यकता हो खाना दिया जा सकता है।

रोगी खाना खा चुके तो उसका हाथ और मुँह अवश्य धुलवा दो।

खाने से पहिले भी ऐसा करना आवश्यक है। यदि रोगी में स्वयं हाथ मुँह धोने की शक्ति न हो तो कपड़ा भिगो कर निचोड़ दो और उससे दो बार मुँह पोंछ दो।

रोगी को नहलाना अथवा स्पंज करना—कभी-कभी डाक्टर रोगी को नहाने या टब में बिठाने की आज्ञा देते हैं। नहाने के लिये (१) खूब गरम पानी से जिसका तापक्रम ९८ डिग्री से लेकर १०५ डिग्री तक हो या (२) गुनगुना पानी जिसका तापक्रम ९२ से लेकर ९८ तक हो या (३) साधारण गरम पानी जिसका तापक्रम ८५ से लेकर ९२ तक हो या (४) ठंडे पानी से जिसका तापक्रम ५६ से लेकर ६५ तक हो। खूब गरम पानी में १० से लेकर १५ मिनट तक नहलाया जा सकता है। गुनगुने और साधारण गरम पानी में १५ से लेकर २१ मिनट तक और ठंडे पानी में ५ मिनट से लेकर ६ मिनट तक नहाने के बाद ही तुरन्त साफ तौलिये से शरीर पोंछ डालना चाहिये और धुले हुये कपड़े पहिना देना चाहिये। तौलिया और कपड़े पहिले ही से तैयार रखने चाहिये। नहाने के पानी के तापक्रम के विषय में डा० से अनुमति ले लेनी चाहिए।

स्पंज करने का अर्थ यह है कि पानी में स्पंज या तौलिया भिगो कर निचोड़ डालो और उससे रोगी के शरीर को साफ करदो। बराबर तौलिया को पानी में भिगो कर निचोड़ो और उसे शरीर पर फेरो। जो पानी तुम व्यवहार करोगे उसका तापक्रम उतना ही हो जितना नहाने के पानी का बताया गया है। नहलाने या टब में बिठाने या स्पंज करने में इस बात का ध्यान रहे कि रोगी के शरीर को हवा के झोंके कदापि न लगने पायें।

रोगी की दशा को लिखित करना—प्राय: डाक्टर चाहते हैं कि उनको दिन की विभिन्न दशायें, जैसे रोगी के १. बुखार, २. नाड़ी, ३. साँस, ४. पाखाना और ५. पेशाब के विषय में ठीक-

ठीक ज्ञान प्राप्त हो जाय। इसलिए हमको चाहिये कि तीन-तीन चार-चार घण्टों के अन्तर से रोगी का १. तापक्रम, २. नाड़ी की चाल, ३. साँस की दशा, ४. पाखाना और ५. पेशाब की जानकारी मालूम करें। पड़ती है और सब बातों को एक कागज़ पर लिखते जायँ है। इस काम के लिए हम एक नकशा तैयार कर सकते हैं जिसमें सब बातों को नोट कर लिया जाये। इस चार्ट में बुखार, नाड़ी, साँस, दस्त, पेशाब इत्यादि सब बातों की दशायें लिखने के लिए खाने बना लेने चाहिए यह पूरा नकशा महीने भर के लिए पर्याप्त होगा। नकशे में सबसे ऊपर महीने भर के दिन लिखने चाहिए। प्रत्येक दन के नीचे छः छ खाने रखने चाहिएँ जिनमें चार चार घंटे के अन्तर से समय बनाये जायँ।

थर्मामीटर लगाना—एक थर्मामीटर को ध्यान से देखिये। नीचे पारे की घुण्डी है। इसके ऊपर शीशे की नली में एक बहुत बारीक लकीर सी है। इसके अन्दर पारा चढ़ जाता है-या उतर आता है। यदि बुखार होता है तो पारा ऊपर चढ़ता है और यदि कमज़ोरी होती है तो पारा नीचे उतर आता है। थर्मामीटर के ऊपर चिन्ह बने हैं और अंकों में डिग्रियाँ भी लिखी हैं। स्वस्थ मनुष्य का तापक्रम ६८.४ डिग्री होता है। यदि उससे अधिक तापक्रम है तो समझ लीजिये कि बुखार है। कम होने की दशा में रोगी को बहुत कमज़ोरी होती है।

थर्मामीटर का पारा यदि ऊपर चढ़ा हुआ है तो उस को हाथ की उँगलियों से इस प्रकार पकड़ो कि घुण्डी नीचे रहे और धीरे धीरे हाथ को झटके दो। पारा नीचे उतर जायेगा। अब थर्मामीटर की घुण्डी को रोगी के मुँह में जीभ के नीचे या बगल में दबा दो। बड़े आदमियों के मुँह का तापक्रम लेना अच्छा होता है। बच्चों की बगल का तापक्रम लेना चाहिये; नहीं तो डर है कि कहीं थर्मामीटर की घुण्डी को दाँतों से न तोड़ डालें। बगल का तापक्रम लेने से पहिले उसका पसीना भली प्रकार पोंछ डालो।

थर्मामीटर को एक मिनट से लेकर दो मिनट तक लगाओ। फिर

उसे सावधानी से निकाल कर तापक्रम पढ़ लो। अब उसे अपने चार्ट पर लिखो। यह काम इस प्रकार किया जाता है।

मान लीजिये कि १५ तारीख को दिन के दस बजे थर्मामीटर लगाया है और उस समय तापक्रम ९९.४ डिग्री है तो चार्ट के ऊपर वह खाना देखिये जिसमें १५ तारीख लिखी है। अब उसके नीचे दिन के १० बजे वाला खाना देखिये। चार्ट में ऊपर से नीचे डिग्रियाँ लिखी हैं। यहाँ ९९.४ डिग्री वाली लाइन ढूँढ़ो। जहाँ पर समय की सीधी लकीर और तापक्रम की आड़ी लकीर एक दूसरे को काटे उस जगह एक विन्दु (०) या गुणे का चिह्न (×) बना दीजिये। आप ने तापक्रम नोट कर लिया।

विभिन्न समयों में तापक्रम नोट करने से जो विभिन्न चिह्न (×) मिलें उनको आपस में लकीर से जोड़ दीजिये। इस प्रकार आपका ग्राफ तैयार हो जायगा। इससे आप रोगी के बुखार का घटना या बढ़ना मालूम कर सकते हैं कि किस समय बुखार घटा और किस समय बढ़ा।

नाड़ी देखना—चार्ट में नीचे से ऊपर की ओर खाने में ५० से लेकर १५० तक गिनती लिखी हुई है। हमको नाड़ी में यह देखना होता है कि एक मिनट में कितनी बार नाड़ी की चाल होती है। देखने की रीति यह है कि रोगी के हाथ की कलाई पर अंगूठे की ओर अपने हाथ के बीच की तीन उँगलियाँ रखिये। देखिये कि नाड़ी की गति मालूम होती है। अब एक घड़ी लेकर यह मालूम करो कि एक मिनट में कितनी बार नाड़ी चलती है। जितनी बार नाड़ी की चाल हो उसको बुखार की तरह नकशे में नोट कर लो। विभिन्न समय में जो नाड़ी की चालों के चिह्न बनें उनको लकीरों से मिला दो। इस तरह नाड़ी का ग्राफ तैयार हो जायगा।

साँस की चाल देखना--साँस की चाल को तुम रोगी के पेट,

सीना और नथुनों को ध्यान से देखकर बता सकते हो। घड़ी लेकर यह देखो कि एक मिनट में रोगी कितनी बार साँस लेता है। समय के अनुसार जितनी साँस की चाल हो उसको चार्ट में दिखला दो और साँस की चाल का एक ग्राफ़ तैयार कर लो। नकशे में १० से लेकर ७० तक की गिनती दी हुई है।

पाखाना-पेशाब--रोगी को जिस समय पाखाना या पेशाब हो, चार्ट में उस समय के नीचे केवल (×) का चिह्न बना देना चाहिये।

रोगी के कमरे की उचित देख भाल—रोगी के कमरे की उचित देख भाल रखना और वहाँ रोगी के आराम का ध्यान रखना, यह रोगी की सेवा का सबसे पहिला कर्तव्य है। इसलिए उचित यह है कि यह आप जान लें कि कौन सी बातें ऐसी हैं जिनसे रोगी के कमरे की अच्छी तरह देख भाल हो सकती है।

१—रोगी का कमरा जो तुमने चुना है वह ऐसा हो जैसा कि पहिले बताया जा चुका है। काफ़ी बड़ा, खूब प्रकाशयुक्त और सड़क से दूर हो, हवा का अच्छी तरह प्रबन्ध हो, इत्यादि।

२--रोगी के कमरे में शोर गुल कदापि न करना चाहिये। रोगी का शान्ति अच्छी लगती है; और उसे शीघ्र स्वस्थ्य होने में सहायता देती है।

३--रोगी के सामने अधिक बातें न करनी चाहिये। यदि रोगी बातें करना चाहे तो इतनी बातें मत करो कि रोगी थक जाय। किसी-किसी बीमारी में रोगी का बातें करना हानिकारक होता है।

४—रोगी के सामने निराशापूर्ण बातें न करनी चाहिये। जो बातें हों प्रसन्नता उत्पन्न करने वाली हों।

५—रोगी का कमरा अत्यन्त साफ रहे। गन्दगी न होने पावे। सिलफची हर समय मौजूद रहे। यदि रोगी कुल्ला करे या हाथ धोये

तो पानी फर्श पर न गिरे बल्कि सिलफची में गिरे। इसी प्रकार रोगी थूकता है तो उगलदान में थूके जिसमें पहिले ही से फिनायल पड़ा हो। रोगी को क़ै, दस्त, पाख़ाना-पेशाब सुरक्षित बर्तनों में कराये जायँ और तुरन्त कमरे से हटा दिये जायँ।

६—रोगी के कमरे में मक्खियाँ, मच्छर, पिस्सू, मकड़ी इत्यादि न होनी चाहिये। मक्खियाँ विशेष रूप से बहुत गन्दगी फैलाती हैं। और रोग को बढ़ाती हैं।

७—कमरे में कुछ फूलों के गुलदस्ते और अच्छे चित्र हों तो अच्छा है। इससे रोगी के स्वास्थ्य पर बहुत सुन्दर प्रभाव पड़ता है।

८—रोगी के कमरे में दवाइयों की शीशियाँ, दवा पीने का गिलास, खाने पीने की चीज़ें, थर्मामीटर, ग्राफ चार्ट, इत्यादि सब उचित स्थान पर रक्खे हों। दवा खिलाने, खाना खिलाने, बुखार नापने, नाड़ी की गति मालूम करने इत्यादि के समय नियत हों। सब वस्तुएँ नियत समय पर तैयार हों। ऐसा न हो कि आवश्यकता पड़ने पर हर चीज़ के लिए दौड़ भाग मचे।

९—सेवा करने वाले को चाहिये कि रोगी के पास हर समय मिलने वालों को न आने दे। डाक्टर जिस समय आज्ञा दें और जितनी देर के लिये कहें उसी के अनुसार मिलने वाले आयें।

खड़े होने और बैठने की रीतियाँ--अध्यापक को यह भी मालूम होने की आवश्यकता है कि विद्यार्थी के खड़े होने और बैठ कर लिखने पढ़ने की रीतियाँ क्या है। कुछ लड़कों की कमर झुकी होती है। शरीर ढीला ढाला रहता है। चाल भद्दी होती है। उसका कारण यह है कि जो बचपन से गलत तरीके से उठते-बैठते हैं। उनके शरीर की बनावट खराब हो जाती है। अंग्रेज़ी में एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि यदि नन्हीं सी शाख अगर टेढ़ी हो जाय तो पूरा वृक्ष टेढ़ा हो जाता है। यही हाल मनुष्य का है। यदि शुरू में बच्चे

को सही तरीके से खड़ा होने और बैठने का तरीका न बताया जाय तो उसका प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर बहुत खराब पड़ता है। बचपन में बच्चे का शरीर नरम होता है और उसके शारीरिक भागों को जैसा स्वभाव डाला जाय वैसे ही स्वभाव पड़ जायेगा।

सही तरीका खड़े होने का यह है कि बच्चा सीधा खड़ा हो, सर उठा हो, ठोड़ी अन्दर को दबी हुई, छाती आगे को निकली हुई, हाथ नीचे की ओर सीधे और घुटने तने हुए, एक पैर दूसरे पैर से ज़रा आगे को निकला हुआ। इस रीति से खड़े होने पर
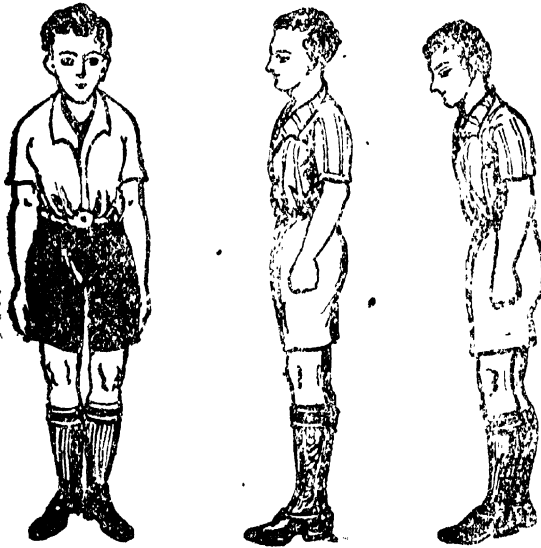
शरीर के तमाम अँग अपने उचित स्थान पर होते हैं और किसी अँग पर अधिक जोर नहीं पड़ता है। मगर इस अवस्था में अधिक देर तक खड़े रहने में तकलीफ होती है। इसलिए शरीर को आगे पीछे गतिशील करने के लिए या जो पैर आगे है उसे पीछे करने से और जो पीछे है उसे आगे करने से यह तकलीफ दूर हो सकती है।

जो बच्चे अपने पैरों के बीच में फासला रखते हैं वह अपने शरीर का बोझ एक पैर पर डाल देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि रीढ़ या कमर की हड्डी टेढ़ी होने लगती है। पेट आगे को निकलने लगता है। तमाम शरीर और विशेषतया सिर एक तरफ़ को झुका

रहता है। इस दशा में खड़े होने से मनुष्य के शरीर में स्फूर्ति दृष्टि-गोचर नहीं होती।
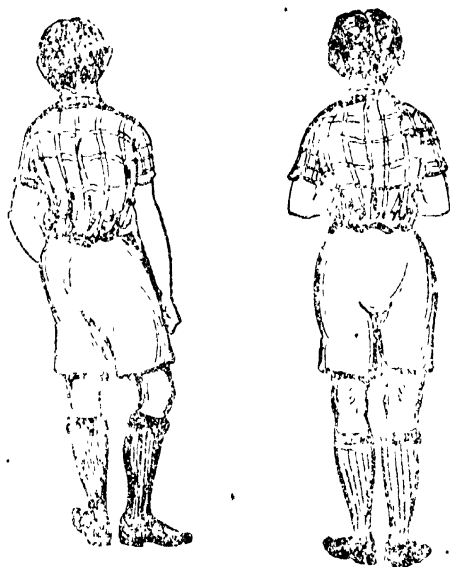
बच्चों को चाहिये कि वह उचित रीति से खड़े होना सीखें वह चलने फिरने में शरीर को तना हुआ रक्खें। ऐसा करने से उनकी रीढ़ की हड्डी सीधी रहेगी और साँस लेने वाले अंगों को हानि नहीं पहुँचेगी। तथा शरीर में स्फूर्ति दिखाई देगी।

बच्चों के बैठने की कुर्सी या स्टूल उनके कद के अनुसार हों। वह न तो बहुत बड़ी हों और न बहुत छोटी। यदि कुर्सी अधिक ऊँची होगी तो पैर लटकते रहेंगे। यदि मेज़ ऊँची होगी तो उचकना पड़ेगा और शरीर एक ओर को झुक जायगा। यदि मेज और कुर्सी नीची होगी तो बच्चे उसके अन्दर फँस जायँगे। मतलब मेज और कुर्सी का उपयुक्त होना आवश्यक है। वर्ना शरीर को बहुत हानि पहुँच सकती है।
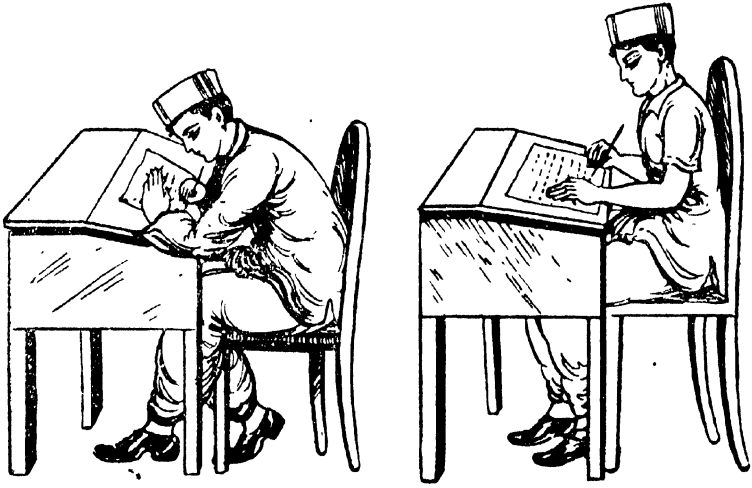
पुस्तक पढ़ते समय शिर को झुकाना नहीं चाहिये; शरीर भी सीधा रहना चाहिये। पैर मजबूती से और आराम से फर्श पर जमे होने चाहिये। पुस्तक आँखों से उचित फासले पर हो। न बहुत ही करीब हो और न बहुत ही दूर।
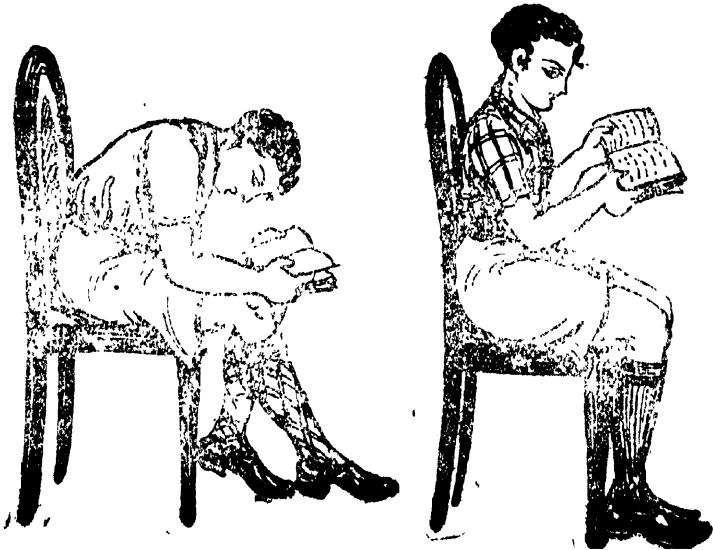
यदि बच्चा जल्दी जल्दी अपनी अवस्था बदल रहा है तो इसका यह मतलब है कि वह आराम से बैठा नहीं। आराम से उसी समय बैठा जा सकता है जब कि उचित रीति से बैठा जाय। धड़ को बहुत झुकाने और गर्दन को दबाने से शरीर के सांस लेने वाले अँगों को हानि पहुँचती है। अगर बच्चों को अधिक देर तक बैठकर कोई बात सुनना है तो पीठ को कुर्सी का सहारा देना चाहिये।
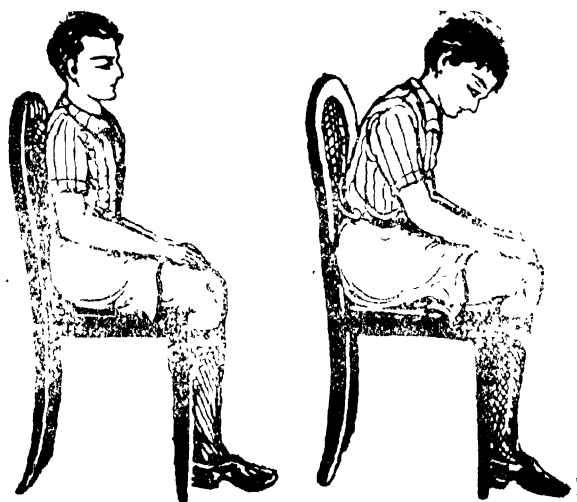
लिखते समय कुर्सी और मेज़ को तीन दशाओं में रखा जा सकता है। कुर्सी या तो मेज़ के किनारे से जरा अलग हो या वह बिलकुल मेज़ के बराबर हो या फिर उसका कुछ भाग मेज़ के नीचे हो। लिखने के लिए सबसे अच्छी दशा यह है कि कुर्सी का कुछ भाग मेज़ के नीचे हो। इस दशा में धड़ सीधा रह सकता है और सामने की ओर झुकने की जरूरत न होगी।
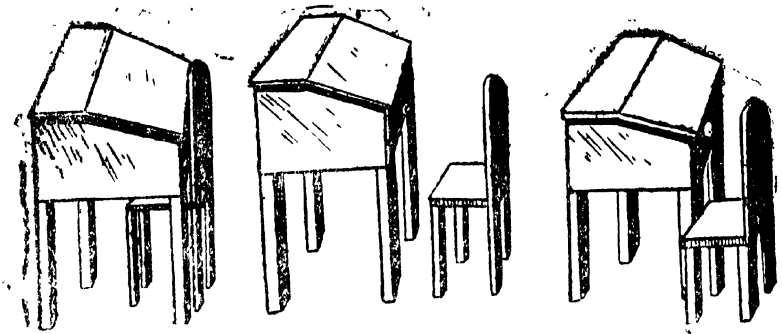
अध्यापक को चाहिये कि वह बच्चों को गलत बैठने न दें। बच्चे बैठे सुनते हों या पढ़ने लिखने में लगे हों तो अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह उनके शरीर की दशा पर ध्यान रक्खे और यदि कोई बच्चा गलत बैठा हो तो तुरन्त उसको टोंक दें और ठीक दशा में बैठा दें।
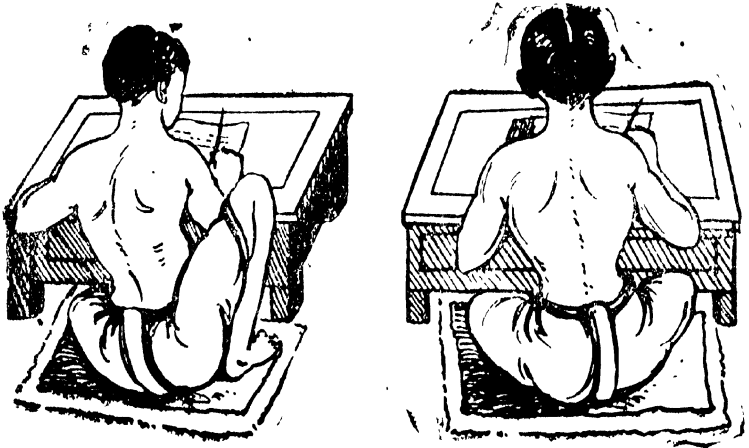
प्रश्न

१—निम्नलिखित अवसरों पर आप फर्स्टएड से कैसे सहायता पहुँचा सकते हैं।

(क) भ्रमण करते समय एक लड़के की टाँग में साँप काट लेता है।

(ख) एक लड़का बेहोश होकर साइकिल से गिर पड़ा है।

(ग) लेबोरेट्री में एक लड़का एक तेजाब की बोतल को अपने हाथ पर उड़ेल लेता है। (सी० टी०)

२—एक चित्र के द्वारा साँस लेने के प्रबन्ध को समझाइये ।

३—संक्षेप में समझाओ कि निम्नलिखित बीमारियाँ किस प्रकार फैलती हैं:—मोतीझाला, खुनाक (डिपथीरिया), मलेरिया, प्लेग ।

४—एक प्रारम्भिक चिकित्सा के बक्स में तुम कौन कौन सी चीज़ें रक्खोगे और क्यों ? "बन्द" या बाँधना क्या है ? बन्द बाँधने में किन किन बातों की सावधानी करोगे ?

५—कान की बनावट का वर्णन कीजिये। इस ज्ञान से निम्नलिखित पर अपनी सम्मति प्रकट करो।

(क) एक लड़के के कान पर मारना, (ख) एक अध्यापक का कक्षा में चीखना।

६—यह कहने से तुम क्या मतलब समझते हो कि रोग (क) कीटाणु द्वारा फैलने वाला है या (ख) छूत की बीमारी है। निम्नलिखित रोगों को रोकने के लिए तुम क्या उपाय करोगे। प्लेग, मलेरिया, चेचक, तपेदिक। (एल० टी०)

७—साँस लेने के प्रबन्ध का वर्णन करो। एक कक्षा में हवा के उचित आने जाने के प्रबन्ध की क्यों आवश्यकता है ? (एल० टी०)

८—बच्चों को उचित रीति पर खड़ा होना और बैठना सिखाने

के लिए अध्यापक क्या क्या उपाय करेगा ? ऐसा करना क्यों आवश्यक है ?

६—बताओ कि तुम क्या करोगे ?

क—यदि एक लड़का बार बार पूछता है कि श्यामपटपर क्या लिखा है।

ख—अगर एक ऐसा लड़का कक्षा में आ जाता है कि जिसके चेचक निकली है।

ग—यदि एक लड़का जो पढ़नेमें तेज़ है आये दिन बीमार रहता है।

घ—निर्धारित विषयों को पढ़ाने के अतिरिक्त पाठशाला में और कौन से कार्यों का होना तुम आवश्यक समझते हो ? पाठशाला के कुछ ऐसे कार्यों का वर्णन करो।

अध्याय १५

बच्चों का संगठन

बच्चों की शिक्षा के सिलसिले में उनको उनकी योग्यता के लिहाज़ से छाँटना भी अध्यापक के लिए परमावश्यक है। प्राचीन समय में गुरु अपने शिष्यों को एक निश्चित आयु में एक विशेष ज्ञान की शिक्षा देता था और इसी के साथ साथ उसे भावी जीवन के लिए तैयार करता था। यदि उस समय में उसकी शिक्षा एक विशेष योग्यता के अनुसार अधूरी रह जाती थी तो उसे अध्यापक के पास कुछ दिनों और रहना पड़ता था और इस तरह समय बढ़ा कर उसकी शिक्षा पूरी की जाती थी अंग्रेज़ों के समय में नियमानुसार परीक्षाओं की प्रथा हुई और शिक्षा के जीवन के कई भाग जैसे लोअर प्राइमरी, अपर प्राइमरी, सिकेन्ड्री और यूनीवर्सिटी कर दिये गये हैं। इसी के साथ साथ विभिन्न भाग की शिक्षा को विभिन्न कक्षाओं में भी बाँट

दिया गया है और यह रीति प्रचलित की गई कि एक कक्षा से दूसरे कक्षा में जाने के लिए साल के अन्त में (प्राय: अप्रैल-मई में) बच्चे की वार्षिक परीक्षा ली जाय और उसमें यदि वह सफल हो जाय तो उसको अगली कक्षा में तरक्की दे दी जाय वर्ना नहीं।

अंग्रेजी शासन काल में बच्चों की शिक्षा पर वह ध्यान नहीं दिया गया जो देना चाहिये था। शिक्षा काल में इस बात का तो बिलकुल ध्यान ही न रखा गया कि कौन सा बच्चा किस काम के योग्य है। सभी बच्चों को एक ही सी शिक्षा देने का प्रयत्न किया गया चाहे कोई बच्चा उस शिक्षा से लाभ उठा सके अथवा न उठा सके इसी का परिणाम यह था कि बहुत से बच्चे अपनी शिक्षा को बीच में से छोड़ देते थे। बहुत कम ऐसे विद्यार्थी होते थे कि जो पूरी शिक्षा प्राप्त कर सकते थे।

इस समय में सहायक स्कूलों के अतिरिक्त टेकनिकल और आर्ट के स्कूल होते अवश्य थे। मगर राज्य को उससे मतलब नहीं था कि कौन से लड़के उनमें प्रवेश करते हैं। यह प्राय: बच्चे के माँ बाप पर निर्भर होता था कि वह अपने बच्चों को कैसी शिक्षा दिलाये। शिक्षा दिलाना या न दिलाना भी माँ बाप पर ही निर्भर होता था। अनिवार्य शिक्षा या तो थी नहीं और यदि थी भी तो बहुत ही कम। इन सब बातों का परिणाम यह था कि हमारे देश की शिक्षा की अवस्था बहुत खराब थी। शिक्षा के लिहाज से बच्चों की अनुचित शिक्षा के कारण देश में निरक्षरता का राज्य था।

परीक्षायें—हमारी शिक्षा में अब तक परीक्षाओं का एक विशेष महत्त्व रहा है। एक वर्ष की पढ़ाई के बाद परीक्षा के लिये जाने का उद्देश्य यह होता है कि विद्यार्थी की योग्यता का अनुमान हो जाय और उसे अगली कक्षा में भेजने के विषय में अनुमान लगायें। देखने में तो यह परीक्षाएँ अत्यन्त आवश्यक और लाभप्रद प्रतीत होती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि मानो इनके बिना शिक्षा प्रबन्ध का स्थिर रहना कठिन है जिसका कारण यह है कि हमारे पास विद्यार्थी के

ज्ञान की योग्यता नापने और उनको तरक्की देकर ऊँची कक्षा में पहुँचाने के लिये कोई न कोई साधन अवश्य होना चाहिये। परन्तु शोक ! परीक्षाएँ हमारे शिक्षा प्रबन्ध के लिए एक कंटक बन गई हैं। इनकी वजह से अध्यापक यह समझने लगता है कि बस मेरा काम यह है कि पाठ्य विषय को एक वर्ष के अन्दर समाप्त करा देना और विद्यार्थी यह समझता है कि बस मेरा काम यह है कि जिस प्रकार हो सके परीक्षा के प्रश्नों का उत्तर ठीक ठीक लिख आना अर्थात् शिक्षा का असली उद्देश्य समाप्त हो जाता है और शिक्षा पुस्तकीय ज्ञान-मात्र रह जाती है। दूसरा दोष यह है कि वर्ष के अन्त में विद्यार्थी का अधिकतर समय परीक्षा की तैयारी में व्यतीत होता है। उसको किसी और बात का होश ही नहीं रहता। वह पिछले वर्षों के पर्चे हल करने और अपनी परीक्षा के लिए पिछले पर्चे में प्रश्नों की तरह के प्रश्न हल करने में समय व्यतीत करता है। इस तरह उसके शिक्षा काल का बहुत बड़ा भाग बेकार नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त परीक्षा में पास होना न होना कभी कभी केवल संयोगवश पर ही अवलम्बित होता है। प्रायः विद्यार्थी अनुमान कर लेते हैं कि अमुक अमुक प्रश्न पर्चे में आयेंगे और भाग्यवश वह आ जाते हैं तो वह लड़के पास हो जाते हैं। इसके प्रतिकूल जो लड़के साल भर परिश्रम तो बहुत करते हैं मगर दुर्भाग्य से उन बातों पर अधिक ध्यान नहीं देते जो पर्चे में पूछी गई हैं, वह या तो बुरे नम्बरों से उत्तीर्ण होते हैं या अनुत्तीर्ण होते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी होता है कि कई विद्यार्थी परीक्षा के समय बीमार पड़ जाते हैं और वह परीक्षा न दे सकने के कारण उत्तीर्ण नहीं हो सकते। तात्पर्य यह कि परीक्षा एक ऐसा प्रयोग है जो शिक्षा के उद्देश्य को पीछे ढकेल देता है और विद्यार्थी को पुस्तकें रटने और अपने भाग्य पर उसे आशा लगाने के लिए अधिक आकृष्ट करता है, जो शिक्षा-सिद्धान्त के बिलकुल विरुद्ध है।

इसके अतिरिक्त परीक्षाओं की एक बहुत बड़ी खराबी यह भी है कि परीक्षार्थी के उत्तरों पर नम्बर देना परीक्षक की इच्छा पर निर्भर है। एक परीक्षार्थी को परीक्षक अच्छे नम्बर दे सकता है और दूसरा परीक्षक उसी परीक्षार्थी को उसी उत्तर पर कम नम्बर दे सकता है। यही नहीं बल्कि एक ही उत्तर को एक ही परीक्षक दो विभिन्न समयों में जाँचे तो विभिन्न नम्बर दे सकता है अर्थात् नम्बरों का देना परीक्षक पर उसके स्वभाव और उस वातावरण पर निर्भर होता है जिस पर कि उस समय परीक्षक होता है; इसका परिणाम यह होता है कि कभी कभी अच्छे विद्यार्थी कम नम्बर पाते हैं और खराब विद्यार्थी अच्छे नम्बर पा जाते हैं।

एक और बात जो परीक्षाओं में खराबी की है कि परीक्षा के पर्चों में जितने प्रश्न हो जाते हैं वह उस पूरे निर्धारित पाठ्य पर अवलम्बित नहीं होते हैं जो विद्यार्थी ने साल भर पढ़े हैं। यदि विद्यार्थी का याद किया हुआ भाग परीक्षा में आ गया तब तो अच्छा ही हुआ नहीं तो बुरा। जैसा कि पहिले वर्णन किया जा चुका है।

वर्तमान समय में परीक्षा को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता। इसलिए शिक्षा-शास्त्रियों का प्रयत्न यह है कि इनको समाप्त करके कोई ऐसी रीति निकाली जाय जिससे कि विद्यार्थी की शिक्षा की उन्नति हो सके। परन्तु अब तक कोई ऐसी रीति ज्ञात न हो सकी। इसलिए परीक्षा में इतने दोषों के होते हुए भी शिक्षा कार्यक्रम में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किये हुए है।

यू० पी० में नई शिक्षा और परीक्षायें—हमारे प्रान्त की नई शिक्षा में परीक्षायें अवश्य सम्मिलित हैं मगर उनकी महत्ता कम हो गई है। शिक्षा का उद्देश्य परीक्षा में अच्छे नम्बर लाना ही नहीं है। इसलिए अब इस बात की ओर ध्यान दिया जा रहा है कि बच्चा साल भर तक जो कुछ सीखता है उसका रेकार्ड रक्खा जाय। बच्चे को कभी कभी आजमाया जाय कि कितना सीखा है। इसलिए साल के

अन्त में एक ऐसी परीक्षा के बाद जिसमें उसकी शिक्षा के सब पहलुओं पर प्रकाश पड़ता हो उसको अगली कक्षा में चढ़ा दिया जाय।

अब तक हिन्दोस्तानी फाइनल परीक्षा, हाई स्कूल परीक्षा और इन्टरमीडिएट परीक्षा यह तीन परीक्षायें पब्लिक परीक्षायें कहलाती थीं, मगर अब उनको कम करके केवल एक परीक्षा पब्लिक रक्खी जायगी। जो बारहवीं कक्षा के बाद अर्थात् हायर सेकन्ड्री स्कूल की पढ़ाई के बाद होगी। कुछ वर्षों तक पहले दो परीक्षायें भी होंगी लेकिन यह ऐच्छिक होंगी; चाहे परीक्षार्थी इन परीक्षाओं में सम्मिलित हो अथवा न हो।

अनुशासन—(Discipline) अब हम एक ऐसे विषय की ओर ध्यान देते हैं जो बच्चे के शिक्षा काल की माना जान है। हमारा मतलब अनुशासन से है। इस विषय की ओर ध्यान देना बहुत आवश्यक है क्योंकि यदि अध्यापक अपने बच्चों में अनुशासन उत्पन्न न कर सकेगा तो उसका परिश्रम बिलकुल व्यर्थ जायगा। डिस्पिलिन अंग्रेजी शब्द है, इसका अर्थ अनुशासन, नियंत्रण है, लेकिन. जिस मतलब को प्रकट करने के लिए यह शब्द प्रयोग होता है शायद उस मतलब के प्रकट करने के लिए हमारी भाषा में कोई शब्द अब तक नहीं ढूँढ़ा गया है। डिस्पिलिन का अर्थ यह है कि जो काम किया जाय वह नियमानुसार कानून के अनुसार किया जाय। बड़े लोग (चाहे वह माता पिता हों या अध्यापक या अफसर हों) जो आज्ञा दें वह बिना संकोच के, बिना किसी आलोचना के और बिना परिणाम सोचे तुरन्त पालित की जाय। यही नहीं बल्कि अपने सब कामों में अपना बर्ताव ऐसा रक्खा जाय कि किसी को उँगली उठाने की आवश्यकता न हो।

स्कूल में बच्चों में अनुशासन का स्वभाव डालना इस लिए आवश्यक है कि उनका यही स्वभाव उनके भावी जीवन में काम देता है जब कि उनको संसार में सफल जीवन व्यतीत करना होता है जो बच्चे अपने शिक्षा काल में अनुशासन के अभ्यासी नहीं होते उनका भावी जीवन असफल रहता है। अब प्रश्न यह है कि बच्चों में अनुशासन के अर्थ क्या हैं?

बच्चों के अनुशासन को हम चार भागों में बाँट सकते हैं। १—घर पर अनुशासन, २—स्कूल में अनुशासन, ३—कक्षा में अनुशासन और ४—खेल के मैदान में अनुशासन। घर पर अनुशासन का उत्तरदायित्व अधिकतर माता-पिता पर आता है बच्चों का दिन भर का कार्यक्रम स्वास्थ्य के सिद्धान्तों पर बनाना और उसका पालन कराना, उनको बुरे कामों से रोकना, अच्छा स्वभाव डालना, समय का पालन सीखना, यह सब सीखना अच्छे अनुशासन का प्राण है और इनका संबंध अपरोक्ष-रूप से माता पिता से है। यह अवश्य है कि अध्यापक इस सिलसिले में माता पिता की सहायता कर सकते हैं लेकिन अच्छे परिणाम उसी समय प्राप्त हो सकते हैं कि जब अध्यापकों और माता पिता के कामों और उनकी बातों में सम्बन्ध हो।

स्कूल में अनुशासन का सम्बन्ध प्रधान अध्यापक और अध्यापक दोनों से है। जैसा प्रधान अध्यापक होगा वैसा ही उसके स्कूल का अनुशासन होगा। यदि प्रधान अध्यापक अनुशासन का सख्ती के साथ पालन करता है तो उसके स्कूल के सब अध्यापकों में स्वयं अनुशासन उत्पन्न होगा और वह अपने विद्यार्थियों में भी अनुशासन उत्पन्न करेंगे। जैसे यदि हेडमास्टर समय पर स्कूल आता है और समय पर स्कूल से घर जाता है तो सभी अध्यापक समय पर स्कूल आयेंगे और समय पर स्कूल से जायेंगे तथा यही बात वह अपने विद्यार्थियों से चाहेंगे। इसके प्रतिकूल जो प्रधान अध्यापक स्वयं तो समय का उचित पालन नहीं करता वह अपने अध्यापकों से इस बात की आशा नहीं कर सकता कि समय का पालन करेंगे। इसी प्रकार वह अध्यापक जो समय का पालन नहीं करते हैं वह अपने विद्यार्थियों को समय का पालन नहीं सिखा सकते।

स्कूल में समय पर पहुँचना, हाजिरी के समय कक्षा में उपस्थित रहना, एक कक्षा से दूसरी कक्षा में जाने के लिए शोर न करना और एक लाइन बना कर चलना, पाखाना पेशाब करने और पानी पीने के

लिए इन्टरवल की प्रतीक्षा करना, कूड़ा कर्कट कूड़े की टोकरियों या बाल्टियों में फेंकना, सफाई का ध्यान रखना, अपना शरीर और कपड़े साफ रखना, आपस में भाई चारा उत्पन्न करना, स्कूल से प्रेम करना, देश सेवा करना—यह सब बातें स्कूल के अनुशासन से सम्बन्ध रखती हैं और इनका उत्तरदायित्व स्कूल के प्रधान अध्यापक और उसके सहायक अध्यापकों पर होता है। इसीलिए प्रधान अध्यापक के कर्त्तव्यों में एक यह बड़ा कर्त्तव्य भी है कि वह अपने स्कूल का अनुशासन अच्छा रक्खे। इस काम के लिए स्कूल प्रारम्भ होने से पहिले सब विद्यार्थियों को एक स्थान पर एकत्र करके कभी कभी उनको उपदेश के रूप में कुछ कहना, अथवा कभी उनके शारीरिक और कपड़ों की सफाई का निरीक्षण करना बहुत लाभप्रद प्रमाणित हुआ है। इस अवसर पर विद्यार्थी अनुशासन से खड़े होने, बातें सुनने फिर अपनी कक्षा में चुपचाप लाइन बना कर जाने के पाठ भी सीख लेते हैं।

इसके अतिरिक्त स्कूल में अनुशासन की देखभाल के लिए विद्यार्थियों में से Prefects या बड़े मानीटर बना देना भी लाभप्रद प्रमाणित हुआ है। यह लड़के उन लड़कों पर दृष्टि रखते हैं जो शरारत करते हैं या बुरी आदतें अपना लेते हैं और इस तरह स्कूल का डिसिप्लिन खराब करते हैं। Prefects का उत्तरदायित्व अधिकतर इन्टरवल में या खेल के मैदान में होता है और यही लड़के स्कूल के बाहर अपने स्कूल के विद्यार्थियों की बातों को देखते रहते हैं कि कहीं वह ऐसे काम तो नहीं करते जिनसे उनके स्कूल की बदनामी हो।

यदि किसी स्कूल का डिसिप्लिन खराब है तो शुरू-शुरू में हेडमास्टर को बहुत कठिनाइयाँ उठानी पड़ सकती हैं और उसको डिसिप्लिन निभाने के लिए अपने सहायक अध्यापकों की सहायता की अत्यन्त आवश्यकता हो सकती है। अतएव यह हो सकता है कि प्रधान अध्यापक अपने सहायक अध्यापकों की ड्यूटी लगा दे कि वे स्कूल शुरू होने के पहिले और स्कूल समाप्त होने के बाद

अनुशासन के साथ स्कूल के मैदान में खेलने, कक्षा के अन्दर प्रवेश करने और कक्षाओं से बाहर निकलने और स्कूल से बाहर जाने के नियमों पर ध्यान दें। यह ड्यूटी शुरू-शुरू में मास्टर को अप्रिय हो सकती है लेकिन आशा है कि स्कूल के अनुशासन के लिए इसको खुशी के साथ स्वीकार करेंगे।

अनुशासन स्थापित रखने के लिए प्रधान अध्यापक को अपनी आज्ञाओं को दृढ़ता के साथ पालन कराना चाहिये और कोई विद्यार्थी उनके विरुद्ध करता पकड़ा जाये तो उसको यूँ ही न छोड़ दिया जाय। इसीलिए यह देखने के लिये कि उसकी आज्ञा का पालन हो रहा है या नहीं उसको पूरे स्कूल का दौरा करते रहना चाहिये। इन दौरों में वह विद्यार्थी के अनुशासन के अतिरिक्त स्कूल के अध्यापकों और दूसरे नौकरों के कामों और उनके अनुशासन पर भी ध्यान रख सकेगा।

कक्षा में अनुशासन—कक्षा में अनुशासन का पूरा-पूरा सम्बन्ध अध्यापक से है। लड़के बिना शोर और खटपट किये चुपचाप कक्षा में प्रवेश करें। पुस्तकें डस्क के अन्दर रखकर तुरन्त डस्क पर उस घण्टे की किताबें खोलें और इस बात का बिना प्रतीक्षा किये हुए कि मास्टर साहब कमरे में आयें अपने काम में लग जायें और जब मास्टर साहब कमरे में आयें तो चुपचाप उनके आदर के लिए खड़े हो जायँ और फिर बैठ जायँ। पाठ को ध्यान से सुनें। प्रश्न पूछने हों तो पहिले हाथ उठाकर आज्ञा लें और आज्ञा मिलने पर बात पूछें। मास्टर साहब के प्रश्नों का उत्तर सभ्यता से दें। मास्टर साहब के साथ असभ्यता से न पेश हों और न उनकी बातों को बुरा मानें और जब घण्टा समाप्त हो जाय तो चुपचाप उठकर एक लाइन में चलें और दूसरे कमरे में पहुँच जायँ या वहीं बहुत शान्ति से बैठे रहें और दूसरे घण्टे की पुस्तकें निकालकर काम में लग जायँ।

यह सब बातें कक्षा के अनुशासन से सम्बन्ध रखती हैं और सब परोक्षरूप से अध्यापक की योग्यता पर निर्भर होती हैं। जो

अध्यापक प्रवीण होते हैं उनको अनुशासन स्थापित करने में कोई परेशानी उठानी नहीं पड़ती। वह स्वयं घण्टा शुरू होते ही कमरे में आ जाते हैं और तुरन्त काम शुरू कर देते हैं। वह अपने विद्यार्थियों को पूरे घण्टे संलग्न रखते हैं ताकि वह इधर उधर की बातों में न लग जायँ। वह बच्चों की मनोवृत्तियों से पूर्ण परिचित होते हैं और वह जानते हैं कि बच्चे किन अवसरों पर शोर करते हैं और उनको क्यों और किस तरह से रोका जाय। वह अपने पाठ को अत्यन्त दिलचस्पी के साथ पढ़ाते हैं और बच्चों की प्राकृतिक-शक्तियाँ जैसे जिज्ञासा और कौतूहल से पग-पग पर सहायता लेते रहते हैं। उनका व्यक्तित्व भी बहुत अच्छा होता है। वह स्वच्छताप्रिय होते हैं। उनके कपड़े साफ होते हैं। वह न सिगरेट पीते हैं न पान खाते हैं। वह बेहूदा बातों से बचते हैं। सब बच्चों से एक पिता की तरह प्रेम करते हैं और इस तरह एक आदर्श अध्यापक बनते हैं।

इन सब बातों का प्रभाव विद्यार्थियों पर सचेत रूप से संकेत (Suggestion) के द्वारा पड़ता रहता है और कक्षा का अनुशासन अपने आप ही अच्छा होता चला जाता है।

खेल के मैदान में अनुशासन—यह स्कूल के अनुशासन से कोई बिलकुल ही अलग-थलग विषय नहीं है। बल्कि उसी का एक अँग है। खेल के मैदान में जो अनुशासन होता है उससे पूरे स्कूल के अनुशासन पर प्रकाश पड़ता है। यह अनुशासन एक बहुत बड़ी सीमा तक खेल के अध्यापक (Games teacher) पर भी निर्भर होता है। इसीलिए प्रधान अध्यापक को चाहिये कि उसी अध्यापक को खेल का निरीक्षक बनाये जो वास्तव में उसके लिए योग्य हो।

दण्ड और पुरस्कार—बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में प्रायः ऐसे अवसर आते हैं कि जब हमें इस बात की आवश्यकता पड़ती है कि उनको कोई सजा या दण्ड दिया जाय ताकि वह अपना पाठ याद करें या बुरी आदतों को छोड़ दें या अनुशासन के विरुद्ध कोई बात न

करें। इसी प्रकार इस बात की भी आवश्यकता होती है कि जो विद्यार्थी अच्छा काम करते हैं, अच्छा व्यसन अपनाते हैं और डिसिपलिन का कठोरता के साथ पालन करते हैं, उनका साहस बढ़ाने के लिये उनको कोई पुरस्कार दिया जाय। अध्यापक को दण्ड और पुरस्कार के विषय में ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है ताकि वह उनको उचित अवसरों पर प्रयोग कर सके।

जब बच्चे को कोई दण्ड दिया जाता है तो उससे उसको शारीरिक कष्ट होता है। हमें मालूम है कि हमारी प्राकृतिक प्रवृत्तियों में सबसे प्रबल प्रवृत्ति (Tendency) यह है कि हम तकलीफ से बचे रहें। जितना अधिक कष्ट होगा उतना ही अधिक उससे हम बचने का प्रयास करेंगे। और एक बात से हमको एक बार कष्ट मिलता है तो उससे फिर भयभीत रहते हैं और उसके विचार आते ही काँप उठते हैं। अतएव जब बच्चों को दण्ड दिया जाता है तो वह दुबारा दण्ड पाने के नाम से डरने लगते हैं। वह समझने लगते हैं कि दण्ड से बचने के लिए अच्छा यही है कि अध्यापक या माता-पिताकी इच्छा-नुसार कार्य किया जाय अर्थात् दण्ड का भय उनको काम करने की ओर आकृष्ट करता है।

यही दशा पुरस्कार में होती है। जब बच्चे को किसी अच्छे काम के करने में पुरस्कार दिया जाता है तो उसको प्रसन्नता होती है और वह इस प्रसन्नता को दुबारा प्राप्त करने के लिये और अधिक परिश्रम करता है ताकि उसे दुबारा पुरस्कार मिले।

अब प्रश्न यह है कि दण्ड और पुरस्कार का स्थान शिक्षा में क्या है? प्राचीन काल में अध्यापक बच्चों को बुरी तरह मारते-पीटते थे और डण्डे के जोर से पाठ याद कराते थे या बुरी आदतें छुड़ाने का प्रयास करते थे लेकिन मनोविज्ञान ने हमको बता दिया है कि यह रीति बिलकुल ग़लत है। बच्चे को अगर हर समय मार खाने का डर रहेगा तो उसकी प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ दबी रहेंगी और उनको कभी

उभरने का अवसर न मिलेगा और इस तरह उसकी शिक्षा अधूरी रह जायगी। इसी तरह यदि उसे तनिक तनिक सी बात पर पुरस्कार दिया जाय तो वह केवल पुरस्कार प्राप्त करने के लिए पढ़ेगा वर्ना नहीं। इस प्रकार इस दशा में भी उसकी शिक्षा अपूर्ण होगी।

शिक्षा-शास्त्रियों का विचार है कि बच्चों को दण्ड देना तो चाहिये मगर कम। वह अवसर के लिहाज से भी कड़ा या नरम दण्ड हो और ऐसा हो कि बच्चा दण्ड मिलने पर लज्जा का अनुभव करे और फिर भविष्य में वैसा न करे जिस पर उसको दण्ड मिला था।

बच्चे को बेंत से मारना या कान या सर पर थप्पड़ मारने को जिसको अंग्रेजी में (Corporal Punishment) कहते हैं आजकल बिलकुल ही अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता। इसी कारण से हमारे प्रान्त में इस प्रकार का दण्ड देना कानून के विरुद्ध अपराध नियुक्त किया गया है। बच्चे को हृदयहीनता से मारने पर उसके शरीर के किसी भाग को हानि पहुँच सकती है या हड्डी में चोट आ सकती है और इसके अतिरिक्त बच्चे पिटते-पिटते निर्लज्ज बन जाते हैं अर्थात् यह कि मार का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यही नहीं मारने पीटने से उनकी प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ निर्जीव हो सकती हैं। तात्पर्य यह कि मारने से उनके भावी जीवन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ सकता है जिससे उनको बचाना अध्यापक का कर्त्तव्य है।

दण्ड देने की रीतियाँ परिस्थिति के अनुसार विभिन्न होनी आवश्यक हैं। एक बच्चा जो पहली बार अपराध करता है उसका दण्ड उस बच्चे के दण्ड से भिन्न होगा जो अपराध को कई बार कर चुका है। इसके अतिरिक्त दण्ड बच्चे के अपराध पर भी निर्भर होगा अर्थात् छोटे अपराध पर थोड़ा दण्ड और बड़े अपराध पर बड़ा दण्ड मिलेगा। बेंच पर खड़ा करना, कक्षा के आखीर में खड़ा करना, स्कूल के बाद बच्चे को रोक लेना और उसको कुछ लिखने पढ़ने का काम देकर उसी समय समाप्त करना, कक्षा से निकाल देना, स्कूल की (Parade)

परेड में उस लड़के का नाम लेना और सब लड़कों के सामने उसे लज्जित करना, "काली किताब" (ऐसी किताब जिसमें बुरे लड़कों या अपराध करने वाले लड़कों के नाम लिखे जाते हैं) पर नाम लिख लेना, और सारे स्कूल में घुमाना, माता-पिता के पास शिकायत का पत्र भेजना, घर पर काम करने के लिए देना, इत्यादि कुछ ऐसे दण्ड हैं जो बच्चों को दिये जा सकते हैं। लेकिन जैसा कि बताया जा चुका है एक ही दण्ड को बार बार देने से उसका उद्देश्य मृत हो जाता है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि दण्ड जहाँ तक हो सके कम दिया जाय और दण्ड देने से पहिले अध्यापक यह भली प्रकार सोच ले वह कहाँ तक बच्चे की सजा का उत्तरदायी है।

पुरस्कार से बच्चे अपना काम अधिक परिश्रम से करने लगते हैं। उनकी अपने को ऊँचा समझने की शक्ति (Self assertion) भली प्रकार काम करने लगती है और वह अधिक सफलता के साथ शिक्षा प्राप्त करने लगता है। मगर पुरस्कार भी दण्ड की तरह जितने कम दिये जायँ अच्छा है और केवल अधिकारी पात्र को ही दिये जावें। परेड (Parade) पर किसी लड़के की प्रशंसा कर देना, उसके संरक्षक से उसके विषय में दो शब्द कह देना, वार्षिक जलसों में प्रथम श्रेणी प्राप्त करने वाले लड़कों और अच्छा डिसिपलिन रखने वाले लड़के को पुस्तक इत्यादि के पुरस्कार देना, यह कुछ पुरस्कार के स्वरूप हैं। इसके अतिरिक्त सार्टीफिकेट देना भी लाभप्रद है। बल्कि पुस्तकों आदि की अपेक्षा सार्टीफिकटों के पुरस्कार बच्चे के लिए अधिक उपयोगी हैं।

प्रश्न

१—अब तक विद्यार्थियों का विभाजन किस प्रकार किया गया था ? हमारे प्रान्त की नई शिक्षा में इस विभाजन में क्या

परिवर्तन किये गये हैं ? आप इन्हें पसन्द करते हैं अथवा नहीं ? सकारण वर्णन कीजिये।

२—नई शिक्षा में बारहवीं शिक्षा के बाद एक पब्लिक परीक्षा पर जोर दिया गया है। इससे क्या लाभ होगा ?

३—कहते हैं "वर्तमान परीक्षाएँ एक भार हैं" आप इससे कहाँ तक सहमत हैं ?

४—क्या वर्तमान परीक्षाओं के बजाय कोई और रीति आप बता सकते हैं जिसके द्वारा विद्यार्थी के शिक्षा ग्रहण की परीक्षा हो जाय ?

५—आप अनुशासन से क्या तात्पर्य समझते हैं ? यह विद्यार्थी के लिए क्यों आवश्यक है ?

६—"अगर किसी स्कूल की शिक्षा की अवस्था का पता लगाना चाहो तो वहाँ के अनुशासन को देख लो" आप इस सिद्धान्त से कहाँ तक सहमत हैं ?

७—किन-किन बातों से अध्यापक अपनी कक्षा में अनुशासन स्थापित कर सकता है और उसको स्थायी रख सकता है ? विस्तृत रूप से वर्णन कीजिये।

८—लड़के स्कूल में अनुशासन स्थापित करने और स्थायी रखने में किस प्रकार अध्यापक की सहायता कर सकते हैं ?

९—दण्ड का प्रभाव बच्चों पर क्या पड़ता है ? कड़ा दण्ड देने की बुराइयाँ क्या हैं ?

१०—एक ही किस्म की सजायें बच्चों को देना क्यों ठीक नहीं है ?

११—"दण्ड और पुरस्कार" पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये और बताइये कि उनसे शिक्षा में कहाँ तक सहायता ली जा सकती है।